RNI Number : MPHIN/2016/70609

ISSN NUMBER : 2455-9814

Dhingra Family Foundation
USA

विभोम-स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 2, अंक : 7
अक्टूबर-दिसम्बर 2017
मूल्य : 50 रुपये

शिवना प्रकाशन : नए सेट की पुस्तकें

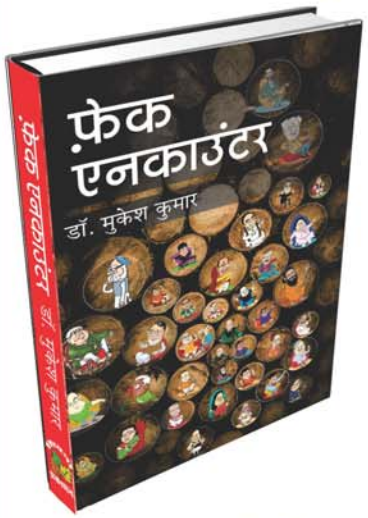

सुप्रसिद्ध पत्रकार डॉ. मुकेश कुमार द्वारा समय-समय पर साक्षात्कार के रूप में लिखे गए व्यंग्य लेखों का संग्रह-
फ़ेक एनकाउंटर
मूल्य : 300 रुपये
पेपरबैक संस्करण

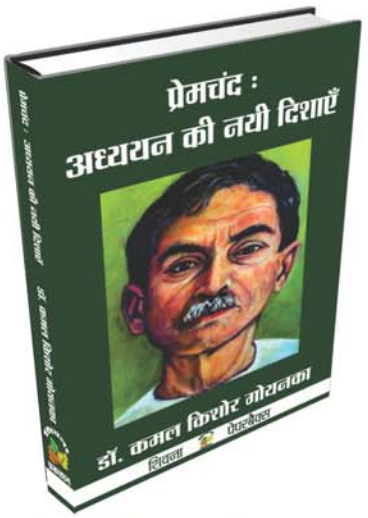

प्रेमचंद साहित्य के विशेषज्ञ डॉ. कमल किशोर गोयनका द्वारा प्रेमचंद के जीवन पर एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक-
प्रेमचंद: अध्ययन की नई दिशाएँ
मूल्य : 475 रुपये
पेपरबैक संस्करण

हिन्दी की महत्त्वपूर्ण कहानीकार, उपन्यासकार डॉ. सुधा ओम ढींगरा की नई कहानियों का संग्रह-
सच कुछ और था...
मूल्य : 250 रुपये
सजिल्द संस्करण

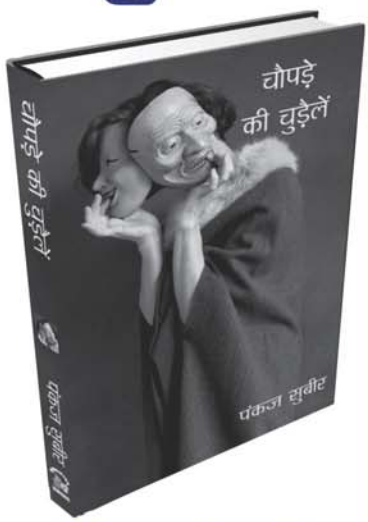

चर्चित कहानीकार तथा उपन्यासकार पंकज सुबीर की नौ नई कहानियों का संकलन-
चौपड़े की चुड़ैलें
मूल्य : 250 रुपये
सजिल्द संस्करण

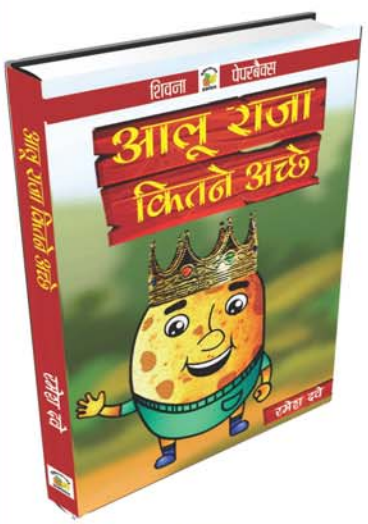

वरिष्ठ आलोचक तथा कथाकार रमेश दवे द्वारा लिखी गई बाल कहानियों का संग्रह-
आलू राजा कितने अच्छे
मूल्य : 49 रुपये
पेपरबैक संस्करण

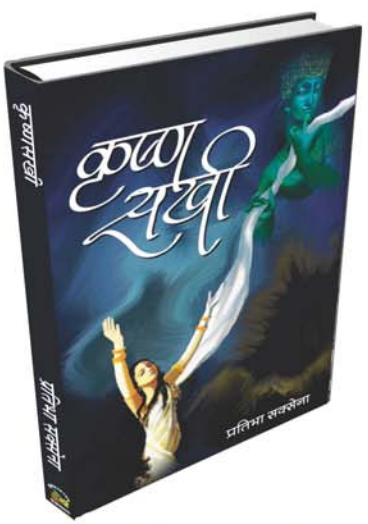

प्रतिभा सक्सेना का श्रीकृष्ण तथा द्रोपदी पर केंद्रित पौराणिक पृष्ठभूमि पर रचित उपन्यास-
कृष्णा सखी
मूल्य : 375 रुपये
पेपरबैक संस्करण

उर्दू के मशहूर शायर प्रो. मुज़फ़्फ़र हनफ़ी की चुनिंदा ग़ज़लों का संग्रह देवनागरी लिपि में-
ग़ज़ल दस्ता
मूल्य : 220 रुपये
पेपरबैक संस्करण

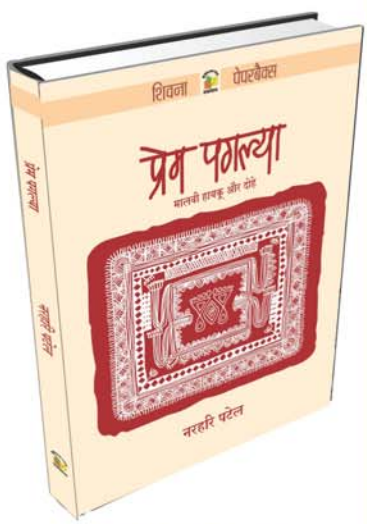

मालवी बोली के वरिष्ठ साहित्यकार श्री नरहरि पटेल के मालवी हायकु और दोहों का संग्रह-
प्रेम पगल्या
मूल्य : 200 रुपये
पेपरबैक संस्करण

शिवना प्रकाशन
शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन की पुस्तकें सभी प्रमुख ऑनलाइन शॉपिंग स्टोर्स पर

amazon http://www.amazon.in
flipkart.com http://www.flipkart.com
paytm https://www.paytm.com
ebay http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

संरक्षक एवं प्रमुख संपादक
सुधा ओम ढींगरा

संपादक
पंकज सुबीर

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : 07562405545, 07562695918
मोबाइल : 09806162184
ईमेल : vibhomswar@gmail.com

ऑनलाइन 'विभोम-स्वर' :
http://www.vibhom.com/vibhomswar.html
http://vibhomswar.blogspot.in
फेसबुक पर 'विभोम स्वर'
https://www.facebook.com/vibhomswar
एक प्रति : 50 रुपये (विदेशों हेतु ५ डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
200 रुपये (एक वर्ष), 400 रुपये (दो वर्ष)
1000 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)

विदेश प्रतिनिधि
अनिता शर्मा (शंघाई, चीन)
रेखा राजवंशी (सिडनी, आस्ट्रेलिया)
शिखा वार्ष्णेय (लंदन, यू के)
नीरा त्यागी (लीड्स, यू के)
अनिल शर्मा (बैंगकॉक)
डिज़ायनिंग
सनी गोस्वामी, शहरयार
तकनीकी सहयोग
पारुल सिंह
संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक।
पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा।
पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर में प्रकाशित होगी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर मध्यप्रदेश रहेगा।

विभोम-स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 2, अंक : 7, त्रैमासिक : अक्टूबर-दिसम्बर 2017
RNI NUMBER : MPHIN/2016/70609
ISSN NUMBER : 2455-9814

आवरण चित्र
राजेंद्र शर्मा बब्बल गुरु

Dhingra Family Foundation
101 Guymon Court, Morrisville
NC-27560, USA
Ph. +1-919-678-9056 (H),
+1-919-801-0672(MO.)
Email: sudhadrishti@gmail.com

इस अंक में

विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 2, अंक : 7

त्रैमासिक : अक्टूबर-दिसम्बर 2017

संपादकीय 5

मित्रनामा 7

साक्षात्कार

अनिल शर्मा
सुधा ओम ढींगरा की बातचीत 10

कहानियाँ

उसका मरना
अनिल प्रभा कुमार 16

तारो बीबी
डॉ. ऋतु भनोट 20

और गुड्डो भाग गई....!
वन्दना अवस्थी दुबे 23

पेशावर वाली माँ
पारुल सिंह 28

लघुकथाएँ

परतें
शशि पाधा 22

जन-गण-मन
विजयानंद विजय 22

भाषांतर

राक्षस गीत
मूल तेलुगु कहानी : अनिल एस. रॉयल
अनुवाद : आर.शांता सुंदरी 30

पुल पर बैठा बूढ़ा
मूल अमेरिकी कहानी : अर्नेस्ट हेमिंग्वे
अनुवाद : सुशांत सुप्रिय 35

व्यंग्य

जो न करे ख़ुदाई, वह करे चतुराई
डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल 37

विलायती राम पांडेय और शुगर का झमेला
लालित्य ललित 40

टाइम सरेंडर्स ऐट द बैरेल और झूठ
दिलीप तेतरवे 42

एकलव्य कुमार की सच्ची कथा
कमलेश पाण्डेय 44

आलेख

हिन्दी साहित्य का बाज़ारकाल
भरत प्रसाद 46

शोध आलेख

समकालीन हिन्दी कहानी में महानगरीय नारी जीवन
मेरी रिया डी .काउथ 51

वैश्वीकरण और भारतीय स्त्री: विभ्रम और यथार्थ
अपरूपा पंडित 54

अमेरिका में रचित 'प्रवासी हिन्दी साहित्य' का विकास
डॉ. नवनीत कौर 57

दोहे

रघुविन्द्र यादव 34

ग़ज़लें

भावना कुमारी 53, 66
अनिरुद्ध सिन्हा 66

कविताएँ

अर्चना गौतम 'मीरा' 59
सुधा गोयल 60
बेनू सतीश कान्त 61
श्रीपर्णा तरफदार 62
सुधीर कुमार सोनी 62
ओम नागर 63
अनुराधा सिंह 64
अनीता शर्मा (सखी) 64

समाचार सार

फ़ेक एनकाउंटर का लोकार्पण 66
जलतरंग पर आधारित नाटक मंचन 67
बैंक ऑफ़ बड़ौदा का 'महाराजा सयाजीराव भाषा सम्मान' श्री शैलेष लोढ़ा को 67
सुनील गज्जाणी को साहित्य सम्मान 67
गुरुग्राम हरियाणा में व्यंग्य संगोष्ठी 68
काव्य गोष्ठी एवं साहित्य-परिचर्चा 70
डॉ. प्रेम जनमेजय सम्मानित 70
'भ्रष्टाचार के सैनिक' पर चर्चा 71
'जयनंदन:व्यक्तित्व एवं कृतित्व' का विमोचन 71
विश्व मैत्री मंच का सम्मेलन 72
श्री विज्ञान व्रत सम्मानित 72
कैलाश मंडलेकर को सम्मान 72
सूर्यबाला सम्मानित 73
कवि अशोक अंजुम सम्मानित 73
लालित्य ललित की काव्य पुस्तकें लोकार्पित 73
ओमप्रकाश प्रजापति सम्मानित 73

आख़िरी पन्ना 74

विभोम-स्वर सदस्यता प्रपत्र

यदि आप विभोम-स्वर की सदस्यता लेना चाहते हैं, तो सदस्यता शुल्क इस प्रकार है : 200 रुपये (एक वर्ष), 400 रुपये (दो वर्ष), 1000 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)। सदस्यता शुल्क आप चैक / ड्राफ़्ट द्वारा विभोम स्वर (VIBHOM SWAR) के नाम से भेज सकते हैं। आप सदस्यता शुल्क को विभोम-स्वर के बैंक खाते में भी जमा कर सकते हैं, बैंक खाते का विवरण इस प्रकार है : Name of Account : **Vibhom Swar**, Account Number : **30010200000312**, Type : **Current Account**, Bank : **Bank Of Baroda**, Branch : **Sehore (M.P.)**, IFSC Code : **BARB0SEHORE** (Fifth Character is "Zero") (विशेष रूप से ध्यान दें कि आई. एफ. एस. सी. कोड में पाँचवा कैरेक्टर अंग्रेज़ी का अक्षर 'ओ' नहीं है बल्कि अंक 'ज़ीरो' है।)

सदस्यता शुल्क के साथ नीचे दिये गए विवरण अनुसार जानकारी ईमेल अथवा डाक से हमें भेजें जिससे आपको पत्रिका भेजी जा सके:

नाम : — — — — — — — — — — — — — — — — **डाक का पता :** — **सदस्यता शुल्क :** — — — — — — — **चैक / ड्राफ़्ट नंबर :** — — — — — — — —

ट्रांज़ेक्शन कोड (यदि ऑनलाइन ट्रांस्फ़र किया है) : — — — — — — **दिनांक :** — — — — — — — — — — — — — —

(यदि सदस्यता शुल्क बैंक खाते में नकद जमा किया है तो बैंक की जमा रसीद डाक से अथवा स्कैन करके ईमेल द्वारा प्रेषित करें।)

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय : पी. सी. लैब, शॉप नंबर. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001, दूरभाष : 07562405545, मोबाइल : 09806162184, ईमेल : vibhomswar@gmail.com

हिंसक प्रवृत्ति के परिणाम पूरा विश्व भुगत रहा है

सुधा ओम ढींगरा
101, गाईमन कोर्ट, मोर्रिस्विल्ल
नॉर्थ कैरोलाइना-27560, यू.एस. ए.
फोन : +1-919-678-9056
मोबाइल : +1-919-801-0672
ईमेल sudhadrishti@gmail.com

आइए! हर वर्ष की तरह इस वर्ष भी नव वर्ष के आगमन की तैयारी में जुट जाएँ और प्रत्येक वर्ष की तरह तीन महीने पहले से ही सब उत्साहित हो कर बीत रहे वर्ष को विदा कहें और आने वाले वर्ष का स्वागत करें। अक्टूबर से दिसंबर तक पूरा विश्व त्योहारों और उत्सवों की रौनक और गहमागहमी से उल्लासित हो उठता है। ईद, दीपावली, दशहरा, थैंक्सगिविंग , क्रिसमस हर जगह बड़ी धूमधाम से मनाए जाते हैं। चहुँ ओर छाई ख़ुशी और प्रसन्नता जीवन में रंग और रस बिखेर देती है। त्योहारों के मौसम की इस उमंग में चलें आज कुछ सकारात्मक खोजें.....विदेश की ग़लत और नकारात्मक बातों को तो देश में बहुत प्रोत्साहित किया जाता है, पर उनके सकारात्मक पहलुओं को नज़रअंदाज़ कर दिया जाता है। कभी यहाँ के अनुशासन, सफाई और देश के प्रति प्रत्येक नागरिक जो अपनी ज़िम्मेदारी समझाता है, उसकी ओर सोचें। यहाँ की चर्चें, मंदिर, मस्जिदें, गुरुद्वारे, अलग-अलग संस्थाएँ, यहाँ के हाइवे, सड़कों को अपनाते हैं और उनकी सफाई का ख़याल रखते हैं। हर बात में यहाँ के नागरिक सरकार की ओर नहीं देखते। इस वर्ष एक बार इस ओर ध्यान ज़रूर दें । छोटे-छोटे परिवर्तनों से ही आप देश को निखार सकते हैं, सँवार सकते हैं।

दीवाली और नववर्ष में अपने-अपने एरिया की सफाई का बीड़ा उठा कर तो देखें! परिवर्तन इसी तरह तो आता है .....

अमेरिका में टेक्सॉस प्रान्त के ह्यूस्टन शहर में हार्वी और फ़्लोरिडा में इरमा हरिकेन आने के बाद बहुत से पाठकों के ईमेल आए और कइयों ने फ़ोन कॉल भी किये। बस एक ही बात भिन्न-भिन्न तरह से कही गई कि इन हरिकेन के चित्र देखने और टॉरनेडो के बारे में जानने के बाद वे मेरे उपन्यास 'नक़्क़ाशीदार केबिनेट' से और भी अधिक जुड़ गए हैं। प्राकृतिक आपदाएँ हों या अन्य किसी कष्टदायक या चुनौतीपूर्ण समय से यह देश निकल रहा हो, सरकार की मुस्तैदी और लोगों का नि:स्वार्थ सेवाभाव तथा समर्पण; जिसका मैंने अपने उपन्यास में ज़िक्र किया था, उन्हें सही और सच्चा लगा। दूर -दूर प्रान्तों के लोग अपना घर बार छोड़ कर , अपनी-अपनी नौकाएँ लेकर पहुँच गए थे, लोगों को पानी से निकालने के लिए। कइयों ने तो हरिकेन पीड़ित अनजान, अजनबी लोगों के रहने के लिए अपने घर तक खोल दिए थे। यहाँ नि:स्वार्थ सेवा करना स्कूलों से ही सिखाई जाती है।

लॉस वेगस के म्यूज़िक कॉन्सर्ट में बन्दूक की गोलियों से मरे लोगों की दुर्घटना के बाद मुझे देश के एक पत्रकार ने पूछा-अमेरिका इतना हिंसक क्यों है? इसका मैं क्या जवाब देती। हिंसा तो दिन-प्रति-दिन बढ़ती ही जा रही है। विश्व के किस कोने में अहिंसा की जोत जल रही है। जानना चाहती हूँ। जिस देश ने दुनिया को अहिंसा का पाठ पढ़ाया, उसी की धरती पर आए दिन इंसानों का खून बहता है, हिंसक घटनाएँ होती हैं और शिक्षा संस्थाओं में लड़कियों के साथ अभद्रता की जाती है। बेझिझक सरे आम सामूहिक बलात्कार किया जाता है। उनका, जिनके बाल रूप को 'कंजक देवी' समझकर अष्टमी के दिन पाँव धोकर उन्हें पूजा जाता है। (कुछ प्रान्तों में) जान से मारना ही हिंसा नहीं, आत्मा को कुचल डालना भी हिंसा है।

पूरे विश्व में आस्थाओं और विचारों की टकराहट ने ऐसी नकारात्मकता से वातावरण को घेर लिया है; जिसने मानव में धैर्य और सहनशीलता कम कर दी है। पहले से नकारात्मक

संपादकीय

सोच वाले इस समय में और भी नकारात्मक हो रहे हैं। ऐसी मानसिकता मस्तिष्क के उन कोनों को प्रभावित करती है; जहाँ से वे रसायन उत्पन्न होते हैं, जो निराशा और अवसाद बढ़ाते हैं । यही रसायन कभी-कभी हिंसक प्रवृत्ति की जड़ भी होते हैं। इस हिंसक प्रवृत्ति के परिणाम पूरा विश्व भुगत रहा है। किसी देश में बम्ब विस्फोट होते हैं, तो कहीं गोलियाँ चलती हैं।

25 अगस्त शुक्रवार का वॉल स्ट्रीट जर्नल हाथ में आया तो एक समाचार ने चौंका दिया। अमेरिका के डेट्रॉइट शहर में मिनासोटा प्रान्त की एक सात वर्षीय कन्या का ख़तना किया गया। यह कैसे हो गया? समाचार बेचैन कर गया; क्योंकि 1996 से अमेरिका में Female genital mutilation अवैध है। डॉ. जुमना नागरवाला, जिसने लड़की का clitoris काटा था और डॉ. फखरूदीन अत्तर, जिसका क्लिनिक था, दोनों डॉक्टर पकड़ लिए गए हैं। इस समय जेल में हैं। इस केस की गहराई में जाने के बाद यह पता चला है कि डॉ. जुमना नागरवाला ने सौ से अधिक लड़कियों की सुन्नत यानी ख़तना किया है। अक्टूबर में इन डॉक्टरों पर मुक़दमा चलेगा।

विभोम-स्वर के पिछले अंक में Nawal El Saadawi की पुस्तक 'The Hidden Fact Of Eve' का सुधा अरोड़ा द्वारा किया गया अनुवाद 'अरब देशों की औरतें' छपा था। उसे पढ़कर बेहद तकलीफ पहुँची थी और अब कुछ ही दिनों बाद अमेरिका में उसी कृत्य, जिसके विरुद्ध यह पूरी किताब लिखी गई है, को अंजाम देते कट्टरवादी पाए गए हैं। इस सदी में, अमेरिका जैसे अत्याधुनिक देश में रहते हुए, आस्थाओं, परम्पराओं और रूढ़ियों के नाम पर लड़कियों को बिना बताए, उनसे उनके सुख का अधिकार छीनना कहाँ से तर्क संगत है?

अफ़सोस की बात है कि नारी का अंग भंग करके सदियों से पितृसत्ता द्वारा नारी का शोषण हो रहा है और मानवीय अधिकारों के लिए अपनी आवाज़ बुलंद करने वाले अभी भी खामोश हैं!

मित्रो! विश्व भर की बातें हो गईं और भविष्य में भी होती रहेंगी। फिलहाल तो हम जुट जाएँ आने वाले त्योहारों की तैयारी में। सुखद पल जब भी मिलें, जितने भी मिलें भरपूर जिएँ और दिल से उनका आनंद उठाएँ!

दीपावली और नववर्ष की आप सबको विभोम-स्वर टीम की ओर से ढेरों शुभकामनाएँ!!!

आपकी,

सुधा ओम ढींगरा

उत्सव, पर्व, त्योहार ये किसी एक धर्म या किसी एक संप्रदाय के नहीं होते हैं, ये तो सब के होते हैं। आनंद पर किसी एक का हक़ नहीं होता, सब का होता है। यदि हम अपनी संकीर्ण सोच से बाहर निकल कर सभी धर्मों के पर्व मिल-जुल कर मनाने लगें, तो सारी समस्याओं का समाधान हो जाएगा।

मित्रनामा

तहे दिल से शुक्रगुज़ार

'कुमकुम बहुत आराम से है' कहानी विभोम-स्वर के पाठकों (जिनमें एक मैं भी हूँ) के साथ साझा करने के लिए ज़ेबा अल्वी का तहे दिल से शुक्रगुज़ार हूँ। ऐसी कहानी ज़िन्दगी में कभी-कभार ही सामने आती है।

-आबिद सुरती, प्रसिद्ध कार्टूनिस्ट, मुम्बई

***

बहुत-बहुत बधाई

'विभोम-स्वर' का जुलाई सितम्बर अंक मिला, धन्यवाद। मुझे विभोम-स्वर का शिद्दत से इन्तज़ार रहता है। इसकी कहानियाँ अन्दर तक पैठती हैं, सोचने को विवश करती हैं, एक आइना दिखाती हैं। हर अंक पठनीय और संग्रह करने के लिए है। एक अच्छे अंक के लिए बहुत-बहुत बधाई।

-सुधा गोयल, बुलन्दशहर

***

स्मृतियों को भी कुरेद दिया

अच्छे व्यंग्यकार हैं मोहन लाल मौर्य ! राजनीति, सामाजिक संगठन, शैक्षणिक संस्थान, आर्थिक संस्थान या शहर-गाँव हर जगह 'विकास' शब्द चर्चा में है ! विकास की चर्चा तो हर तरफ है पर सही मायने में विकास है कि नहीं, इसे लेकर संदेह बना हुआ है ! विकास के नाम पर बंदर बाँट ज़्यादा है ! इस तथाकथित विकास से उनका ज़्यादा भला हुआ है जो पहले से ही सम्पन्न थे, पर जो हाशिए पर थे उनका कितना विकास हुआ है, यह समाज को देखकर स्वत: ही पता चल जाता है। 'विकास' शब्द बहुत भ्रामक है और यह इसलिए कि राजनेता हो या नौकरशाह, शिक्षा विभाग हो या पुलिस विभाग या फिर कोई अन्य विभाग हर जगह भ्रष्टाचार और लूट - खसोट ही है ! इस विकास के नाम पर सत्तारूढ़ पार्टी विपक्ष को कोसती है और विपक्षी पार्टी सत्तारूढ़ पार्टी में मीन - मेख निकालती है, पर सही मायने में पाक साफ और ईमानदार कौन है ? जितना विकास कागज़ पर होता है, उतना धरातल पर नहीं दिखता है और इस विषय पर क्या ही ज़ोरदार व्यंग्य किया है मोहनलाल मौर्य ने !

अरब देश की औरतों के साथ सदियों से होने वाले अमानवीय अत्याचार के बारे में पढ़ते हुए लगा कि दहशत की एक तेज़ छुरी मेरे कलेजे को चीर रही है ! औरत का जिस्म माँ है, बेटी है, बहन है और बीवी है पर उसकी यौनिकता हमेशा ही एक संदेह के घेरे में रहती है ! ख़ासतौर से जब समाज या परिवार की बात आती है, तो औरत की यौनिकता पर प्रतिष्ठा का आवरण डालकर सुरक्षा की जाती है और पर्दे के पीछे उसका जमकर शोषण किया जाता है !! हर धर्म में ऐसी व्यवस्था की गई कि औरत को नियंत्रित रखा जा सके और कई बार तो बड़े - बुज़ुर्गों के मुँह से सुन चुका हूँ कि, ''औरतों को मुट्ठी में रखना चाहिए, थोड़ी सी छूट मिली कि ख़ानदान की इज़्ज़त गई !'' उन पर रोब दाब बना कर रखा जाता है, ताकि वे हर हाल में पितृसत्ता की चाकरी करती रहें ! अपने शरीर और स्वास्थ्य की परवाह किए बग़ैर पुरुष की हर इच्छा को पूर्ण करती रहें !! परम्परा के नाम पर स्त्री के शोषण के अनगिनत तरीके हैं, लेकिन सुन्नत की यह परंपरा शायद स्त्री शोषण की सबसे निर्मम परम्परा है ! बिना एनस्थीसिया दिए और बिना कोई एन्टीसेप्टिक लगाए clitoris को काटना कैसा पीड़ादायक यंत्रणा होता होगा, यह सोचकर ही रूह काँप जाती है !! स्त्री की कामेच्छा को नियंत्रित रखने के कैसे क्रूरतम उपाय ईजाद कर रखे हैं कुछ एशियाई समाजों ने !! सात-आठ साल की बच्चियों को भविष्य में पाक - साफ रखने के नाम पर उस जानलेवा प्रक्रिया से गुज़रना पड़ता है जिसका ज़िक्र न तो मेडिकल की क़िताबों में है, न यह मानवीय लगता है ! वैसे यह भी बड़ा आश्चर्यजनक तथ्य है कि चिकित्सा शास्त्र में भी clitoris को कुछ ख़ास अहमियत नहीं दी गई है और प्रोफ़ेसर का मुँह तमतमा जाता है जब छात्रा उससे क्लिटोरिस (clitoris) के बारे में पूछ लेती है !! इतना ही नहीं मेडिकल की प्रोफ़ेसर कहती है कि, ''कोई इसके बारे में सवाल न पूछे क्योंकि औरत के जिस्म में इसकी कोई अहमियत नहीं है !! स्त्री देह के एक बेहद ज़रूरी और अहम हिस्से की ऐसी अवहेलना और ऐसी दुर्गति !! ऐसे भ्रामक और जाहिल शैक्षणिक और सामाजिक परिवेश में मेरे हिसाब से स्त्री होना ही एक गुनाह है !! स्त्री को पंगु और संवेदनहीन जीवन देकर आख़िर ये क्या साबित करना चाहते हैं कि 'सेक्स' को 'शर्मनाक' समझा जाता रहे और स्त्रियों का नारकीय शोषण अनवरत चलता रहे ? लगभग सभी एशियाई समाजों में 'सेक्स' और 'स्त्री' को लेकर पिछड़ापन है - कहीं थोड़ा कम तो कहीं बहुत ज़्यादा !!! मानसिक रूप से रुग्ण इन पिछड़े हुए समाजों में जागरूकता पैदा करने वाली क़िताब का ज़िक्र करने के लिए सुधा अरोड़ा को हार्दिक धन्यवाद !!

उर्दू से हिन्दी में ज़ेबा अल्वी द्वारा लिप्यांतरित उर्दू कहानी 'कुमकुम बहुत आराम से है' को बड़े आराम से पढ़ना शुरू किया ! ज़ाहिदा हिना की भाषा और शैली मुझे बेहद पसंद है और मैंने इनकी कई कहानियाँ पढ़ रखी हैं !! इस कहानी को पत्र शैली में लिखा गया है और वह पत्र भी कुमकुम के द्वारा अपनी दादी माँ को लिखा गया है, यह देखकर मेरे हर्ष का कोई पारावार न रहा, क्योंकि पत्र - लेखन में मुझे भी अपूर्व आनन्द मिलता है ! यह क़िस्सा काबुल पर अमरीकी बमबारी की त्रासदी को बस एक ही वाक्य में बड़ी शिद्दत से महसूस करवा देती है, ''लेकिन दादी माँ यहाँ मैं घाव सीते-सीते थक गई पर घायल ख़त्म नहीं होते !'' इस कहानी में बारिश में छप-छप कर भीगते बचपन की स्मृतियों ने जैसे मेरी स्मृतियों को भी कुरेद दिया और ख़स्ता नमकीन काजू के ज़िक्र से मेरे मुँह में भी पानी भर गया पर अगले ही पल बंगाल की भुखमरी के भयानक क़िस्से ने मेरे रोंगटे खड़े कर दिए और एक किस्म की झुरझुरी तन-मन को हिला गई, तो पुन: मैंने शब्दों का दामन थाम लिया और कहानी मुझे अमरीका के वार - थिएटर, ग़रीब और बंजर मुल्क के उन तालिबानों के तालिबान बनने के कारण तक ले गई और तब मुझे लगा कि वाकई जिन्हें बचपन से ही माँ, दादी या अन्य स्त्रियों का सुकोमल स्नेह न मिले, वे तो आख़िर तालिबानी ही बनेंगे और बामियान जैसे स्थापत्य को तोप के गोलों से उड़ाएँगे न ? इस कहानी को पूरा पढ़ लेने के बाद महसूस हुआ कि जैसे शब्दों के रूखेपन और रगड़ से कलेजा ज़ख़्मी हो गया है और मेरी आँखें भींग गई हैं !! आपसे निवेदन है

कि पाकिस्तान के अन्य महत्त्वपूर्ण लेखक/लेखिकाओं की कहानियाँ भी अगले अंकों में पेश किया करेंगे !!

लिफ़ाफ़े में चिट्ठी डालकर भेजने का ज़माना नहीं रहा, अब तो फोरजी स्पीड के कारण त्वरित कम्यूनिकेशन का ज़माना है ! विज्ञान दिन दूनी और रात चौगुनी तरक्की कर रहा है और हमारे हाथों में नित नए तकनीकों से लैस मोबाइल आ रहे हैं और हमारी दिनचर्या, आदतें, रहन-सहन और वैचारिकता परिवर्तित हो रही है ! आज जज़्बात की कोई जगह नहीं रही और हर हर्फ़ / लफ़्ज संजीदगी और एहसास की ख़ुशबू से वंचित ! मोबाइल में वो संवेदना कहाँ जो हाथ से लिखे शब्दों में होता था !! मार्टिन जॉन की लघुकथा लाजवाब है !!

दीनदयाल नैनपुरिया की कहानी 'लौट आओ...' में किसे लौट आने को कह रहे हैं कथाकार यह देखना ज़रूरी लगा और मैं कथा में समाहित हो गया ! आज ऐसे कितने लोग हैं जो अपने मुल्क की तरक्की को अपने स्वार्थ से ज़्यादा महत्त्व देते हैं ? देश की सेवा के नाम पर विदेश जाने के ऑफर को ठुकराना कोरी भावुकता नहीं तो और क्या कहलाएगी ? वैसे यह भी ग़लत ही है कि हमारे देश की प्रतिभाएँ देश से पलायन कर जाती हैं, क्योंकि आज भी इस देश में प्रतिभाओं को वह सम्मान और सुरक्षा नहीं मिल पाता है जो विदेश में मिलता है, उस पर जिस विभाग में चले जाइए भ्रष्टाचार और घूसखोरी !! देश के बाहर जाकर क्या देश की सेवा नहीं की जा सकती है ? बेकार की भावुकता ने कहानी को कमज़ोर किया है, वैसे कथाकार को अभी और मेहनत करनी चाहिए !!!

प्रतिभा सक्सेना की जबर्दस्त प्रतिभा को सलाम ! इनकी कहानी बेहद संजीदगी से लिखी गई एक बेहतरीन कहानी है ! चार साल की छोटी सी बच्ची की ज़िद को पूरा करने की कोशिश तो अपने-अपने घरों में बहुत से लोग करते हैं, पर इस विषय पर आधारित एक श्रेष्ठ कहानी लिखना वाकई काबिले तारीफ है !! कहानी में अन्त तक यह जिज्ञासा बनी रहती है कि आख़िरकार यह 'पाकिट' क्या चीज़ है, जिसके लिए बच्ची इतना ज़िद कर रही है !! मैंने जब इस कहानी को पढ़ना शुरू किया था तो मन में यह एक खटका था, न जाने, यह कहानी कैसी हो !! ''पर कहानी मेरी आशा से भी बढ़कर थी !! छोटी बच्ची को बहलाना आसान काम नहीं होता है क्योंकि एक ज़रा सी चीज़ के लिए भी मना कर दिया तो समझिए कि अनर्थ हो गया !! चाहे ख़ुश होकर या कि नाराज़ होकर माँ - बाप को तो प्राय: बच्चों की हर डिमान्ड पूरी करनी ही पड़ती है चाहे वह सिगरेट का एक खाली पैकट ही क्यों न हो, जिस पर लालटेन का चित्र बना हो !! पूरी कहानी पढ़ कर मैं प्रतिभा जी की कहानी कला का कायल हो गया हूँ और आशा करता हूँ कि आगे भी इनकी बेहतरीन कहानियाँ 'विभोम-स्वर' में छपा करेंगी !!

भारत को विविधताओं का देश कहा जाता है, क्योंकि इस विशाल देश के भीतर विविध संस्कृतियाँ समाहित हैं और विविध बोलियों/भाषाओं वाले इस देश की एक भाषा 'पंजाबी' एक जीवंत और समृद्ध भाषा है !! इस भाषा की कहानी (संतुष्टि) के हिन्दी अनुवाद का भी आनन्द उठाने लगा !! साधु-संतों से जुड़ी कहानियाँ मैंने कम ही पढ़ी हैं, सो गहरी उत्सुकता और उत्साह के साथ कहानी में बढ़ा जा रहा था !! बहुत अजीब नहीं लगा जब एक युवा सन्यासी को एक युवा लड़की के प्रति आकर्षित होते हुए देखा, आख़िर सन्यासी भी तो मनुष्य ही होते हैं, सो उसके हृदय में भी तो स्त्री - सौन्दर्य के लिए एक आदिम खिंचाव का होना स्वाभाविक ही है ? हाँ, रमते जोगी के प्यार में पागल वल्ली पर ज़रूर तरस आया, क्योंकि सन्यासी का प्रेम सिर्फ देखने तक ही सीमित रहा और वह चला गया और लौट कर आया भी तो प्रेम जतलाने के बजाय 'मन और तन पर काबू करने की' नसीहत करने लगा !! ऐसे अस्वाभाविक प्रेमी से प्रेम करने का क्या तुक है जिसके लिए 'त्याग और तप' का ओहदा 'प्रेम' से ज़्यादा ऊँचा है ?

'एक और दीवार' को देखकर सोचा कि देखूँ तो सही कि मंजुश्री कौन सी दीवार की बात कर रही हैं और मैं बड़ी तेज़ी से शब्दों से निपटने लगा ! मानसिक और मनोवैज्ञानिक तनावों से ग्रस्त लोगों के उपचार के लिए बने अस्पताल में लगातार दो साल रह चुकी मरीज़ की बाहरी दुनिया में जाने की उत्सुकता या घर लौटने की छटपटाहट ने मेरी जिज्ञासा को बढ़ा दिया, हालाँकि थोड़ी सी ऊब भी हो रही थी, पर ऐसा कम ही होता है कि कोई कहानी शुरू करूँ और बीच में ही छोड़कर उठ जाऊँ !! कहानी मन के सन्नाटे को तोड़कर एक नया भाव - संसार रच चुकी थी और मैं इस कथा की नायिका के प्रति सहानुभूति महसूस करने लगा था और सोच रहा था कि वह दीवार फाँद कर मुक्त हो जाए, पर ऐसा नहीं हुआ और विवश होकर वह अपने कमरे में लौट गई, कहानी ख़त्म हो गई पर मेरे मन में एक प्रश्न कुलबुलाता रहा, ''क्या उसे दवा या डॉक्टर की बजाय प्रेम - स्नेह और अपनत्व की ज़्यादा ज़रूरत नहीं थी ?''

'काग़ज़ की नावें' तैराने के बाद सोचा कि 'सत्संग' में भी शिरकत कर लिया जाए और मैं नकुल गौतम की लघुकथा भी पढ़ने लगा ! बूढ़े-बुज़ुर्ग पति-पत्नी सत्संग के बहाने लम्बा सफ़र तय करके अपने बेटे - बहू से मिलने आए, पर बहू के कठोर वचन सुनकर दुखी हुए और एक - दूसरे से आँख चुरा कर थोड़ा रो कर जी हल्का कर लिया !! छोटी सी लघुकथा में इस विकराल समय के विडंबना और संबंधों में आते खोखलेपन और स्वार्थ को दर्शा दिया है लेखक ने !!

-नवनीत कुमार झा
हरिहरपुर, दरभंगा - 847306
rambharos@gmail.com

***

बहुत-बहुत शुभकामनाएँ!

'विभोम-स्वर' से जोड़ने के लिए बहुत-बहुत शुक्रिया,'विभोम-स्वर' लायक मेरे लिए कोई सेवा हो तो ज़रूर आवाज़ दीजिएगा। इस अंक का संपादकीय आज के युग की त्रासदी और सच को उजागर करता है; कैसी दुनिया में रह रहे हैं और आने वाली पीढ़ी के लिए क्या छोड़ कर जाएँगे, पाठक की चेतना से पूछता है और इस सवाल के जवाब के लिए हम नहीं तो कौन उत्तरदायी है? पुष्पा सक्सेना की कहानी पढ़ी, समाज में औरत की दुर्दशा वहीं की वहीं। हिन्दी प्रेमियों के लिए 'विभोम-स्वर' को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रकाशित करने के लिए बहुत-बहुत शुभकामनाएँ!!

-नीरा त्यागी, यूके

***

पाठकीय संतोष मिला

'विभोम-स्वर' का जुलाई-सितम्बर 17 का अंक मिल गया है। आभार। संपादकीय में सुधा जी का कथन ''मरता आम आदमी ही है'' कितना सही है। ग़ज़लों के प्रति आपका प्रेम स्पष्ट हुआ। पर्याप्त स्पेस दी है। मेरी भी ग़ज़ल छापी। कृतज्ञ हूँ। कुछ स्तंभ तो सामान्य पत्रिकाओं से अलग हट कर हैं। अंक के पद्यांश से पाठकीय संतोष मिला। साहित्यिक समाचार भी जानकारी बढ़ा गए।

-चन्द्रसेन विराट

121, बैकुंठधाम कालोनी, आनन्द बाज़ार के पीछे, इन्दौर-452018 (म.प्र.) मो. 09329895540

***

जुड़वाँ भाई-बहन

जुड़वाँ भाई-बहन की तरह 'विभोम-स्वर' और 'शिवना-साहित्यिकी' जुलाई-सितंबर 2017 के अंकों के रूप में मिले- हृदय फिर से गद् गद् हो गया। इससे पूर्व भी मित्र विकेश निझावन के सौजन्य से अंक मिलते रहे हैं। एक में तो विकेश के कहानी संग्रह 'छुअन' पर मेरी समीक्षा भी छपी थी, अस्तु। विभोम-स्वर के प्रस्तुत अंक में सुधा जी का सम्पादकीय 'आने वाली पीढ़ी...' एक नाटकीय ढंग से आस्थाओं और विचारों के संघर्ष पर टिप्पणी करता है। सुधा जी को 'पुष्पगंधा' में भी बहुत पढ़ा है। प्रवासी साहित्य के परिदृश्य पर उनकी पकड़ खूब है। शैलजा सक्सेना के साथ हुए साक्षात्कार में उन्होंने वैचारिक प्रतिबद्धता गुटबंदी, बाज़ारवाद पर बड़े पैने प्रश्न पूछे हैं। आख़िरी पन्ने पर 'धर्म व विचार के बीच निजी जीवन' में मैनेजर पाण्डेय पर हुए कुछ आक्षेपों का सटीक उत्तर दिया है पंकज सुबीर ने तथा वैचारिक कट्टरता की निन्दा की है। मैं भी प्र.ले.स. से जब जुड़ा था, इसी कट्टरता का शिकार बना। (आपको मैं आपकी लंबी कहानी 'अप्रैल की एक उदास रात' - वागर्थ जुलाई -2017 पर भी व्यक्तिगत रूप से बधाई देना चाहता हूँ। नंदा (नंदू) तथा शुचि (डब्बा) सहेलियों के पात्र स्मरणीय रहेंगे।)

पुष्पा सक्सेना की कहानी 'मेरे बाद' आकांक्षा का विद्रोही रूप प्रस्तुत करती है जो दिवंगत माँ सुरसती के साथ जीवन भर हुए अन्याय के प्रतिकार में किसी भी परिवार में प्रताड़ित सभी को न्याय दिलाने हेतु प्रतिबद्ध-कटिबद्ध हो जाती है। बहुत ख़ूब मुकेश वर्मा की कहानी 'काग़ज़ की नावें' थोड़ी बड़ी लघुकथा प्रतीत होती है। भाइयों के बीच काग़ज़ी नाव के इलखा भी तनातनी के अन्य घरेलू कारणों को लेकर चरित्रों को विस्तार दिया जा सकता था। चन्द्रसेन विराट हिन्दी ग़ज़ल के लिए प्रभावित करते हैं, अंजुम और कुरैशी साहब हिंदुस्तानी ग़ज़लों के लिए। विष्णु सक्सेना के गीत.....

-अमृतलाल मदान, सारशब्द कुंज 1150/11, प्रोफ़ेसर कालोनी, कैथल-136027 (हरि.), मो. 09466239164

***

विभोम-स्वर एक आह्वान.....

साहित्यिक परिवेश में मज़बूती के साथ उपस्थिति बनाती त्रैमासिक पत्रिका 'विभोम-स्वर' सच में एक स्वर है, जो आह्वान करती है, साहित्य के प्रति जागृत करती है। पंकज सुबीर जी का आभारी हूँ, इन्होंने लगभग प्रत्येक अंक पहुँचाने का सद्कार्य किया। अपने गाँव से तीस किलोमीटर दूर जाकर पत्रिका को अपनाता रहा। इसी कड़ी में जुलाई-सितंबर अंक भी मिला। दिन-प्रतिदिन कहानी हो, कलेवर हो, आलेख हो या संपादक की आवाज़, सबमें निखार देखने को मिल रही है।

पत्रिका में कहानी 'मेरे बाद' जो पुष्पा सक्सेना जी के द्वारा लिखी गई है... गहरी संवेदनाओं से ओतप्रोत कहानी हरेक पाठक का ध्यानाकर्षित करने में अव्वल मालूम पड़ती है। यथार्थ की अनुभूति कराने में सफल रही है। समाज में नारी जात की अस्वस्थता को अधिकांश लोग भूनाना चाहते हैं। फिर भी लाचारी की जद से बाहर निकल पात्र आकांक्षा एक मुकाम हासिल करती है और समाज में एक उदाहरण प्रस्तुत करती है। यह दुर्भाग्यपूर्ण ही है कि इक्कीसवीं सदी में भी अन्यान्य महिलाएँ दीवारों से ही लड़ती-झगड़ती जीवन के आख़िरी पन्नों को सफेद छोड़ जाती हैं। और ऐसी ही प्रवृत्तियों की चंगुल में फँसी रही आकांक्षा की माँ सरस्वती... फिर भी अपनी शक्ति को बेटी आकांक्षा में प्रवेश कराती है और आकांक्षा इक्कीसवीं सदी की दहलीज़ पर मुस्तैदी के साथ खड़ी नज़र आती है। आकांक्षा ने समाज को जकड़े कई तरह की विडंबनाओं को तोड़ने का काम किया। उसके बोल्डपन ने एक अलग दृश्य तैयार किया। प्रस्तुति चलती फ़िल्म की भाँति मानस पटल पर अंकित हो गई।

ज़बरदस्त कथानक के साथ कहानी संवेदनशीलता के साथ सार्थक संदेश छोड़ने में सफल रही। क्या खाका खींचा.... विडंबना जनित रोग ने बेटे विमल के मोहपाश में एक माँ शांता को भी डूबा दिया जो अपनी ही बिरादरी को काल कोठरी में रहने को विवश कर देती है। जिसे लेखिका ने बड़ी ही मार्मिकता के साथ यथार्थ के तराज़ू पर रखकर कहानी का अंत भी किया। मेरी ओर से पुष्पा सक्सेना जी को ढेरों शुभकामनाएँ ! इसी कड़ी में कहानी 'लौट आओ...' लेखक दीनदयाल नैनपुरिया जी की पढ़ी। समकालीन दशा पर अच्छा चित्रण है। प्रस्तुति में कमियाँ मालूम पड़ती है। प्रस्तुत कहानी में मान-सम्मान-स्वाभिमान की ख़ातिर ऐसी समस्याएँ विकराल रूप धारण करती जा रही हैं... उसे बखूबी दर्शाने का काम किया है।

-संजय कुमार अविनाश, मेदनी चौकी लखीसराय, बिहार, मोबाइल-9570544102

***

आख़िरी पन्ना बेहद सच्चा

पंकज सुबीर का आख़िरी पन्ना 'धर्म और विचार के बीच निजी जीवन' पढ़ा। बेहद सच्चा, सही। कभी-कभी लोग जिस विचारधारा को मानते हैं, उसे इतना सही समझने लगते हैं, उससे अलग कुछ भी हो, ग़लत लगता है। अपनी सोच में कई बार वे इतने अंधे हो जाते हैं, कि उन्हें दूसरे का सही रास्ता भी ग़लत लगता है। पूरी दुनिया की समस्याओं का कारण भी सोच की कट्टरता है। थोड़ी सी संवेदनशीलता, थोड़ी सी सहिष्णुता, थोड़ा सा लचीलापन अगर विचारधाराओं में आ जाए तो दूसरे सही रास्ते पहचानने का भी शऊर आ जाएगा। वैश्विक चेतना के लिए पंकज जी को ऐसे लेख लिखने चाहिए।

-दिलीप सागर, ह्यूस्टन, टेक्सॉस

***

अनिल शर्मा
संप्रति: मई 2015 से फीजी में भारतीय हाई कमीशन में द्वितीय सचिव (हिन्दी एवं संस्कृति) के रूप में कार्यरत। 2000 से 2005 तक भारतीय उच्चायोग लंदन में अताशे (हिन्दी एवं संस्कृति) के रूप में कार्य किया। भारत में गृह मंत्रालय, केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो में पिछले बीस वर्षों से अधिक समय से कार्यरत।
शिक्षा: लंदन विश्वविद्यालय से एम.ए (ट्रांसलेशन स्टडी) एम .ए (हिन्दी) राजस्थान विश्वविद्यालय बैचलर ऑफ जर्नलिज्म। भारत में कवि, व्यंग्यकार, लेखक, चिंतक, प्रवासी साहित्य के विशेषज्ञ के रूप में चर्चित। हिन्दी के अंतर्राष्ट्रीय प्रचार- प्रसार में सक्रिय भूमिका।
प्रकाशित पुस्तकें: मोर्चे पर, नींद कहाँ है (कविता संग्रह) संपादन: धरती एक पुल (ब्रिटेन के कवियों का संकलन) प्रवासी टुडे, अक्षरम् संगोष्ठी ब्रिटेन में भारतीय हाई कमीशन की पत्रिका - भारत भवन अनुवाद पत्रिका - अनुशीलन हरियाणा साहित्य अकादमी की पत्रिका हरिगंधा का प्रवासी विशेषांक सूरीनाम में आयोजित सातवें विश्व हिन्दी सम्मेलन 2002 में भारत सरकार की पत्रिका का संपादन।
उल्लेखनीय गतिविधियाँ/ उपलब्धियाँ/ प्रतिभागिता: आपने अनेकानेक सम्मेलनों/ कार्यशालाओं में सक्रिय रूप से भाग लिया है। न्यूयार्क-अमेरिका में आयोजित विश्व हिन्दी सम्मेलन में डेस्क ऑफिसर के रूप में कार्य किया।
सम्मान: वातायन-ब्रिटेन, विश्व हिन्दी समिति-न्यूयार्क, विश्व हिन्दी परिषद्-भारत, विश्व हिन्दी न्यास-त्रिनिडाड।
संपर्क: anilhindi@gmail.com

प्रवासी साहित्य भारतीयों के वैश्विक प्रवास का महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ है

(अनिल शर्मा के साथ सुधा ओम ढींगरा की बातचीत)

अनिल शर्मा से पहली बार मुझे दिल्ली में कवि गजेन्द्र सोलंकी ने मिलवाया था। फिर मैं उन्हें 'अक्षरम् सम्मान' समारोह में मिली, जब मैं वहाँ सम्मान लेने गई। उसके बाद संपर्क और संवाद का सिलसिला बना रहा। अनिल जी उस समय अक्षरम् संगोष्ठी और प्रवासी टुडे दो पत्रिकाएँ निकालते थे। कुछ समय के लिए मैं प्रवासी टुडे की अमेरिका में प्रतिनिधि रही। तभी उन्होंने प्रवासी दुनिया वेब साइट शुरू की। बहुत से प्रवासियों की रचनाएँ उनमें छपती थीं, जिनमें एक मैं भी थी।

हिन्दी अनिल शर्मा के लिए पहली प्राथमिकता है और मिशन भी। उन्होंने कई प्रवासी सम्मेलन करवाए और गोष्ठियाँ भी। अनिल शर्मा एक ऊर्जावान, प्रतिभा सम्पन्न आयोजक, कवि, नाटककार, व्यंग्यकार, समीक्षक, आलोचक, संपादक और प्रवासी साहित्य के विशेषज्ञ के रूप में चर्चित हैं। आजकल अनिल जी फीजी में भारतीय हाई कमीशन में द्वितीय सचिव के रूप में कार्यरत हैं। गत दिनों उनका ऑन लाइन साक्षात्कार लिया -

प्रश्न : *अनिल जी, आप युवावस्था से ही हिन्दी को समर्पित कार्यकर्त्ता रहे हैं। कुछ वर्ष पहले आप ब्रिटेन गए थे, वहाँ आपने अपनी उपस्थिति कैसे दर्ज करवाई? क्योंकि वहाँ तो कई साहित्यकार पहले से थे। बी.बी.सी का हिन्दी विभाग अपनी तरह हिन्दी को समृद्ध कर रहा था। हिन्दी के प्रचार-प्रसार में आपका योगदान किस प्रकार रहा।*

उत्तर : मैं वर्ष 2000 में ब्रिटेन में हिन्दी और संस्कृति अधिकारी के रूप में गया था और वर्ष 2005 जून तक वहाँ रहा। मेरा कार्यकाल घटनाक्रमों से भरा हुआ, अत्यंत सुखद और

सार्थक रहा। उसका एक कारण तो मेरी अपनी सक्रियता, काम करने की शैली और विज़न था, दूसरा उस समय ब्रिटेन में हिन्दी के लिए कार्य करने की स्थितियाँ उर्वर थीं। स्थितियों के उर्वर होने के दो कारण थे। डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी वर्ष 1992-1993 से 1997 तक ब्रिटेन में भारत के उच्चायुक्त थे। उन्होंने वहाँ हिन्दी की संस्थाओं यू.के.हिन्दी समिति, गीतांजलि, अहिंसम आदि को पालित-पोषित किया। कवि सम्मेलन की परंपरा डाली। 'पुरवाई' की स्थापना की। उनके साथ हिन्दी अधिकारी के रूप में डॉ. सुरेन्द्र अरोड़ा थे। डॉ. अरोड़ा स्वयं बहुत अच्छे कहानीकार थे। सिंघवी जी ने डॉ. अरोड़ा के सहयोग से ब्रिटेन में हिन्दी के लिए बहुत काम किया। अमिताभ बच्चन, दिलीप कुमार, कन्हैया लाल नंदन, नीरज हिन्दी के सभी बड़े व्यक्तित्व, कवि और शायर उनके समय में ब्रिटेन आए। पद्मेश गुप्त, डॉ कृष्ण कुमार, डॉ. सुमरा आदि हिन्दी प्रेमियों ने हिन्दी सेवा की और दिव्या माथुर, पद्मेश गुप्त, उषा राजे सक्सेना, शैल अग्रवाल, उषा वर्मा जैसे लेखकों ने अपने लेखकीय सफ़र की शुरूआत की। दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण था-छठा विश्व हिन्दी सम्मेलन जो 1999 में ब्रिटेन में आयोजित हुआ। मूल रूप से यह सम्मेलन अमेरीका में होना था परंतु किन्हीं कारणों से यह ब्रिटेन में आयोजित हुआ। इसमें डॉ. पद्मेश गुप्त, डॉ. कृष्ण कुमार, डॉ. अंजनी कुमार, डॉ. महेन्द्र वर्मा, तितिक्षा शाह की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। तो मेरे ब्रिटेन पहुँचने से पहले हिन्दी की ज़मीन तैयार हो गई थी। सवाल वहाँ से टेक ऑफ का था।

मुझे यहाँ से शुरूआत करनी थी। अगले पाँच वर्षों में ब्रिटेन में हिन्दी की कई नई संस्थाओं का जन्म हुआ। वातायन, कृति यू.के आदि। कथा यू.के ने गति पकड़ी। हिन्दी के कवि सम्मेलनों की परंपरा को बल मिला। सिंघवी जी के जाने के बाद कवि सम्मेलनों की परंपरा कमज़ोर पड़ी थी। उसे फिर से मज़बूत किया गया। लेकिन मेरी सबसे बड़ी प्राथमिकता नई पीढ़ी में हिन्दी पहुँचाने की थी। इसलिए देश भर के हिन्दी स्कूलों, हिन्दी संस्थानों, हिन्दी के अध्यापकों और हिन्दी प्रेमियों को मिलाकर हिन्दी ज्ञान प्रतियोगिता की नींव रखी गई। इसके माध्यम से देश भर में हिन्दी की प्रतियोगिताएँ आयोजित की गईं। विजेताओं को भारत यात्रा पर भेजा गया। डॉ. पद्मेश गुप्त इसमें मेरे प्रमुख साथी थे। इसके लिए हमने व्यक्तिगत स्रोतों से पैसा इकट्ठा किया। यह प्रतियोगिता लंदन से ब्रिटेन और फिर युरोप पहुँच गई। इसमें हज़ारों बच्चों की भागीदारी हुई। भारत से बाहर ब्रिटेन और युरोप में युवा पीढ़ी को हिन्दी से जोड़ने का यह सबसे बड़ा, व्यवस्थित और प्रभावशाली अभियान था। यह कार्यक्रम 15 वर्ष बाद आज भी सुलेखा चोपला जी के माध्यम से चल रहा है।

मेरा सौभाग्य है कि मैं वातायन के संस्थापकों में से था। दिव्या जी का हिन्दी प्रेम अद्भुत है। उनके साथ कई कार्यक्रमों की संरचना की। दिव्या जी तब नेहरू केंद्र में थी। मैं हाई कमीशन में। दिव्या जी नेहरू केंद्र में निरंतर हिन्दी के स्तरीय कार्यक्रम करती थीं। उनका और पद्मेश जी का हिन्दी के प्रचार-प्रसार में योगदान महत्त्वपूर्ण था। लंदन विश्व का प्रमुख नगर है। मेरे कार्यकाल में निर्मल वर्मा, नरेन्द्र कोहली, कमलेश्वर, कन्हैयालाल नंदन, मनोहर श्याम जोशी, कुँवर बेचैन, सीतेश आलोक, संजीव कुमार, अरुण कमल, ज्ञान चतुर्वेदी, हरनोट, अलका सरावगी, सुषम बेदी, प्रेम जनमेजय, हरीश नवल जैसे लेखकों का लंदन में आगमन हुआ। उनके विभिन्न नगरों में कार्यक्रम आयोजित किए। वातायन में दिव्या माथुर, डॉ. सत्येन्द्र श्रीवास्तव, मोहन राणा जैसे लेखकों के साथ मिलकर कई कार्यक्रमों का आयोजन हुआ। कथा यू.के ने ब्रिटेन में पांव जमाने शुरू कर दिए थे। इस समय में इसकी ज़्यादातर गोष्ठियाँ मेरे घर हुई। बर्मिंघम में डॉ. कृष्ण कुमार, तितिक्षा शाह, शैल अग्रवाल, कावेंट्री में प्राण शर्मा, रामकृष्ण, मानचेस्टर में डॉ. निखिल कौशिक, यार्क में डॉ. महेन्द्र वर्मा, उषा वर्मा सक्रिय थे। मेरे विशेष प्रयत्नों के कारण डॉ. सत्येन्द्र श्रीवास्तव और मोहन राणा जैसे कद्दावर लेखकों को ब्रिटेन के साहित्य जगत् में यथोचित स्थान मिला। युवा पीढ़ी में हिन्दी के प्रति आकर्षण बढ़ा। डॉ. सत्येन्द्र श्रीवास्तव, दिव्या माथुर, तेजेन्द्र शर्मा, उषा राजे सक्सेना, शैल अग्रवाल आदि को प्रवासी साहित्यकार के रूप में अंतर्राष्ट्रीय मान्यता मिली। ब्रिटेन के सभी कवियों और कवयित्रियों का संकलन मेरे संपादन में 'धरती एक पुल' के रूप में प्रकाशित हुआ। उन दिनों में मैंने हाई कमीशन की पत्रिका भारत भवन का संपादन भी किया। कुल मिला कर मेरे वापिस आते-आते ब्रिटेन भारत से बाहर हिन्दी की सबसे बड़ी शक्ति के रूप में उभरा।

व्यक्तिगत लेखन की दृष्टि ब्रिटेन में मेरी कविताएँ बहुत लोकप्रिय थीं। बाल मज़दूरों वाली मेरी कविता से ऐसी संवेदना जाग्रत होती थी कि सैंकड़ों लोग उनके कष्टों की संवेदना से रो पड़ते थे। ब्रिटेन में मेरी कविताओं की पुस्तक 'नींद कहाँ है' प्रकाशित हुई। पुरवाई में नियमित लेख लिखे। कार्यक्रमों और पत्रिकाओं के लिए समीक्षात्मक कार्य बहुत किए। कहानीकारों के संपर्क की वज़ह से कई कहानियाँ भी लिखीं। रचनाशीलता की दृष्टि से यह भी उर्वर समय था।

बी.बी.सी हिन्दी दुनिया भर में अपनी गुणवत्ता और संप्रेषण शैली के चलते जानी जाती है। उस समय उसकी प्रमुख प्रसिद्ध प्रसारक अचला शर्मा थी। उनके साथ विजय राणा, ललित मोहन जोशी, ममता गुप्ता, राजेश जोशी, आकाश सोनी, सलमा जैदी आदि थे। स्वतंत्र प्रसारक के रूप में नरेश अरोड़ा 'भारतीय', तेजेन्द्र शर्मा, गौतम सचदेव आदि थे। कुछ लोग जो उस समय बी.बी.सी में थे बाद में भारत के प्रमुख चैनलों में उच्च पदों पर काम करने लगे। मेरा संपर्क नरेश भारतीय जी से बहुत रहा। उन्होंने कई पुस्तकें लिखीं। उनका शहीद भगतसिंह के परिवार से संबंध था। कैलाश बुधवार, ओंकार नाथ श्रीवास्तव रिटायर्ड हो चुके थे परंतु साहित्य जगत् में सक्रिय थे। गौतम सचदेव साहित्य जगत् में सबसे सक्रिय लोगों में थे। उनकी प्रतिभा तीक्ष्ण थी। मैं उन्हें ब्रिटेन का सर्वश्रेष्ठ कहानीकार मानता हूँ। विभाजन पर लिखी उनकी कहानियाँ मील का पत्थर है। अचला जी की प्रतिभा वैश्विक है। प्रसारण में समय देने के कारण बहुत साहित्य उन्होंने नहीं लिखा पर जितना लिखा वह असाधारण है। विजय राणा बड़े मौलिक पत्रकार थे। उन्होंने प्रसारण में कुछ नए प्रयोग किए। ओंकार जी से सब कुछ सीख सकते हैं। ललित मोहन

जोशी का हिन्द फिल्मों का ज्ञान और लेखन की कोई सानी नहीं है। कुल मिलाकर बी.बी.सी प्रतिभाओं का एक ख़ज़ाना था।

प्रश्न : *आपने प्रवासियों के लिए, प्रवासी साहित्यकारों के लिए बहुत कार्य किया है। क्या आप इस पर रोशनी डालेंगे?*

उत्तर : मेरा प्रवासी लेखन से पहला परिचय ब्रिटेन के प्रवास में आया। डॉ. सत्येन्द्र श्रीवास्तव, मोहन राणा, दिव्या माथुर, शैल अग्रवाल, तेजेन्द्र शर्मा, उषा राजे सक्सेना, पद्मेश गुप्त, निखिल कौशिक, नरेश भारतीय, अचला शर्मा, सोहन राही, प्राण शर्मा, गौतम सचदेव, जया वर्मा, उषा वर्मा जैसे रचनाकारों की पांडुलिपियों को पढ़ने, उनकी रचनाशीलता में भागीदार बनने, उनके प्रकाशन से जुड़ने, उसके मूल्यांकन करने की प्रक्रिया में मेरी इस संबंध में संवेदना समृद्ध हुई। हिन्दी समिति, वातायन, कथा यू.के. के कार्यक्रमों में लेखकों की रचनाओं पर बोलने का अवसर मिलता था। मुझे ध्यान है मेरा पहला वक्तव्य दिव्या माथुर के कहानी संग्रह आक्रोश पर था। कथा यू.के की कहानी गोष्टियाँ मेरे घर होती थीं; इसलिए कहानियों के मूल्यांकन, उनकी मूल संवेदना, शैली और प्रवासी कहानी और समाज के संशलिष्ट संबंध को समझने का मौका मिला। 'पुरवाई' में भी लगातार लिखता रहता था। इधर भारत में हम लोगों ने नरेश शांडिल्य, अलका सिन्हा के साथ मिलकर अक्षरम् संगोष्ठी शुरू करवा दी थी। मैंने खुद ब्रिटेन के अनुभवों और संवेदनाओं को केंद्र में रख कविताएँ लिखनी शुरू कर दी थीं। ब्रिटेन में लिखी गईं- नींद कहाँ है, भटका हुआ भविष्य जैसी कविताएँ ब्रिटेन में बहुत लोकप्रिय हुईं। फिर मैंने ब्रिटेन के सभी कवियों / कवयित्रियों का संकलन 'धरती एक पुल' नाम से संपादित किया। उन दिनों डॉ. कमल किशोर गोयनका, असगर वजाहत प्रवासी साहित्य पर काम कर रहे थे। उनका सहयोग किया। 2002 के विश्व हिन्दी सम्मेलन में भी बहुत सक्रिय था, बहुत से प्रवासी साहित्यकारों से मिलने का मौका मिला। ब्रिटेन के पाँच साल के प्रवास में मेरी रचनाएँ प्रवासी साहित्यकार के रूप में छपने लगी थी। ब्रिटेन कई कारणों से, जिनका ज़िक्र मैंने ऊपर किया है प्रवासी साहित्य के गढ़ के रूप में विकसित हो गया था। परिस्थितियों के कारण मैं उस गढ़ के केंद्र में था; इसलिए प्रवासी साहित्य के संबंध में गहरी समझ विकसित हुई।

भारत आने के बाद मुझे लगा मेरी पोस्टिंग की समाप्ति के साथ ये यात्रा समाप्त नहीं होनी चाहिए। हमने अक्षरम् की स्थापना की। मेरे 2005 में भारत आने से पहले अक्षरम् द्वारा प्रवासी सम्मेलनों की शुरूआत हो चुकी थी पर मेरे आने के बाद बड़े पैमाने पर पहला प्रवासी सम्मेलन साहित्य अकादमी के साथ मिलकर किया। बहुत अच्छी भागीदारी थी। फिर तो परंपरा बन गई। कितने ही प्रवासी साहित्यकारों डॉ. सत्येन्द्र श्रीवास्तव, पूर्णिमा वर्मन, दिव्या माथुर, नरेश भारतीय, उषा राजे सक्सेना, उषा वर्मा, शैल अग्रवाल, निखिल कौशिक, उमेश अग्निहोत्री, वेद प्रकाश बटुक, सुधा ओम ढींगरा, श्याम त्रिपाठी, पुष्पिता अवस्थी, सरिता बुद्धु, डॉ. धनंजय आदि को हमने सम्मानित किया। प्रवासी रचनाकारों की पुस्तकों के सबसे अधिक लोकार्पण कार्यक्रम अक्षरम् ने किए। प्रवासी दुनिया के माध्यम से वेब पर उनको पहचान दिलाई। इक्कीसवीं शताब्दी का पहला दशक समाप्त होते-होते प्रवासी साहित्य और ये सभी रचनाकार हिन्दी जगत् में परिचित नाम बन चुके थे और आगे की यात्रा की उधेड़बुन में थे। साहित्य अकादमी से प्रकाशित हिमांशु जोशी की आप्रवासी कहानियों में काफी कहानियाँ अक्षरम् संगोष्ठी और पुरवाई से हैं। 2007-8 तक यही पत्रिकाएँ प्रवासी साहित्य के प्रकाशन का मुख्य केंद्र थी। बाद में सुधा ओम ढींगरा कहने का भाव आपके संपादन में हिन्दी चेतना भी हिन्दी की प्रमुख प्रवासी पत्रिका के रूप में उभरी। प्रवासी साहित्य भारतीयों के वैश्विक प्रवास का महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ हैं, इसमें उनके दु:ख सुख, आशा- आकांक्षाएँ, इच्छाएँ, संवेदनाएँ दर्ज हैं। यह अमूल्य धरोहर है। इसके लिए जितना किया जाए कम है। इस संबंध में डॉ. कमल किशोर गोयनका, हिमांशु जोशी आदि का योगदान भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। पूर्णिमा वर्मन की वेब पत्रिका अनुभूति और अभिव्यक्ति का इसमें महत्त्वपूर्ण योगदान है। इसी प्रकार सुधा ओम ढींगरा द्वारा संपादित हिन्दी चेतना और अब विभोम-स्वर और पद्मेश गुप्त की पुरवाई का भी योगदान उल्लेखनीय है। अमेरिका और कैनेडा के साहित्य को वैश्विक मंच देने का जो काम आपने किया है, वह अत्यंत सराहनीय है। डॉ. धनजंय ने गुलशन मधुर के साथ मिलकर अमेरिका के हिन्दी साहित्य पर जो संकलन प्रकाशित किए हैं, वे अपने आप में मील का पत्थर हैं।

प्रश्न : *अनिल जी, हिन्दी साहित्य में दलित-विमर्श, स्त्री-विमर्श, वामपंथी लेखन, नई कहानी, अकहानी, अकविता को अलग-अलग खाँचे में रख कर जिस तरह मूल्याँकन किया जाता है। प्रवासी साहित्य का भी इसी तरह देखा जाने लगा है। आपने प्रवासी टुडे पत्रिका और प्रवासी दुनिया वेब पत्रिका का संपादन और सञ्चालन किया है। आप प्रवासी साहित्य को किस तरह देखते हैं।*

उत्तर : देखिए, जिसे इस प्रश्न में खांचे कहा गया है उसे रचनात्मक समझदारी से युक्त वरिष्ठ प्रवासी लेखिका सुषम बेदी वर्गीकरण कहती हैं। ये वर्गीकरण कब नहीं थे? क्या प्रसाद, महादेवी, निराला, पंत को रहस्यवादी, छायावादी नहीं कहा गया? यह दुनिया के हर साहित्य में है। अगर आप दलित के पर्सपेक्टिव- दृष्टि से साहित्य लिखेंगे, या स्त्री के दृष्टिकोण से या प्रवासी के दृष्टिकोण से तो आपका साहित्य उसी रूप में वर्गीकृत होगा। सलमान रशदी ने कहा था कि 20वीं सदी का साहित्य प्रवास का साहित्य है। इस धारा में बड़े-बड़े लेखक हुए। प्रवासी को तो वैश्विक दृष्टि स्वाभाविक रूप में प्राप्त होती है। हाँ, एक सीमा के बाद लेखक वह सीमाएँ तोड़ता है। डॉ. कमल किशोर गोयनका, नामवर सिंह, हिमांशु जोशी, कमलेश्वर, कन्हैयालाल नंदन, राजेंद्र यादव, असगर वजाहत सभी ने इस नाम का प्रयोग किया है। जो लोग विरोध कर रहे थे। उनके विरोधाभास उजागर हो चुके हैं। एक तरफ प्रवासी सम्मेलन करना, दूसरी तरफ प्रवासी शब्द का विरोध करना। एक तरफ प्रवासी संकलन प्रकाशित करना, दूसरी तरफ उसके विरोध में वक्तव्य देना। मैंने इस विषय पर विस्तार से हरियाणा की साहित्य अकादमी से प्रकाशित पत्रिका हरिगंधा के संपादकीय में लिखा है। मैं समझता हूँ अब प्रवासी शब्द

का विरोध करने वाले ज़्यादातर लोगों ने भी इसे स्वीकार कर लिया है। आइए सब मिलकर प्रवासियों की रचनात्मक प्रतिभा को पुष्पित- पल्लवित करने के लिए प्रयास करें। इस पर फ़िज़ूल में जूतमपैजार काफी हो चुकी है।

प्रश्न : *वैश्विक रचनाकारों की रचनाएँ आलोचकों की दृष्टि से ओझल हो जाती हैं, आप इसके क्या कारण समझते हैं; क्योंकि आप तो लेखक भी हैं और संपादक भी और आपने प्रवासियों, प्रवासी साहित्यकारों और साहित्य को लेकर काम भी किया है। प्रवासियों के लिए 'अक्षरम् सम्मान' आप देते थे।*

उत्तर : जिन स्थितियों में प्रवासी साहित्य लिखा जा रहा है। उसका कई बार भारत के आलोचकों-संपादकों को आभास नहीं होता। विदेशों में पुस्तकें नहीं हैं। प्रकाशन की सुविधा नहीं है। हिन्दी के रचनाकार के लिए परिवेश नहीं है। भारत और अपनी भाषा से जुड़ने की बैचेनी है, जिसके कारण ये लोग लिखते हैं। परंतु पिछले वर्षों में परिवर्तन आया है। पिछले पाँच - सात वर्षों में भारत में हिन्दी की कोई प्रमुख पत्रिका नहीं होगी; जिसने प्रवासी विशेषांक नहीं निकाले। इसमें हंस, नया ज्ञानोदय, अक्षरम् संगोष्ठी, अक्षरा, भाषा, राजभाषा आदि शामिल हैं। परंतु इंटरनेट के आने से प्रकाशक का वर्चस्व टूटा है और लेखन का जनतांत्रिकरण हुआ है। प्रवासी लेखन को प्रोत्साहित करने और इसका सम्यक् मूल्यांकन करने की दृष्टि से और प्रयास किए जाने चाहिए।

साथ ही महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हमें इन देशों में साहित्य की नई पौध विकसित करने के लिए साहित्य के साथ विदेशों में नई पीढ़ी में भाषा के प्रचार-प्रसार पर ध्यान देना होगा।

प्रश्न : *आजकल आप फीजी में हैं और वहाँ हिन्दी के किस तरह के कार्य हो रहे हैं? मेरा समालापक और जिज्ञासु मन के साथ -साथ पाठक भी जानने के लिए बहुत उत्सुक हैं।*

उत्तर : दुनिया में भारत से बाहर केवल फीजी ही ऐसा देश है; जहाँ आज भी हिन्दी बोलचाल की भाषा है। यह राजभाषा भी है। स्कूलों में पढ़ाई जाती है। परंतु राजनीतिक अस्थिरता के चलते यहाँ साहित्यिक गतिविधियों में ठहराव आया है। हाँ, हिन्दी के बहुत से विद्वान और लेखक आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड चले गए हैं। कमला प्रसाद मिश्र को यहाँ के राष्ट्रीय कवि माना जाता था। हिन्दी का एक साप्ताहिक अखबार शांतिदूत 1935 से प्रकाशित हो रहा है। प्रो. सुब्रमणि के लेखन में फणीश्वरनाथ रेणु की और जोगिंदर सिंह कँवल के लेखन में प्रेमचंद की छवि दिखाई देती है।

फीजी में मई 2015 में आया था और सितंबर में भोपाल में आयोजित विश्व हिन्दी सम्मेलन में रिकार्ड संख्या 19 हिन्दी के विद्वानों, लेखकों, कार्यकर्ताओं ने भाग लिया। आज तक कभी इतने प्रतिनिधि फीजी से नहीं गए थे। दुनिया के किसी देश से भी उस सम्मेलन में इतने लोग शायद नहीं थे। फीजी की भारत से दूरी और प्रतिनिधियों की वित्तीय सीमाओं को देखते हुए यह संख्या बहुत उत्साहजनक थी। उनकी भोपाल, दिल्ली, आगरा, लखनऊ यात्रा से वे भारत से जुड़े और जल्दी ही देश में हिन्दी का नया नेतृत्व विकसित हो गया। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 1987 के सैनिक विद्रोह के कारण, जिसका निशाना भारतीय थे, बहुत से विद्वानों और लेखकों ने आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड पलायन कर लिया था। हमारे सामने नया नेतृत्व विकसित करने की चुनौती थी। अगले कुछ महीनों में हमने जैनेन प्रसाद के साथ मिलकर हिन्दी लेखक संघ, फीजी और सभी संस्थाओं की समन्वयकारी संस्था हिन्दी परिषद्, फीजी की स्थापना की। हिन्दी अध्यापक संघ को मजबूत किया। यूनिवर्सिटी ऑफ साऊथ पैसिफिक में हिन्दी की पढ़ाई समाप्त हो गई थी। यह 12 देशों का विश्वविद्यालय था। भारत सरकार के लगभग 30 लाख के योगदान से दोबारा पढ़ाई शुरू हुई। जनवरी में विश्व हिन्दी दिवस के अवसर पर हिन्दी के पुरस्कार स्थापित किए और विभिन्न श्रेणियों में हिन्दी के लिए योगदान करने वालों को सम्मानित करना शुरू किया। शिक्षा मंत्रालय के सहयोग से देश भर में प्रतियोगिताओं और अध्यापकों के लिए कार्यशालाओं का आयोजन किया। फरवरी, 2016 में देश में भीषण तूफान आ गया। इससे कुछ व्यवधान आया। कुछ महीने तक सारा देश राहत कार्यों में जुट गया। फीजी में रामायण का बहुत महत्त्व है। शिक्षा मंत्रालय और फीजी सेवाश्रम संघ के साथ मिलकर अक्तूबर में अंतर्राष्ट्रीय रामायण सम्मेलन की योजना बनी। रामकथा का पहली बार स्थानीय - ई -ताईकेई भाषा में अनुवाद हुआ। 1987 में हुए फीजी के सैनिक विद्रोह के बाद पहली बार भारतीय साहित्य और संस्कृति पर कोई अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन हो रहा है। जहाँ फीजी में ढूँढ़े से लेखक नहीं मिलते थे। जुलाई में नवोदित लेखकों की कार्यशाला में 44 लेखकों ने भाग लिया। इसी प्रकार की कार्यशाला 10 सितंबर को फीजी के दूसरे शहर लाटुका में हो रही है। इस बीच कई कार्यक्रम और गोष्ठियाँ निरंतर होती रहीं। फीजी के दो शीर्षस्थ लेखकों के जुड़ाव से भी साहित्यिक गतिविधियों का काफी बल मिला।

इस बीच अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस के संयोजन से जुड़ा। फीजी में 32000 से अधिक व्यक्तियों ने अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस में भाग लिया, जो दुनिया में सर्वाधिक था। इनमें राष्ट्रपति, शिक्षा मंत्री और स्वास्थ्य मंत्री शामिल थे। भारत से आए विद्वानों, कलाकारों के फीजी कार्यक्रम का संयोजन किया। भारत में स्थापित की जाने वाली फीजी डायसपोरा लाईब्रेरी के लिए भारत से आए 30000 से ज़्यादा गिरमिटियों के रिकार्ड फीजी आर्काइव से भारत को उपलब्ध कराए। माननीय हाई कमीशनर श्री विश्वास सपकाल के मार्गदर्शन में भारतीय हितों और समुदायों से जुड़े विभिन्न मामलों में संयोजन का कार्य किया।

प्रश्न : *फीजी के बारे में जो आपने बताया, जानकार अच्छा लगा। आप कवि, लेखक, पत्रकार, संपादक और अनगिनत साहित्यिक गोष्ठिओं के संचालक हैं। कलम से नाता कब जुड़ा?*

उत्तर : मैं एक मध्यमवर्गीय परिवार से हूँ। पिता जी समाज सेवा में थे। उनसे समाज सेवा के संस्कार मिले। मामा जी की हिन्दू शास्त्रों में गहरी रुचि थी। उनके साथ रामायण, उपनिषद् आदि पढ़े। मेरी बचपन से ही पढ़ने में बहुत रुचि थी। बहुत व्यापक व गहरी। इससे चीज़ों को समझने की दृष्टि मिली। स्कूल के समय ही सामाजिक आंदोलनों से जुड़ा और आपात्काल के

विरोध के अभियान में अगुआ रहा। कॉलेज में यूनियन की गतिविधियों में भाग लिया। दिल्ली विश्वविद्यालय में सर्वश्रेष्ठ कवि और डिबेटर के रूप में पहचान बनाई। 80 के दशक में हिन्दी अकादमी से सर्वश्रेष्ट युवा कवि के रूप में कई वर्ष तक पुरस्कृत हुआ। युवा ज्ञानपीठ के लिए पांडुलिपि भेजी। उस समय मेरे लेखन पर धूमिल, मुक्तिबोध और राजकमल चौधरी आदि प्रगतिशील लेखकों का बहुत असर था। इस बीच संघ लोक सेवा आयोग में भारतीय भाषाओं के लिए आंदोलन चल रहा था, उससे जुड़ा और उसका संयोजन किया। मैं लिखने, पढ़ने और सामाजिक सक्रियता को एक ही सिक्के के पहलू मानता हूँ। 90 के दशक में भारतीय भाषाओं के समर्थन में और व्यावसायीकरण, बहुराष्ट्रीयकरण, भ्रष्टाचार के खिलाफ नुक्कड़ नाटक लिखे और निर्देशित किए। सक्रिय नाट्य मंच की स्थापना की। इसके माध्यम से सैंकड़ों शो किए और लाखों लोगों तक पहुँचे। दिल्ली में संस्कार भारती के बैनर पर मासिक काव्य गोष्ठी करते थे। उसमें गज़लकार, गीतकार, मुक्त छंद में कविता लिखने वाले सभी आते थे। इन गोष्ठियों के माध्यम से रामदरश मिश्र, बाल स्वरूप राही, सीतेश आलोक, लक्ष्मी शंकर बाजपेयी, मंगल नसीम, कुँवर बैचेन, नरेश शांडिल्य, अलका सिन्हा आदि से रचनात्मक आदान-प्रदान हुआ। हिन्दी के काव्य जगत् की थाह मिली। उन गोष्ठियों का बहुत लाभ हुआ। मेरे दूसरे संग्रह 'नींद कहाँ है' की ज़्यादातर कविताएँ उसी समय की हैं। यह बड़ा ही रचनात्मक समय रहा।

वर्ष 2000 में मैं ब्रिटेन गया। यहाँ मेरी निकटता डॉ. सत्येन्द्र श्रीवास्तव, दिव्या माथुर, पद्मेश गुप्त, तेजेन्द्र शर्मा, निखिल कौशिक, नरेश भारतीय, शैल अग्रवाल से हुई। भारत के श्रेष्ठ लेखक कमलेश्वर, कन्हैयाल लाल नंदन, नरेंद्र कोहली, मनोहर श्याम जोशी, ज्ञान चतुर्वेदी के प्रवास हुए। बी.बी.सी के पत्रकारों से संपर्क में आया। कुल मिला कर एक विश्व दृष्टि विकसित हुई। 'नींद कहाँ है' शीर्षक कविता वहीं लिखी गई। एक समीक्षक के रूप में समझ विकसित हुई। प्रवासी जगत् से गहरे संपर्क में आया। हिन्दी के वैश्विक पटल पर मैं भी एक किरदार बन गया। ब्रिटेन के साहित्यकारों से ऐसी निकटता की मेरे भारत आने के बाद भी कोई सप्ताह नहीं होता था कि डॉ. सत्येन्द्र श्रीवास्तव भारत में फ़ोन कर बात कर अपनी कविता ना सुनाते हों या सुनते हों। यह सिलसिला उनकी मृत्यु तक जारी रहा। दिव्या जी, पद्मेश जी, निखिल जी, मोहन राणा से रचनात्मक मित्रता भाव स्थायी हो गया। प्राण शर्मा आज भी हर दूसरे -तीसरे दिन अपनी गज़ल मेल से भेजते हैं।

भारत आने के बाद मुझे लगा कि विदेश से आने के बाद ज़्यादातर लोगों का विदेश में हिन्दी साहित्य से संपर्क समाप्त हो जाता है या नाममात्र का रह जाता है। हमने अक्षरम् को वैश्विक मंच बनाया और अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी उत्सव की परंपरा प्रारंभ की। इस कार्य में नरेश शांडिल्य, अलका सिन्हा, नारायण कुमार, विमलेश कांति वर्मा आदि का भी साथ मिला। इस प्रयोजन से भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् और साहित्य अकादमी को साथ लिया। इस बीच हम प्रवासी टुडे और अक्षरम् संगोष्टी का प्रकाशन कर रहे थे। प्रवासी टुडे का उद्घाटन ब्रिटेन के हाऊस ऑफ लार्डस में किया गया था। डॉ. पद्मेश गुप्त उसके संपादक थे। उसमें प्रवासी विषयों पर लगातार कालम लिखे। इससे मेरे लिए समीक्षात्मक विश्लेषणात्मक, विवेचनात्मक लेखन के द्वार खुले। आलोचना और समीक्षा के क्षेत्र में डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय से बहुत प्रोत्साहन मिला। ब्रिटेन के पाँच वर्षों के अनुभव से दृष्टि समृद्ध हुई थी।

इस बीच मैंने व्यंग्य भी लिखने शुरू किए। इसके लिए प्रेम जनमेजय, सुभाष चंदर आदि ने हौंसला हफ़ज़ाई की। कुछ लोगों को वे इतने पसंद आए कि मेरी पहचान व्यंग्यकार के रूप में होने लगी। कविता की यात्रा भी जारी रही। इस प्रकार कविता, नाटक, व्यंग्य, समीक्षा, आलोचना, संपादन कुल मिला कर एक समग्र जीवन दृष्टि के आधार पर विभिन्न विषयों पर लिखना जारी रहा। अनुभव और परिपक्वता के साथ सतही विवरणों के बजाए मूल तत्वों और संवेदनाओं की तरफ ज़्यादा ध्यान जाने लगा। भारतीय जीवन दृष्टि की समझ विकसित हुई और जीवन और सोच में शायद, परिपक्वता, स्थिरता और संतुलन आया।

प्रश्न : *हिन्दी साहित्य हमेशा ही गुटों में बंटा रहा। गुटों की अपनी राजनीति और विचारधारा रहती है। विचारधारा और रचना का कितना संबंध होना चाहिए।*

उत्तर : मुझे धर्मवीर भारती की पंक्तियाँ याद आती हैं। कोई भी व्यक्ति जब कम उम्र में किसी पार्टी, संस्था या संप्रदाय का हिस्सा बन जाता है तो उसके विचारों में एक शक्ति आ जाती है; परंतु यदि उस विचार की सीमा नहीं समझता तो वह विचार उसकी सीमा बन जाती है और दुनिया उसके लिए खाँचों में बंट जाती है। भारत में साहित्य के साथ यही हुआ। वामपंथ ने भारत के अकादमिक, साहित्यिक संस्थानों पर कब्जा किया और जो लोग उनके खाँचों में नहीं आते थे। उन्हें प्रतिक्रियावादी घोषित कर दिया गया। दूसरे विचारों के प्रति ये लोग घोर असहिष्णु थे। दुनिया अपने साहित्यकारों को विश्व मंच पर पालित -पोषित करती है; परंतु यहाँ पूरी फौज अपनी वैश्विक प्रतिभाओं को गरियाने पर लगी थी। मेरे विचार से प्रेमचंद, प्रसाद, अज्ञेय और निर्मल वर्मा विश्व स्तर के विचारक और लेखक थे। उन्हें नोबल पुरस्कार मिल सकता था। पर इनमें से ज़्यादातर को भारतीय आलोचकों द्वारा ही प्रतिक्रियावादी घोषित कर लतिया गया। अभी तक प्रेमचंद बचे हुए थे उन पर भी दलित विमर्श के नाम पर हमला किया गया। कविता का मस्तिष्क से संबंध रहा, हृदय से टूट गया। किताबों से रहा, लोक से छूट गया। आप आम आदमी से हिन्दी के पाँच प्रमुख कवि पूछिए। आज भी वे दिनकर, निराला का नाम लेंगे। फिर इतने वर्षों से किन्हें पुरस्कार दिए जा रहे हैं ? किनकी कविताएँ किताबों में लगी है? किन्हें महाकवि घोषित कर दिया गया है? दूसरी तरफ भी स्वतंत्र चिंतन के बजाए संगठनात्मक निष्ठा पर बल दिया गया। हमने अक्षरम् में सबको खुला मंच दिया। नामवर सिंह, नरेंद्र कोहली, कुँवर नारायण, रामदरश मिश्र, केदार नाथ सिंह, कमल किशोर गोयनका, गिरिराज किशोर, रविन्द्र कालिया, कमलेश्वर, कृष्ण दत्त पालीवाल, पंकज सिंह सब हमारे मंच पर आए। साहित्यकार और विचारक विभिन्न विचारों और विचारधाराओं से शक्ति ग्रहण करे परंतु

सम्यक् विचारक होने की पहली शर्त विचारधारा की शक्ति और सीमा पहचानना, दूसरी विचारधाराओं से शक्ति ग्रहण करना है। सभी विचारों में अंतर्निहित शक्ति है, सबका उपयोग कर साहित्य को मानवीयता का वाहन बनाना चाहिए।

प्रश्न : *अनिल जी, आपने तो प्रवासी साहित्य बहुत पढ़ा है और आपने उनके बारे में काफी लिखा भी है, विदेशों में कौन से रचनाकार बहुत अच्छा लिख रहे हैं ....?*

उत्तर : अभिमन्यु अनत, सुषम बेदी, उमेश अग्निहोत्री, सुधा ओम ढींगरा, अनिल प्रभा कुमार, दिव्या माथुर, तेजेन्द्र शर्मा, उषा राजे सक्सेना, कृष्ण बिहारी, पूर्णिमा वर्मन आदि को ज़्यादातर लोग जानते हैं। आपका विशेष उल्लेख क्योंकि स्वयं लेखन के साथ औरों को प्रोत्साहन देती हैं, पत्रिका निकालती हैं, संकलन निकालती हैं, कार्यक्रम करती हैं। दिव्या माथुर ने अपने उपन्यास शाम भर बातें से नई ज़मीन तोड़ी है। तेजेन्द्र, पूर्णिमा वर्मन आदि भी साहित्य के साथ साहित्यिक गतिविधियों से भी जुड़े है। परंतु मैं यहाँ कुछ ऐसे लोगों के लेखन की बात करना चाहूँगा जो कम चर्चित हैं। पिछले कुछ दिनों में प्रवासी साहित्य को दोबारा से पढ़ रहा था। शालिग्राम शुक्ल, सत्यपाल आनंद, विजय चौहान (अमेरिका) लक्ष्मीधर मालवीय (जापान), प्रेमलता वर्मा (अर्जेंटीना) का लेखन पढ़ कर दंग रह गया। उनकी कहानियों पर लिखने के लिए मजबूर हो गया। परत-दर-परत उनका लेखन विश्व स्तरीय है। इसी प्रकार की स्थिति फीजी के प्रो. सुब्रमणि और जोगिंदर सिंह कँवल की है।

कविता में ब्रिटेन के मोहन राणा और हालैंड की पुष्पिता अवस्थी असाधारण हैं। ब्रिटेन की अचला शर्मा और शैल अग्रवाल का लेखन विशिष्ट है। स्वीडन की अनुपमा पाठक, कनाडा की शैलजा सक्सेना और ब्रिटेन के निखिल कौशिक, आस्ट्रेलिया की रेखा राजवंशी की कविता में बहुत गहराई है। नवोदित लेखकों में दीपक मशाल, अनुज अग्रवाल, रोहित हैप्पी का नाम लेना चाहूँगा। इतने ही लोग नहीं हैं पर यह मेरी जानकारी की सीमा हो सकती है। डॉ. सत्येन्द्र श्रीवास्तव, गौतम सचदेव का देहांत प्रवासी साहित्य की बड़ी क्षति है।

प्रश्न : *अनिल जी, भविष्य में आपकी योजनाएँ क्या हैं ?*

उत्तर : सुधा जी, जहाँ तक आगे की योजनाओं की बात है, चार पुस्तकों की सामग्री तैयार है। प्रवासी साहित्य, भारत में हिन्दी भाषा और साहित्य, कविता और व्यंग्य। पहली दो पुस्तकों में मेरे इस विषय पर लिखे गए लेख और रचनाएँ होंगी। प्रवासी साहित्य पर समीक्षात्मक काम कम हुआ है। इसलिए प्रवासी साहित्य संबंधी पुस्तक महत्त्वपूर्ण है। भारत में भाषा और साहित्य से संबंधित यात्रा बहुत लंबी है। लगभाग 35 साल की। उस संबंध में लेख-रचनाएँ दूसरी पुस्तक में है। कविता का मेरा यह तीसरा संकलन होगा। जो मेरी काव्य यात्रा के नए पड़ावों का सूचक है। कुछ लोगों ने मेरे व्यंग्य को बहुत ताकतवर माना है, यहाँ तक कि उस वर्ग में मेरी पहचान व्यंग्यकार के रूप में है। इसलिए यह चारों पुस्तकें अगर प्रकाशित होंगी तो पिछले वर्षों में किया रचनाकर्म सामने आ सकेगा। कुछ और अनुभव भी हैं वे कविता, कहानी या उपन्यास किस रूप में आएँगे नहीं जानता। 'हज़ारों ख़्वाहिशें ऐसी' जैसी स्थिति है।

आजकल भारत में Idea of India की बहुत चर्चा है। इंडियन डायसपोरा को समझते -समझाते भारत - भारतीयता और विदेशों में रहने वाले भारतीयों की भारतीयता पर गहन रूप से विचार आवश्यक है। भारत के वरिष्ठ अंग्रेज़ी लेखक राजा राव ने एक पुस्तक लिखी थी Meaning of India। नरेन्द्र कोहली, अज्ञेय, निर्मल वर्मा, का साहित्य पढ़ते - पढ़ते इन संकल्पनाओं के बारे में विचार यात्रा शुरू हुई। आनंद कुमारस्वामी कला इतिहासकार को पढ़कर विचार दृष्टि विकसत हुई।

फीजी के वरिष्ठ साहित्यकार प्रो. सुब्रमणि ने राजा राव से बातचीत में विदेशों में रहने वाले भारतीयों की भारतीयता की संकल्पना पर असहमति व्यक्त की और कुछ सवाल उठाए। फीजी के प्रो. बृजलाल और प्रो. सत्येन्द्र नंदन का काम भी इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। धनजंय कुमार, गुलशन मधुर और मधु किश्वर द्वारा संपादित पुस्तक 'दिशांतर' में भारत और भारतीयता पर उमेश अग्निहोत्री का महत्त्वपूर्ण लेख है। विचार और चिंतन की दृष्टि से यह विषय मेरी रूचि का है। चूँकि यह सवाल डायसपोरा की मूल संवेदन को छूता है और भारत और उसके माध्यम से खुद को समझने में मदद करता है।

हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए भी कई योजनाएँ हैं। एक बात और हिन्दी के सवाल पर हिन्दी के लोगों को टीम की तरह साथ काम करने और टेक्नालॉजी का प्रयोग कर एक व्यापक अभियान छेड़ना होगा। साहित्य भाषा पर निर्भर है। भाषा को लिखने -पढ़ने वाले ही नहीं होंगे तो साहित्य कहाँ से आएगा। इसके लिए आपकी ऊर्जा प्रशंसनीय है। पता नहीं इतने काम कैसे कर लेती हैं आप ? धनंजय कुमार, अशोक औझा, डॉ. सुरेन्द्र गंभीर (अमेरीका), पद्मेश गुप्त, दिव्या माथुर, तेजेन्द्र शर्मा, (ब्रिटेन) शैलजा सक्सेना, श्याम त्रिपाठी, स्नेह ठाकुर (कैनेडा), रोहित हैप्पी, सुनीता नारायण (न्यूज़ीलैंड), रेखा राजवंशी (ऑस्ट्रेलिया), पुष्पिता (हालैंड), अलका धनपत, गुलशन (मॉरीशस) जो काम कर रही हैं, वह प्रंशसनीय है। इस सूची में और भी लोगों को जोड़ा जा सकता है। यह मेरी सूचना और जानकारी की कमी हो सकती है।

भारत से डॉ. कमल किशोर गोयनका, विजय कुमार मल्होत्रा, राहुल देव, बालेंदु दधीच, नारायण कुमार, विमलेश कांति वर्मा, प्रेम जनमेजय, हरीश नवल, सुरेश ऋतुपर्ण, आशीष कांधवे, आदि हिन्दी के इस वैश्विक प्रचार-प्रसार में अपनी भूमिका निभा सकते हैं। हमें सबकी शक्ति को संयोजित करने का प्रयास करना चाहिए।

अनिल जी, इतनी विस्तृत जानकारी देने के लिए आपका हार्दिक धन्यवाद। अनिल जी आपने कहा कि मैं इतने काम कैसे कर लेती हूँ? हम जब हिन्दी को एक मिशन की तरह देखते हैं तो मिशनरी को ऊर्जा उसके मिशन से मिलती है। आप भी एक साथ कई-कई काम कर लेते हैं। आपके इसी जज़्बे को मैं सलाम करती हूँ। भविष्य में आप की योजनाओं की सफलता के लिए शुभकामनाएँ!! उनकी सफलता के बाद एक और साक्षात्कार का इंतज़ार रहेगा। मेरा जिज्ञासु, समालापक मन ऐसे सुअवसरों की तलाश में रहता है।

****

उसका मरना

अनिलप्रभा कुमार

थे तो नहीं, पर इस वक्त उन सबके चेहरे पारदर्शी हो गए। चेहरों पर गहराते भावों के कई-कई रंग। चेहरे वहीं टिके थे पर भाव जगह बदल लेते। एक के चेहरे से उतर कर दूसरे के चेहरे पर जाकर चिपक जाते। पहले वाला आदमी नया भाव पकड़ लेता। फिर वह भाव कोई और छीन लेता और पहले वाला बेरंग हो जाता। सभी रिश्तेदार लगते थे उसके, वह भी नज़दीकी। यह बात वे बार-बार कहते। कभी अपने- आप से और कभी एक-दूसरे से। ज़ाहिर था कि इस वक्त उन्हें जहाँ होना चाहिए था वे वहाँ नहीं थे। इसी बात पर वे अन्दर ही अन्दर पछाड़ें खा रहे थे। इस वक्त वे सब देवेश और दीपिका के घर आकर इकट्ठे हुए, जहाँ होना चाहिए था उसके बिल्कुल पास, फिर भी काफ़ी दूर।

राजन को बड़ा फुसफुसा- सा ग़ुस्सा आ रहा था जबकि होना तो दुख चाहिए था। पर पता नहीं वह इस वक्त कहाँ दुबक गया। वह ख़ुद समझ नहीं पा रहा था कि किस को अपने ग़ुस्से का हक़दार बनाए। वह बड़ा भाई था, उसे ग़ुस्साने- खीजने का हक़ है। फिर वह सारे समूह पर ही खीजा।

''हम वहाँ होना ही क्यों चाहते हैं जब वह हमें वहाँ होना देखना ही नहीं चाहता था?

''शायद वह चाहता हो उसके बच्चे न चाहते हों?''

''पर आख़िर क्यों? क्या बहन जी को इस बारे में कुछ नहीं कहना चाहिए था?''

''वह ख़ुद बिस्तर से लगी हैं। क्या बोलेंगी?'' देवेश की हमदर्दी बहन जी के साथ थी। यूँ भी सारे रिश्ते की केन्द्र तो वही थीं।

''मुझे तो कुछ भी सही नहीं लग रहा।''

''क्यों?''

''न कभी हिन्दुस्तान में और न ही कभी अमरीका में, ऐसी बात सुनी नहीं।''

''मैने सुनी है।'' उसके बेटे बॉबी ने तमककर हाथ खड़ा कर दिया जैसे क्लास में किसी सवाल का जवाब मिल गया।

चारों सिर एक साथ घूम गए। चार जोड़ी आँखों ने जवाब की उम्मीद में अपनी झोलियाँ फैला दीं।

''एक आदमी ने अपनी वाइफ़ का मर्डर कर दिया था फिर उसने अपने घर के पिछवाड़े उसे दबा दिया। किसी को भी नहीं बताया।''

''मुर्दा बोलेगा तो कफ़न ही फाड़ेगा। क्यों करेंगे भला ऐसा वो ? वे लोग इज़्ज़त करते थे अपने बाप की।''

राजन ने भतीजे को डाँट तो दिया हालाँकि एकाध बार दाल में कुछ काला होने का ख़याल उसके दिमाग़ से भी गुज़रा था। पर उसने जल्दी ही संशय के काले ख़याल को बीन कर दिमाग़ से बाहर फेंक दिया।

''तो होते रहिए परेशान। लगाते रहिए अटकलें''

भतीजा उठकर ऊपर वाले कमरे में चला गया।

''वैसे दीदी, बात तो अजीब-सी है ही न।''

''क्या?''

''हम उनके सगे रिश्तेदार हैं और हमें तक नहीं बुलाया? आख़िर क्या वजह हो सकती है?''

अनिलप्रभा कुमार
विलियम पैट्रसन यूनिवर्सिटी, न्यू- जर्सी में हिन्दी भाषा और साहित्य की प्राध्यापक अनिलप्रभा कुमार का ''बहता पानी'' कहानी संग्रह और ''उजाले की क़सम'' कविता-संग्रह हैं। न्यूयॉर्क के स्थानीय दूरदर्शन पर कहानियों का निरन्तर प्रसारण होता है। हंस, अन्यथा, कथादेश, वागर्थ, परिकथा, आधारशिला, हिन्दी चेतना, विभोम-स्वर, गर्भनाल, लमही, शोध-दिशा और वर्त्तमान- साहित्य आदि पत्रिकाओं में कहानियाँ छपती हैं। अनिल जी की 'ज्ञानोदय' के 'नई कलम विशेषांक' में 'खाली दायरे' कहानी पर प्रथम पुरस्कार। ''अभिव्यक्ति'' के कथा-महोत्सव 2008 में ''फिर से'' कहानी पुरस्कृत हुई।
संपर्क: 119 Osage Road,Wayne, NJ 07470. USA
मोबाइल:973 628 1324
ईमेल: aksk414@hotmail.com

''क्या पता उन्हीं ने हिदायत दी हो कि सब कुछ निजी ही रखना।'

''हाँ, अगर ऐसे मौक़े पर सिर्फ़ परिवार के लोग मौजूद हों तो निजी ही होता है।''

''तो परिवार था तो उनके साथ''। देवेश के भोथरे व्यंग्य पर कोई मुस्कराया तक नहीं।

''तो क्या हम परिवार में नहीं आते? यार, हमें तो काटकर बाहर फेंक दिया।'' राजन इसी दुख की रस्सी पकड़े डूब- उतरा रहा था।

''आप क्यों बुरा मान रहे हैं? असलियत आ गई न सामने। उन्होंने हम सब को हमारी औक़ात बता दी।'' स्वाति गुस्से से उफन रही थी।

''दीदी, बदनसीब था वह आदमी। सबके होते हुए भी चार लोगों का कंधा तक नहीं मिला।''

''अरे, स्ट्रैचर पर ठेलकर ले गए होंगे। कितना बदनसीब है ज़फ़र, दो गज़ ज़मीन भी न मिली कूए अमरीका में।''

''देखो, यह हँसी-मज़ाक का मौक़ा नहीं।''

''तो चलो रोना शुरू करते हैं।''

''अच्छी ख़ासी उम्र भोगकर गए। रोने की क्या बात है?''

''कोई बीमारी भी तो नहीं थी।''

''जैसे होती तो आपको ही पहले बताते।''

''इसका मतलब वे लोग शुरू से ही घुन्ने थे।''

''पक्के। कभी कुछ बताया उन्होंने? बस घर की बात घर में।''

''झूठे भी तो थे।''

''वैसे भाई साहब, आपको उन्होंने मौत की वजह क्या बताई?''

''मैं तो सकते में था जब उसने बताया कि शाम को उनका अन्तिम संस्कार भी कर दिया है। मैं क्या पूछता?''

''इसका मतलब है कि मृत्यु कल हो चुकी थी। मुझे मालूम है न। यहाँ के क़ानून के हिसाब से मर जाने के बाद चौबीस घंटों तक अन्तिम संस्कार नहीं कर सकते।''

''मैं इतने नज़दीक रहता हूँ। मतलब पड़ता है तो झट मदद के लिए बुलाते हैं और इतनी बड़ी बात हो गई, बताया तक नहीं?''

''उन्होंने बता तो दिया कि अब उन्हें आपकी ज़रूरत नहीं। वे लोग अब आत्मनिर्भर और बोल्ड हैं।''

''मुझे तो मानसिक रोगी लगते हैं। आख़िर समाज के क़ायदे क़ानून भी होते हैं। कोई लोक-लाज?''

''कैसी लोक-लाज?'' राजन सोचता रहा। यह उनका लोक नहीं है। यहाँ हम सब सिर्फ़ पैसा कमाने आए हैं। यहाँ के समाज में रचने नहीं। यहाँ के सिर्फ़ क़ानून से डरते हैं इसलिए उस का पालन ज़रूर करते हैं। समाज यहाँ सबका अपना- अपना है। कुछ भी नहीं मानेंगे तो भी चलेगा। यहाँ है ही कौन किसी को कुछ कहने वाला? अपने को ही समझाता हुआ बोला; ''यहाँ आकर कोई बिरादरी बाहर होने या हुक्का-पानी बंद होने का डर थोड़े ही है।''

''भैया, हम सब लोग पहले ही बिरादरी बाहर हैं।''

देवेश जानता है कि कैसे जब उसके दफ़्तर के साथी छुट्टियों में शिकार पर जाते हैं, फ़ुटबॉल सीजन की पूरी टिकटें लेकर मैच देखने के लिए उत्साहित होते हैं या लम्बे बोट- ट्रिप की योजनाएँ बनाते हैं या जंगल में शिविर लगाकर छुट्टियाँ बिताने की बातें करते हैं तो वह कैसे कटा हुआ महसूस करता है। न वह उनके साथ बैठकर स्टेक खा सकता है, न ही दफ़्तर के बाद बॉर में ड्रिंक लेकर लड़कियों को पटाने की कला आजमाना चाहता है। भकुआ सा दफ़्तर के काम निबटाकर घर की ओर दौड़ता है। अमरीकी नागरिकता लेने के बावजूद वह अमरीकी थोड़े ही हो गया है। रहेगा तो वह देसी का देसी ही।

''एक बात सोचो, अगर वे भारत में होते, अपने देश में होते तो क्या तब वह ऐसा करने की सोच भी सकते थे?''

देविका का प्रश्न सबको सोच की सतह पर धकेल कर ले आया।

''हुंअअ.....'' शायद नहीं। राजन ही बोला। वहाँ धर्म, संस्कारों का लिहाज न भी होता पर समाज को इस तरह से अँगूठा दिखा पाने की हिम्मत नहीं कर सकते थे।''

स्वाति को लगा उसे असहजता का बुखार चढ़ रहा है। उठकर टहलने लगी। एक अपराध-बोध। बेटे ने जब बिना शादी के उस अमरीकी लड़की के साथ रहना शुरू कर दिया था तो कहीं उसने भी अपने माँ-बाप के इस दुनिया में न होने से राहत नहीं महसूस की थी? दूसरे देश में रहने से समाज का वह अंकुश उस तीव्रता से नहीं चुभा था। जाने-अनजाने अपने समाज के कुछ दस्तूरों का उठाला करने को तो वे सब भी कभी न कभी विवश हुए ही हैं। कुछ कम कुछ ज़्यादा।

''तुम्हारा मतलब, बेगाने मुल्क में आकर इन्सान अपने-आप से भी निहंग हो जाता है?''

वह चौकन्नी हुई।

''शायद।''

''आख़िरी विदाई, अन्तिम संस्कार तो यहाँ के समाज में भी बड़ी संजीदगी से किए जाते हैं।''

''वह अमरीकी थोड़े ही था।''

''तो क्या वह देसी था?''

''शायद वह भी नहीं।''

''तो?''

''शायद वह न अमरीका का बन पाया था और न भारत का ही रह गया था। वह आज़ाद था। उसकी अपनी दुनिया थी।''

''हम किस दुनिया की तरह बर्ताव करें?''

''मेरा मन कहता है कि हमें चलना चाहिए। हमारा वहाँ जाना, बहनजी के पास जाना बनता है, इन्सानियत के ही नाते सही।''

''पर अगर उन्होंने दरवाज़ा ही न खोला तो?''

''लौट आएँगे।''

''उनके बेटे ने यह भी कहा था कि न कोई अफ़सोस करने आए और न ही अपने दोस्तों को बताए। जाकर कहेंगे क्या हम?''

''मौसम का हाल पूछेंगे।'' चिड़चिड़ा हो रहा था राजन।

''सारी शर्म-हया, दुनियादारी का लिहाज़ हमें ही क्यों हो?

''क्योंकि तुम एक इन्सान हो। यह इन्सानियत का फ़र्ज़ बनता है। बहन है वह हमारी। पता नहीं किस हालत में होगी। मैं बेटों की परवाह नहीं करता पर उसकी करता हूँ।''

''तो क्या आपको लगता है उनकी मर्ज़ी के बिना यह सब हुआ होगा?''

''मेरी कल्पना तक काम नहीं कर पा

रही। उन्हें ज़रूर परसों से पता था। जब तक बॉडी नहीं मिलती उन चौबीस घंटों तक सब इन्तज़ाम करना होता है। बॉडी को घर लाने की तो इजाज़त नहीं। सीधे दाह-घर ले गए होंगे। आख़िर वहाँ पर पंडित वग़ैरह का इंतज़ाम तो किया ही होगा?''

''हू नोज़?'' देवेश ने कंधे उचका दिए।

''जब मेरी मम्मी की यहाँ पर मौत हुई थी तो हमने उनकी बॉडी की पहले ख़ास लेप लगवा कर ''बाल्मिंग'' करवाई थी ताकि उनका शरीर विकृत न हो। उन्हें मेक-अप और कपड़ों से सजा कर खुले महागनी लकड़ी के ताबूत में लिटाया था ''वियूइंग'' के लिए। पंडित ने पूजा की थी और ढेर सारे फूलों से पूरा फ़्यूनिरल होम भर गया था। पाँच सौ डॉलरस के तो ''रीथ'' और बड़े वाले बुके ही आए थे। न लगाते तो लोग क्या कहते कि देखो पैसों की कन्नी काट गए। इतने लोग आए थे श्रद्धांजलि देने कि उन्हें बाहर लॉबी में खड़ा रहना पड़ा।''

''चुप भी करो यार। तुम औरतें भी बस्स...'' राजन लगभग चिल्ला पड़ा था।

ऐंठी सी चुप्पी महौल को अपने शिकंजे में कस गई। सोच फिर उसकी जकड़ से बाहर खिसकने के लिए कुलबुलाई।

''क्या पता इसीलिए उन्होंने किसी को न बुलाया हो।'' इस बार सबकी आँखें देवेश के चेहेरे से जा चिपकीं।

''किसलिए?''

''कंजूसी की वजह से। सबको बुलाते तो सब ताम-झाम करना पड़ता। ताबूत के हज़ार डॉलरस, फूलों का ख़र्चा, पंडित के पाँच सौ, बाद में अन्तिम भोज वग़ैरह। अब तो मैडीकेड वाले अन्तिम संस्कार के जो पैसे देते हैं उसी सरकारी राशि से गत्ते के डिब्बे में बंद करके फूँक आए होंगे।''

''मतलब कोई पंडित भी नहीं?''

''क्या पता?''

''पर फिर भी इतना तो है ही कि चार लोग कंधा देने के लिए चाहिए। उनका छोटा बेटा तो यूँ भी कमज़ोर दिमाग़ का है। वह तो ऐसी स्थिति का तनाव झेलने की हालत में है ही नहीं। बड़ा ही शायद स्ट्रेचर को ठेलकर दाह-कक्ष तक ले गया होगा। क्रिमेशन हाउस वाले लोगों ने भी शायद कुछ मदद कर दी होगी। बस, बटन दबाकर वह घर आ गया होगा। हम सब रिश्तेदारों के होते हुए भी?'' स्वाति का रोना निकल ही गया।

''बता तो दिया था कल भाईसाहब को। यह भी कि हमें भी बता दें पर कोई अफ़सोस का फ़ोन न करे।''

''इसके क्या मायने हुए?''

''यही कि उन्होंने सूचित कर दिया, बस।''

''या हम लोग उनकी ठोकर पर?''

''हमारी छोड़ो, जानेवाले की सोचो। क्या इतनी ज़िन्दगी बिता देने के बाद उन्हें सम्मान से विदा होने का भी हक़ नहीं था?''

''वे तो चले गए, उन्हें क्या फ़र्क़ पड़ता है? पर उनके परिवार के लोग? क्या वे सहज हो पाएँगे?''

''ये जो रीति-रिवाज़ बने हैं न हर समाज में, हर धर्म में इनकी भी सार्थकता होती है-पीछे रहने वालों के लिए। ताकि उनके दुख की पूर्णता हो सके, वे सहज हो आगे बढ़ सकें।''

''हो सकता है उन्हें इस तरह की औपचारिकता की कोई ज़रूरत ही न हो?''

''ऐसे में हमारा उन लोगों के ऊपर अपने को थोपना फूहड़पन भी तो लग सकता है।''

''देखो, भारत में तो घर के लोग उनके पास जाकर बैठते हैं। एक पल अकेला नहीं होने देते। सहारा बनते हैं। सारी दुनिया-भर में इस दुनिया से जाना एक बहुत बड़ी बात होती है।''

''उनकी अलग ही दुनिया है जहाँ उन चार लोगों के अलावा और कोई नहीं।''

राजन ने झुका हुआ सिर उठाया। लगा वह किसी की भी बात नहीं सुन रहा था। सोच रहा था कि कोई बात होती है, देश-विदेश से ऊपर। औपचारिकताओं, अहं और आहत होने से भी ऊपर। संस्कारों और विवेक की गद्दी पर बैठी अन्तरात्मा की आवाज़ जो झुठलाए जाने को तैयार ही नहीं होती। न सही कुछ भी। इन्सानियत के नाते ही सही।

वह चलने के लिए उठ खड़ा हुआ।

''मेरे ख़याल से हमें जाना चाहिए। यहाँ भी ऐसे मौकों पर नज़दीकी लोग इकट्ठे होते हैं।''

देवेश टुकुर-टुकुर दीवार को घूरता, वैसे ही जड़ बैठा रहा।

''लेकिन भाई, उन्होंने ऐसा किया क्यों? क्या वजह रही होगी? दुनिया का भी लिहाज़ नहीं किया? आख़िर ऐसी भी क्या मजबूरी थी?''

''शायद उन्हें कोई भी मजबूरी नहीं थी किसी भी दुनिया के दस्तूर निभाहने की।''

''या वह किसी भी दुनिया का था ही नहीं।''

राजन फिर से निढाल होकर बैठ गया। स्वाति ने कोमलता से उसके कन्धे पर हाथ रख दिया।

''भाई, आहत तो सबसे ज़्यादा मैं हुआ हूँ। पाँच मिनट की दूरी पर रहता हूँ और..''

''आपके अहं को चोट लगी है?'' दीपिका मालूम नहीं पूछ रही थी या बता रही थी।

''शायद? उससे ज़्यादा कि अपने दोस्तों और रिश्तेदारों को क्या बताऊँगा? बहनोई गुज़र गए, उनका दाह-संस्कार भी हो गया और मुझे मालूम तक नहीं?''

चोट का दर्द देवेश के चेहरे पर अपनी खरोंचे डाल रहा था। उसने चेहरा दूसरी ओर घुमा लिया।

''हो सकता है वह हम सबको सिर्फ़ तेरहवीं पर ही बुलाएँ?''

''यह मज़ाक़ करने का समय नहीं है।'' अब देवेश को सचमुच गुस्सा आ गया।

''उठो देवेश, तुम सब भी। बस कुछ नहीं सोचना अब? हमें वही करना चाहिए जो हमे ठीक लगता है। हम कोई रबड़ की गेंद नहीं जो दूसरों की क्रिया की प्रतिक्रिया बनें।''

राजन के बुझे चेहरे पर अचानक चमक आ गई। उसने महसूस किया कि वह सारे तर्क-वितर्क, मानसिक ऊहापोह से निथर कर ऊपर आ गया है। परिस्थिति ज़्यादा समय नहीं देती। निर्णय लो। इधर या उधर। सही या ग़लत। ऐसे मौक़े पर ही आदमी की धातु का तेज़ाबी परीक्षण होता है। वह किस चीज़ का बना है उसे इसका प्रमाण देना होता है।

राजन की सीधी नज़र और कसे जबड़े बता रहे थे कि उसने निर्णय ले लिया है.....

राजन अपनी पत्नी के साथ अगली गाड़ी में बैठा और देवेश ने भी उसी के पीछे गाड़ी

लगा दी। राजन ने सिगनल दिया और दिन-दहाड़े कार की लाइटें ऑन कर दीं। देवेश ने भी वही किया। अनजाने ही वे अमरीकी ''फ़्यूनिरल प्रोसैशन'' के नियम का अनुसरण कर रहे थे। उन्होंने कार की हैड-लाइटें ऑन करके धीरे- धीरे गाड़ियाँ आगे बढ़ाईं। एक परम्परा सी है यहाँ। जब शव को ताबूत में रखकर, काली वैन दाह-घर की ओर बढ़ती है तो शेष सारे संबंधी और मित्र भी अपनी कारों की बत्तियाँ जला कर, धीरे- धीरे उसके पीछे कतार बद्ध हो जाते हैं। दिन में कार की जलती बत्तियाँ इस बात का संकेत हैं कि शव- यात्रा का जुलूस निकल रहा है। सड़क पर चलने वाली कारें इस कतार के बीच में नहीं आतीं, चुपचाप सम्मान पूर्वक रास्ता दे देती हैं। हालाँकि इस दृष्टि से यह उस तरह का ''जुलूस'' नहीं था; न फ़्यूनिरल होम वालों की गाड़ी अगुआई कर रही थी और न ही उन्होंने शव को देखा था। बस सुना था और वह उसी सुनी हुई आवाज़ के सूत्र पकड़कर अपने को जुलूस का हिस्सा मान रहे थे।

वातावरण में चारों तरफ़ धुन्ध ही धुन्ध थी। शायद बाहर ज़्यादा और भीतर कम या भीतर ज़्यादा और बाहर कम। चारों उस दरवाज़े के बाहर खड़े थे जहाँ एक मौत हुई है। एक बुलबुला -सा उठा था जिसका अब कोई नामो-निशान ही नहीं। एक आदमी ज़मीन से गायब हो गया। एक इतिहास था उस आदमी के साथ। यादें, बातें, एक साझा समय। सब पर एक सफ़ेदी पुत गई जो अभी गीली थी। किसने पोता था यह रंग? व्यावहारिकता ने, निष्ठुरता ने या समय और स्थान की बर्फ़ानी चट्टानों ने? किसी को कुछ नहीं मालूम।

एक प्रश्न दिमाग़ में भँवरियाँ ले रहा था। यहाँ तक तो आ गए, अब? रुकी-रुकी साँसों के साथ आने वाली स्थिति की अनिश्चितता के लिए अपने को साध रहे थे। तसल्ली यही थी कि समूह में थे, कोई अकेला अभिमन्यु चक्रव्यूह मे नहीं प्रवेश करेगा।

राजन को अपना बड़े होने का बोझ इससे पहले कभी इतना भारी नहीं लगा था। थोड़ा ठिठके रहने के बाद वह सिर झटकने लगा। इससे पहले कि उसके पाँव कायरता दिखाकर पीछे कूच कर जाते, उसने झट से घंटी पर हाथ रख दिया।

वे लोग बन्द दरवाज़े को जैसे निगाहों से ही धक्का देने की कोशिश में थे कि धीरे से दरवाज़ा खुलना शुरू हो गया। बड़े बेटे ने हल्का सा सिर हिलाकर आनेवालों के लिए रास्ता दे दिया। वे रोबोट की तरह कतार में ही दाख़िल हुए। वैसे ही फ़ॉयर में जूते उतारे और अन्दाज़ से दाँए फ़ैमिली रूम की ओर बढ़ गए। हमेशा की तरह कमरे में मरियल -सी रोशनी बिखरी थी।

दाँई ओर लगे छोटे से बेड पर लेटी बहन जी उठ कर बैठ गईं। शायद झपकी ले रही थीं।

सभी ने आँखें नीची किए हुए ही अपने-अपने लिए जगह खोजने की कोशिश की।

राजन धीमे से झुककर बहनजी के गले लग गया।

उन्होंने बिना उसकी ओर देखे हुए उसकी पीठ थपथपा दी। वह पीछे हटकर सोफ़े पर बैठ गया।

स्वाति भी आगे बढ़कर हल्के से उनके गले लगी और वहीं पर उसी छोटे से बेड पर बैठने की जगह ढूँढ़ने लगी।

छोटे बेटे ने एक कुर्सी खींच कर पास रख दी।

देवेश और दीपिका कमरे के दूसरे सोफ़े पर बैठ गए।

बड़े बेटे ने बहन जी से इस बारे में कोई भी बात करने से मना किया था। राजन उनकी तरफ़ देख रहा था और वह सामने लगी दीवार को। उनकी आँखों में नमी नहीं थी। शायद ज़रूरत से ज़्यादा सूखा था वहाँ। उनके हाथों की मुट्ठियाँ बन्द थीं। पता नहीं क्या कस कर समेटे थीं वह उनमें। उनकी पलकें धीरे-धीरे उठ-गिर रही थीं। शायद वह जानती थीं कि वे सब यहाँ क्यों आए हैं? या उनके आने या न आने से कोई फ़र्क नहीं पड़ता। पचपन साल से एक चेहरा, एक आदमी, एक आवाज़ की वह आदी थीं। अब सब कुछ जैसे हवा में गुम है। शायद उन्हें उसे पकड़ने, सहेजने की भी चेतना नहीं। वह कुछ भी पकड़ पाने में असमर्थ थीं। उन्होंने धीरे से मुट्ठियाँ खोल दीं। उनकी हथेलियाँ फैल गईं।

राजन ने उनकी फैली हथेली पर अपनी हथेली रख दी। उनकी हथेली लरजी।

''तबियत कैसी है?''

''ठीक है।'' उनके अन्दर से ऐसे आवाज़ निकली जैसे किसी मशीन से निकली हो। बग़ैर किसी संवेदना या थरथराहट के। वह यूँ ही स्थिर बैठी रहीं।

असहज चुप्पी की एक और लहर आई और खींच कर रसातल में ले गई।

''चाय पिएँगे ?'' शायद बड़े बेटे को लगा कि ख़ामोशी तोड़ना उस की ज़िम्मेदारी बनती है।

''नहीं''। राजन ने हाथ के इशारे से मना कर दिया और देवेश ने ज़ोर से सिर हिला दिया नाराज़गी को ज़ाहिर करते हुए। उसने हिकारत से बड़े बेटे को देखा और आँखें फेर लीं।

सवाल बरसाती केंचुओं की तरह कुलबुला रहे थे। क्या हुआ था? कितनी देर से बीमार थे? बीमार थे भी या नहीं? यह कैसी अजीब -सी विदाई थी? न अमरीका का गहन-गम्भीर, मर्यादित, अन्तिम मौन सम्मान। न भारत की हृदय-विदारक पीड़ा को धार्मिक अनुष्ठान से गरिमा देकर अन्तिम संस्कार? क्या वह यहाँ आकर दोनों दुनिया की मर्यादा से मुक्त हो गए थे? एक विस्फ़ोटक आक्रोश था, एक आहत अहं, एक बिलखती संवेदना कि क्यों हमें अन्तिम श्रद्धांजलि देने के अधिकार से वंचित रखा? एक रिश्ते की पूर्णाहुति क्यों नहीं होने दी? अन्दर एक आन्दोलन छिड़ा था और बाहर चल रहा था मौन सत्याग्रह।

सभी ने ऐन अपने सामने की दीवारें चुन ली थीं। बस उसी पर निगाहें कितने अविश्वास -पत्र लिखती- मिटाती रहीं। धूल उड़ती रही। दिमाग़ में, दिल में और साँसों में भरने लगी। वह बिन्दु, वक्त का वह एक छोटा सा हिस्सा कि बस अब और इस औपचारिक चुप्पी की गर्द में साँस नहीं ली जा सकती। राजन उठ खड़ा हुआ।

''अच्छा चलते हैं।'' उसने हाथ जोड़ दिए।

सभी स्प्रिंग की तरह कुर्सियों से ऊपर उठ गए।

बड़े लड़के ने आगे बढ़कर दरवाज़ा खोल दिया।

''अच्छा। फिर....'' राजन ने बिना देखे शब्दों के अवशेष हवा में फेंक दिए।

दरवाज़ा बन्द हो चुका था।

***

डॉ. ऋतु भनोट
पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ से पोस्ट डॉक्टरेट (हिन्दी) डॉ. ऋतु भनोट का कविता संग्रह 'पुनर्नवा', डॉ. राजिंद्रपाल सिंह जोश के सहयोग से 'महिला आत्मकथा लेखन के सन्दर्भ में नारी विमर्श' प्रकाशित पुस्तकें हैं। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में 100 के लगभग आलेख, पुस्तक समीक्षा, साक्षात्कार, कहानियाँ तथा कविताएँ प्रकाशित। परिशोध, शोधश्री, प्रतिमान, शब्द सरोकार, अनुसन्धान, ईपत्रिका शब्दांकन, आगमित, समावर्तन व अन्य साहित्यिक पत्रिकाओं में शोध पत्र व साक्षात्कार प्रकाशित। श्री विष्णु प्रभाकर प्रतिष्ठान एवं गाँधी हिंदुस्तानी साहित्य सभा द्वारा संचालित सन्निधि संगोष्ठी द्वारा वर्ष 2017 के विष्णु प्रभाकर साहित्य सम्मान से सम्मानित। डॉ. ऋतु भनोट ने पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला के पंजाबी भाषा विकास विभाग की ओर से 'गुरु शब्द रत्नाकर महान् कोश' का पंजाबी से हिन्दी में, नोबल पुरस्कार विजेता उपन्यासकार वी.एस.नायपॉल के उपन्यास 'ए हाउस फॉर मिस्टर बिस्वास' का पंजाबी से हिन्दी में, स्टेट काउंसिल ऑफ एजुकेशनल रिसर्च एंड ट्रेनिंग (एससीइआरटी) के लिए राष्ट्रीय जनसँख्या शिक्षण परियोजना के अंतर्गत नेशनल पापुलेशन एजुकेशन प्रोजेक्ट का अंग्रेज़ी से हिन्दी में,नाबार्ड (भारत सरकार) की वार्षिक दो रिपोर्टों का अंग्रेज़ी से पंजाबी में और प्रसिद्ध वास्तुकार श्री संगीत शर्मा की पुस्तक 'The Corb's Capitol' का हिन्दी में अनुवाद किया है।
संपर्क: मकान नं. 4486, दर्शन विहार, सेक्टर-68, मोहाली-160062
मोबाइल:9915224922
ईमेल:ritubhanot.sagar@gmail.com

तारो बीबी

डॉ. ऋतु भनोट

शाम ढल रही है, दूर क्षितिज पर सलेटी रंग के आकाश की गोद में लाल, गोल-मटोल सूरज धीरे-धीरे डूब रहा है, पक्षियों की कतारें अपने घोंसलों की दिशा में उड़ान भर रही हैं। गहराती शाम के धुँधलके में मंदिर की लगातार बजती घंटियाँ, शंखनाद और एक साथ दर्जनों जोड़ी कंठ से निकलती जय-जयकार वातावरण को पवित्र तथा रहस्यमयी बना रही है। मैं और माँ बस से उतर कर जहाँ खड़े हैं, वहाँ से मेरा ननिहाल किसी पेंटिंग जैसा ही दिखाई दे रहा है। सड़क पार करते-करते मंदिर के बाहर जगर-मगर करती लाइटों से जगमगाता हाट दिखाई दे रहा है। मंदिर के बाहर छोटा सा एक पोखर और पोखर के साथ-साथ ज़मीन पर कपड़ा बिछा कर चूड़ी, बिंदी, बिछिया, खिलौने और न जाने क्या-क्या बेचते दुकानदार। कोई बच्चा जलेबियों के दोने में से जल्दी-जल्दी जलेबियाँ गटक रहा है, किसी की चकरी हवा के साथ तेज़-तेज़ घूम रही है, कोई दो रुपये में पाँच बार झूला-झूलकर भी अतृप्त सा खड़ा किसी तिकड़म की जुगाड़ में है और कहीं कोई बच्चा हनुमान जी की गदा काँधे पर टिकाए स्वयं को किसी शूरवीर का अवतार समझ रहा है। लेकिन सबसे ज़्यादा भीड़ मंदिर के दरवाज़े पर खड़े उन बच्चों की है, जो मंदिर से बाहर निकलने वाले हरेक भक्त के सामने हाथ पसार कर प्रसाद की माँग कर रहे हैं और झुंड बना कर, चेहरे पर याचना का भाव ओढ़ कर प्रसाद लपक लेने में जितनी तत्परता बरत रहे हैं, उतनी ही फुर्ती से लिफाफे में प्रसाद भर कर हाथ खाली करने और फिर से प्रसाद के लिए याचना की मुद्रा में आने मे दिखा रहे हैं।

यह सारा दृश्य मेरे लिए बिल्कुल नया है। शहरों में अब न तो ऐसे मेले लगते हैं और न ही लोग इतनी श्रद्धा से वहाँ जुटते हैं। माँ से पूछा तो पता चला कि यह तारो बीबी का मंदिर है और हर साल इन्हीं दिनों यहाँ बड़ा भारी मेला लगता है। लोग मन्नतें माँगने और पूरी हो चुकी मन्नतों का नज़राना चढ़ाने यहाँ दूर-दूर से आते हैं। नई-नवेली दुल्हन और संतान होने के बाद माँ और बच्चे का माथा टिकाने तारो बीबी के मंदिर आना यहाँ कोई नहीं भूलता। माँ ने अपने पसीजी हथेलियों में मेरा हाथ थाम कर कहा, ''तेरे जन्म के बाद मैं जब घर से पहली बार निकली थी, तो इसी मंदिर में आई थी, बड़ी मन्नतों के बाद पाया था मैंने तुझे तारो बीबी से, तू इन्हीं का अंश है, इसीलिए तेरा नाम मन्नत रखा है मैंने।' माँ की बात सुन कर झुरझुरी सी हुई। इतने में पीछे से किसी की आवाज़ सुन कर माँ ठिठक गई। कोई वृद्ध तेज़ कदमों से हमारी ओर ही आ रहे थे और माँ का नाम पुकार रहे थे, पास आ कर बोले, '' भागाँ वाली, मैंने दूर से ही पहचान लिया था तू ही है, कितने सालों बाद देखा है तुझे, तू तो

हमें बिसार ही बैठी।' माँ के सिर पर प्यार से हाथ फेरते उस भाव विगलित वृद्ध को मैं बड़ी हैरानी से देख रही थी। माँ ने अपनी नम आँखें पोंछते हुए कहा, ''मन्नत, नमस्ते करो, यह तुम्हारे नाना है।'

''पर नाना तो.....?'' मेरी अधूरी बात को काटते हुए माँ ने मुझे आँखों ही आँखों में घूरा तो मैं चुप हो गई पर अंदर ही अंदर बहुत से सवाल घूम रहे थे। अब वह वृद्ध हमारे साथ-साथ चलने लगे। हमारा सामान अपने कंधे पर उठा कर वह गाँव तक साथ ही आए। रास्ते में न जाने कितनी मामियाँ, नानियाँ, भाई, बहनें और मामू मिले, चाहूँ भी तो गिन नहीं सकती। कोई माँ को कहता, ''जीवन जोगी आ गई तैनूँ साडी याद?'' कोई बाँहे पसारे सीने से लगा लेता और तृप्ति हो जाने पर कहता, ''कर्मावालिए। साडी याद नई आई कदे?''

माँ की आँखें तो सूख ही नहीं रही। बार-बार दुपट्टे के पल्लू से आँखें पोंछती है। नानी का घर आने तक एक पूरा काफिला जुड़ गया है हमारे पीछे। मुझे यह सब बहुत बेतुका लग रहा है, खास तौर पर तब जब यह सारी मामियाँ, भाबियाँ, नानियाँ मेरे सिर पर हाथ रखकर माँ से पूछती है, ''यह मन्नत बीबी है ना ?'' एक तो माँ को न जाने क्या-क्या कह कर बुला रहें है, उस पर मेरा अच्छा-खासा नाम भी बिगाड़ कर रख दिया। मैंने माँ से पहले ही कहा था कि छुट्टियों में कहीं हिल-स्टेशन पर घूमने चलते हैं पर माँ नहीं मानी। पापा की बीमारी और मेरी पढ़ाई के कारण वह कई साल से मायके नहीं आई थी। बचपन में नानी के घर के नाम पर कुछ छिटपुट यादें अभी भी ताज़ा हैं मेरी स्मृतियों में। मिट्टी से पुता घर, छत पर बीचों-बीच एक सुराख, बारिश पड़ने पर मामा भागकर छत पर जाते और सबसे पहले सुराही से उस सुराख को ढाँपते। नानी का वो बड़ा सा संदूक जिस की पीतल की कुंडियाँ मुझे बहुत लुभाती थी। चूल्हे पर रोटी बनाती नानी कभी उपलों की आँच पर घंटों पक कर गुलाबी हो चुके दूध को छन्ने में ओटाती और कभी ढिबरी की बाती को खींच कर रोशनी बढ़ा देतीं ताकि गुलाबी ठंड़ में चूल्हे की आग की रौशनी से दूर बैठ कर खाना खाने वालों को भी अँधेरा न रहे।

दरवाज़ा खोलकर सामने खड़ी नानी पहले से बहुत बूढ़ी लगी मुझे। कमर झुक गई थी, रह-रह कर खाँस रही थी; लेकिन उनका दिपदिपाता चेहरा प्यार और ममता की आभा से आज भी वैसे ही जगमगा रहा था। नानी ने लालटेन ऊँची करके बारी-बारी से माँ और मेरा चेहरा गौर से देखा और बढ़ कर एक साथ हमें गले से लगा लिया। कितना अपनापन था नानी की गलबहियाँ में। आत्मा तक भीग गई... एक पल को लगा इतने बरस माँ ने कितना-कितना याद किया होगा नानी को, इस गाँव को, इस परिवेश को। घर-गृहस्थी की चक्की के दोनों पाटों में औरत ही पिसती है सालों-साल। गई रात तक नानी की गोद में सिर रखकर लेटी माँ, और माँ को चारों ओर से घेर कर बैठे मामा, मामियाँ और उनके ढेर सारे बच्चे। न जाने कितने किस्से, कितनी बातें और बात-बेबात ठहाके। जीवन क्या इतना सरल भी हो सकता है और रिश्ते इतने मधुर कि कहीं भी रहो, बीच में से होकर गुज़रे सालों साल उस मिठास का अहसास जस का तस बना रहे। मैंने तो किताबों में ही पढ़ा था कि गाँवों में बहू-बेटियाँ साझी होती हैं, उत्सव साझे होते हैं और दुख दर्द की बोझिल घडियाँ भी। किताबी बातें सच भी होती हैं, आज साक्षात् देख लिया मैंने।

पौ फूटने से पहले गाय-भैंस का सानी-पानी, आँगन की लिपाई, चूल्हे पर सीझती खेत से तोड़ कर लाई गई तरकारी और घर-भर के लोगों का चूल्हे के आस-पास पटड़ी डालकर ताज़े निकाले मक्खन से तर-ब-तर रोटी खाना, पता नहीं कितनी रोटियाँ पकतीं थीं, नानी कहती हैं रोटी गिनते नहीं, गिनो तो खाने वाले को लगती नहीं रोटी। पहली रोटी गाय की, पहला कौर कौए का..... सब का हिस्सा है ययाँ। दिन तो मानों पंख लगाकर उड़ रहे थे, दोपहर में गाँव की औरतें चौपाल में जुड़तीं, कोई चरखा कातती, कोई फुलकारी काढ़ती, कोई सूत अटेरती और कोई गेहूँ फटकाती। कोई न कोई गीत हवा में थिरकता रहता और एक-एक कर सब उस गीत की स्वर-लहरियों में ऐसी डूबती कि वक्त थम जाता, राहगीरों के पैर रुक जाते। शाम होते ही सब तारो बीबी के मंदिर में जा बैठतीं। दस दिन तक चलने वाले मेले में हर रोज़ शाम को पंडित जी तारो-बीबी की कथा कहते थे। माँ भी रोज़ मंदिर जाती थी कथा सुनने, पुरानी सहेलियों को मिलने और बचपन की यादों को ताज़ा करने। मैं रोज़ टाल देती, मुझे सत्संग, प्रवचन नहीं सुहाता, मेरे लिए तो जीवन ही सत्संग है, जीने की कला ही मेरी पूजा।

एक दिन माँ के बहुत ज़िद करने पर जाना ही पड़ा। माथा टेक कर पंडित जी के सामने बिछी दरियों पर मैं, माँ और नानी के साथ बैठ गई। पंडित जी भाव-विभोर होकर तारो-बीबी की कथा सुना रहे थे कि किस प्रकार तारो बीबी ने सतीत्व के बल पर अपने मृतप्राय पति के प्राण भगवान् से वापिस माँग लिए और तारो बीबी को यह वरदान मिला कि जो भी स्त्री तारो बीबी की कथा मन-प्राण से सुनेगी और पतिधर्म का पालन करेगी वह अखण्ड सौभाग्य को प्राप्त होगी। पता नहीं क्यों अचानक बैठे-बैठे मुझे घबराहट सी होने लगी। माँ का चेहरा देखा तो वह इतने भक्ति भाव से कथा सुन रही थी कि कुछ कहने का मन नहीं हुआ। मैं अचानक उठी और तेज़ कदमों से मंदिर के बाहर निकल कर नानी के घर की ओर चल पड़ी। कुछ देर बाद माँ भी घबराई सी मुझे ढूँढ़ती नानी के घर पहुँच गई और गुस्से से फट पड़ी, ''यह क्या बदतमीज़ी है मन्नत! कथा के बीच में से उठकर चली आई, न मुझे बताया, न प्रसाद लिया। तुम पढ़-लिख कर अपने आप को बहुत मॉडर्न समझने लगी हो। धर्म-कर्म तुम्हें अब आडम्बर लगता है।' माँ को कंधों से पकड़ कर मैंने चारपाई पर बिठाया और उनके सामने ज़मीन पर घुटने टिका कर माँ का हाथ थाम कर बोली, ''माँ तुम भी जानती हो कि न तो मैं वैसी मॉडर्न हूँ और न ही बदतमीज़। तुम्हें आहत नहीं करना चाहती थी पर मुझे वहाँ घबराहट हो रही थी, लग रहा था दम घुट जाएगा कुछ देर और वहाँ ठहरी तो।' माँ के चेहरे का तनाव थोड़ा कम हुआ, ख़ुद को संयत करके बोली, ''ऐसा क्या होता है तुझे, करवा चौथ की कथा सुनने कभी मेरे साथ जाती है तो भी तेरा दम घुटता है। मैं तेरा बचपना समझ कर टालती आई हूँ- पर आज मैं जानना चाहती हूँ कि तेरे मन में आख़िर है क्या?'' मैंने दो पल रुक कर हिम्मत बटोरी और माँ की आँखों में आँखें डाल कर कहा, ''माँ! मेरे लिए तुम तारो बीबी भी हो, सत्यवान् की सावित्री भी

और करवा चौथ की कथा वाले सात भाइयों की लाडली बहन भी।'

''मैं समझी नहीं।' माँ की आँखों में उलझन साफ झलक रही थी। ''देखो माँ, चार साल पहले जब पिता जी का ज़्यादा शराब पीने के कारण लिवर खराब हो गया था, डॉक्टरों ने भी आस छोड़ दी थी तो वो तुम ही थी जिसने अपनी नौकरी, अपनी सेहत की परवाह किए बगैर दिन-रात उनकी इतनी सेवा की थी कि मौत के मुँह में जाते-जाते पिता जी तंदरुस्त होकर लौट आए थे।''

''तो, इसमें क्या अजूबा है?'' माँ समझ नहीं पा रही थी। ''और हाँ माँ, वो गली की नुक्कड़ वाली शर्मा आंटी जिन्होंने अपनी किडनी देकर अपने पति को दूसरा जीवन दिया था, और मँझली बुआ जिन्होंने दस साल अपने लकवाग्रस्त पति को नहलाने, धुलाने, दाढ़ी बनाने, नाखून काटने, खाना खिलाने जैसे अनेक काम भक्तिभाव से उफ़्फ़ तक किए बिना सम्पन्न किए थे, और माँ वो तुम्हारी बचपन की सहेली, जिसने अपने एय्याश पति के गुप्त रोगों को अपने आँचल में यों छिपा लिया था मानों वह उसी के व्यभिचार का नतीजा हों।''

''हाँ, हाँ! मन्नत, मैं सब जानती हूँ, क्यों याद दिला रही है यह सब?''

''तो माँ! मुझे तो इस दुनिया की हरेक औरत तारो-बीबी नज़र आती है। पति की बुराइयों, कमियों को अपने ऊपर ओढ़ कर उसकी सलामती के लिए जी-जान लुटा देने वाली, पर माँ! घबराहट तो मुझे यह सोचकर होती है कि युग बीत जाने पर भी किसी सावित्री या तारो बीबी के जीवन में ऐसा एक भी पुरुष क्यों नहीं आता जो उसके जीवन की सलामती के लिए सब कुछ लुटाने को तैयार हो। क्या किसी युग में औरत के जीवन की कोई कीमत नहीं है माँ?''

माँ की आँखें नम थीं और हथेलियाँ ठंडी पड़ चुकी थीं। तारो बीबी के मंदिर से जयघोष ऊँचा और ऊँचा सुनाई देने लग पड़ा था। कथा पूरी हो गई थी और मेला समाप्त। लेकिन मेरे और माँ के बीच पसरा यह प्रश्न अनुत्तरित रहकर त्रिशंकु सा हवा में लटक रहा था।

***

लघु कथा

जन-गण-मन

विजयानंद विजय

मैदान के चारों ओर भीड़ लगी हुई थी। स्कूली बच्चे, राज्य पुलिस व एन सी सी के जवान मुस्तैद थे। झंडोत्तोलन होने वाला था....आज स्वतंत्रता दिवस पर।

नियत समय पर ज्यों ही मुख्यमंत्री ने झंडा फहराया, बच्चे, पुलिस व एन सी सी के जवानों के साथ जनता ने भी ज़ोरदार सलामी दी और ''जन गण मन....'' फ़िज़ाँ में गूँजने लगा। मेरी निगाह ध्वज-मंच से होकर अफसरों, मैदान में खड़े बच्चों, सिपाहियों, जवानों से होती हुई भीड़ के उस हिस्से पर गई, जहाँ खादी वस्त्रों में, गाँधी टोपी पहने एक कृशकाय वृद्ध राष्ट्रीय ध्वज की ओर नज़रें टिकाए, सलामी देते हुए पूरे जोश से राष्ट्रगान गा रहे थे। उनके हावभाव, उनका स्वर, उनकी मुद्रा सभी से अलग थी। जब राष्ट्रगान खत्म हुआ, तो मैं उनके पास गया....उनकी आँखों से झर-झर आँसू बह रहे थे। हाथ जोड़कर मैंने उनसे उनका परिचय पूछा-

''मैं एक स्वतंत्रता सेनानी हूँ...।'' उन्होंने डबडबाई आँखों से, काँपती आवाज़ में कहा.....।

अब मेरा रोम-रोम काँप रहा था!

***

संपर्क: आनंद निकेत, बाज़ार समिति रोड, पो. - गजाधरगंज, बक्सर (बिहार) - 80210 मोबाइल:9934267166,ईमेल :vijayanandsingh62@gmail.com

परतें

शशि पाधा

सीमा को अपने पति की नानी से गहरा लगाव था। वो सदैव नि:छल आत्मीयता और पारदर्शी स्नेह से उससे मिलती थीं। झकझक सफेद सूती साड़ी और रुई जैसे कोमल बालों वाली नानी पूरे घर की रौनक थीं। कभी पति ने बताया था कि वो उनकी माँ की चाची हैं। नानी बाल विधवा थीं और माँ की मृत्यु के बाद चाची ने ही उनकी माँ को पाला था। इसीलिए वही उनकी नानी थीं।

आज उनकी मृत्यु का सामचार मिलते ही सभी शोकाकुल हो गए। आधी रात को ही सभी नानी के घर चले गए। वहाँ अंत्येष्टि की तैयारी में मामा का परिवार व्यस्त था। सीमा की सासु माँ ने सीमा से कहा, ''बेटी, माँ की अलमारी में देखना उन्होंने ज़रूर कोई नई साड़ी इस मौके के लिए सँभाल कर रखी होगी।''

अलमारी में नई साड़ी नहीं मिलने पर सीमा ने स्टोर में रखे नानी के पुराने सन्दूक को खोला और परत दर परत साड़ियाँ ढूँढ़ने लगी। अचानक सब से नीचे उसे एक सफेद थैली दिखाई दी। 'इसमें होगी' यह सोच कर जैसे ही उसने थैली खोली, बीच में से दुल्हन की लगन में ओढ़े जाने वाली गोटे जड़ी लाल चुनरी झाँकने लगी। खोलते ही सीमा धक् से रह गई। काँपते हाथों से चुनरी को छूते हुए वो सोच रही थी- 'सफ़ेद साड़ी में लिपटी, सफेद पर्दों वाली डोली में ससुराल आने वाली दस बरस की बच्ची, बाल विधवा नानी जाने किन परतों में यह चुनरी छिपा के लाई होगी।'

***

संपर्क:10804, SunsetHills Rd., Reston, VA-20190

ईमेल:shashipadha@gmail.com

वन्दना अवस्थी दुबे
शिक्षा- विज्ञान में स्नातक उपाधि लेने के बाद पुरातत्व विज्ञान में स्नात्कोत्तर उपाधि। रूसी भाषा में डिप्लोमा। कत्थक नृत्य और गायन में स्नातक।
पाँच वर्षों तक आकाशवाणी छतरपुर में अस्थायी उद्घोषिका के रूप में कार्य करने के बाद दैनिक देशबंधु- सतना में उप सम्पादक / फ़ीचर सम्पादक के रूप में बारह वर्षीय दीर्घ कार्यानुभव। वर्तमान में निजी विद्यालय का संचालन और स्वतंत्र पत्रकारिता, लेखन कार्य।
शौक- लिखना, पढ़ना, संगीत, और सामाजिक मुद्दों पर लगातार कलम चलाना अपने भीतर के कथाकार को ज़िंदा रखना।
प्रकाशन : पहली कहानी दस वर्ष की उम्र में प्रकाशित हुई, दैनिक जागरण झाँसी के बालजगत् में, उसके बाद तमाम पत्र / पत्रिकाओं में नियमित प्रकाशन। वर्ष 1986 में म.प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा आयोजित कहानी रचना शिविर में प्रदेश स्तर पर कहानी 'हवा उद्दंड है' प्रथम घोषित। आकाशवाणी की नियमित कथाकार। वर्ष 1990 में विंध्य क्षेत्र की पहली महिला पत्रकार का सम्मान। हाल में ही कहानी संग्रह 'बातों वाली गली' का प्रकाशन।
संपर्क: मुख्त्यार गंज, सतना
मोबाइल: 9993912823
vandana.adubey@gmail.com

और गुड्डो भाग गई....!

वन्दना अवस्थी दुबे

'हरा समन्दर, गोपीचंदर,
बोल मेरी मछली कितना पानी?'
'इतना...'

गुड्डो ने हाथ सिर के ऊपर ले जा के बताया, कि पानी तो सिर के ऊपर तक आ गया है। सारे बच्चों ने अपने घेरे को और मज़बूत बनाया। एक-दूसरे के हाथों पर पकड़ मजबूत की।

'इधर का ताला तोड़ेंगे।'
'पचास डंडे मारेंगे।'

गुड्डो ने सबसे कमज़ोर हाथों की पकड़ पर ज़ोरदार मुक्का लगाया, और घेरा टूट गया। गुड्डो ये जा-वो जा। सारे बच्चे दौड़ रहे हैं, गुड्डो पकड़ने के लिए दौड़ रही है, कभी इसके तो कभी उसके पीछे।

'हरा समंदर, गोपीचंदर...'

आवाज़ें फ़िर आने लगीं हैं, यानी गुड्डो ने किसी को छू लिया है, और बच्चों को नई मछली मिल गई है।

जानते हैं, बहुत छोटा सा कस्बा है ये। बमुश्किल पचास हज़ार लोग होंगे जनसंख्या के रूप में। इन पचास हज़ार में से पच्चीस हज़ार तो आप यहाँ की आर्मी के नाम पर माइनस कर दीजिए। माइनस नहीं समझे? अरे घटा दीजिए भाई। अब कितने बचे? पच्चीस हज़ार न? तो बस इतनी ही जनता है यहाँ। असल में होना तो इतनी भी नहीं चाहिए। अब आप कहेंगे कि क्यों नहीं होना चाहिए? तो हम बताएँगे कि इसलिए नहीं होना चाहिए, क्योंकि ये जगह आर्मी कैन्टोन्मेंट है। पहले यहाँ एक भी सिविलियन नहीं रहता था। सिविलियन तो जान गए न? अब इसकी हिन्दी पूछेंगे तो हम न बता पाएँगे, सो इसे ही हिन्दी समझिए। बात

समझ में आ जानी चाहिए बस्स। तो अंग्रेज़ों ने इसे पूरी तरह आर्मी कैंटोन्मेंट बनाया था। उनके नौ पोलिटिकल एजेंट्स में से एक यहाँ रहता था। अब पोलिटिकल एजेंट्स की हिन्दी मत पूछना, क्योंकि आपने जो अभी-अभी मुँह बाया है न, तो हम जान गए हैं कि आप क्या पूछना चाहते हैं?

तो साब! अंग्रेज़ों के जाने के बाद धीरे-धीरे यहाँ बस्ती बसने लगी। आर्मी के एरिये को छोड़, यहाँ बाकी हिस्से में जो अंग्रेज़ रहते थे न, वे अपने बंगले, अपने वफ़ादार कारिंदों को औने-पौने दाम में सामान सहित बेच गए। अब साब उन कारिंदों की आदत तो सर्वेंट क्वार्टर में रहने की थी, सो इत्ते बड़े-बड़े बंगले, वो भी साजो-सामान सहित देख के समझ ही न पाए कि इनका करें तो क्या करें? अब तक वे जिस सामान को झाड़ते पोंछते भर थे, अब उसका इस्तेमाल कैसे करें? अंत में उन्होंने ऊहापोह से छुट्टी पाई, इस कस्बे के आस-पास के बड़े आदमियों को ये बंगले बेच के, बंगले बेचने के बाद, वे ख़ुद सर्वेंट क्वार्टर में ही रहते रहे, नए मालिकों की सेवा-टहल के लिए। अब जैसी कि रीत है, नए मालिकों ने बंगले के चारों ओर फ़ैले पाँच-पाँच एकड़ के अहाते में ही किराए के लिए घर बनवाने शुरू कर दिए, प्लॉट्स बेचने लगे और देखते ही देखते एक नई आबादी वाला नया कस्बा खड़ा हो गया। लेकिन बेहिसाब चौराहों के चलते, और हर बंगले के किनारे-किनारे के प्लॉट्स बिकने के कारण बस्तियाँ बहुत व्यवस्थित बनीं। साफ़-सुथरा इलाका तो था ही। इसी कस्बे के एक मोहल्ले में ये बच्चे रहते हैं, जो हरा समंदर, गोपीचंदर खेल रहे।

ये जो सामने पीला घर है न, यहाँ रहती है रिंकी, उसके ठीक बगल वाला घर छोड़ के अगले घर में रहती है गुड्डो और गुड्डो के घर से बस दो घर छोड़ के रहता है मुक्कू। रिंकी-गुड्डो-मुक्कू, यूँ तो ये तीनों अभी छह-छह साल की उमर में हैं, लेकिन इनका याराना तब से है, जब ये बोल भी न पाते थे। इन तीनों की माँएँ, अपने गपाष्टक टाइम में तीनों बच्चों को एक साथ खिलौने दे, बिठा देतीं थीं। तो अब समझे न आप? हाँ में सिर हिलाने से क्या होगा भाई? हम ऐसे ही छोड़ देंगे क्या? अरे पूछेंगे नहीं आपसे कि क्या समझ में आया? आप बार-बार भूल जाते हैं कि हम मास्टर भी हैं। बच्चों ने यदि ये कह दिया कि आ गया समझ में, तो हमारा अगला सवाल यही होता है कि क्या आ गया समझ में? तो अभी तो हमने कहानी शुरू की है। अभी से क्या आएगा आपकी समझ में? बिना समझे सिर हिला देना अच्छी बात नहीं है। खैर...! इन तीनों बच्चों ने बोलना भी एक साथ ही शुरू किया। ऐसे में दोस्ती तो पक्की होनी ही थी। तो बस यही सब बच्चे यहाँ मैदान में अपना खेल जमाए हैं। पाँच साल से लेकर बारह साल तक के बच्चे खेल में शामिल हैं। अधिकतर बच्चों की माँएँ भी इधर-उधर बालू के ढेरों पर बैठीं गपिया रही हैं। तब टीवी-ईवी नहीं था न बस इसीलिए ये सीन क्रियेट हो पा रहा।

तो साब ! साथ बोलते, पढ़ते, खेलते रिंकी-गुड्डो-मुक्कू साथ ही बड़े भी होने लगे। बड़े सबेरे मुक्कू गुड्डो को आवाज़ लगाता, और फिर ये दोनों रिंकी के घर धमकते। पाँच-छह साल के बच्चों को तब स्कूल जाने की चिंता तो रहती नहीं थी। अंग्रेज़ी स्कूल नहीं थे तब, सो प्री-नर्सरी-नर्सरी जैसी क्लासें भी नहीं थीं। बच्चे छह साल तक दुधमुँहे ही बने रहते थे। छह साल पूरे होने पर ही स्कूल का मुँह देखते थे बच्चे। ये इसलिए बताया कि आप ये न पूछ बैठें कि - 'बड़े सबेरे कैसे धमक जाते थे बच्चे? स्कूल नहीं जाते थे क्या? तो अब समझे न कि कैसे धमक जाते थे? आगे बढ़ाएँ कहानी? चलिए तो मुक्कू-गुड्डो, रिंकी के घर के बाहर बरामदे में पहुँच के ज़ोर से टेर लगाते- रिंकी ऽऽऽऽऽऽऽ..! और रिंकी अगर मुँह से दूध का गिलास लगाए है, तब भी बताने दौड़ी चली आती कि दूध पी रहे, अभी आते हैं. चड्ढी-बनियान पहने तीनों साथी पहले बरामदे के कोने में ही खेल जमाते, सारे खिलौने जमा कर लिए जाते। यहाँ से तिकड़ी उठती तो गुड्डो के यहाँ पहुँचती और फिर मुक्कू के घर। हर घर में खाने-पीने का सिलसिला चलता, और तीनों माँएँ इन बच्चों के भूखे होने की फ़िक्र से बेफ़िक्र रहतीं। बहुत तरह के खेल बच्चे खेलते थे। इन खेलों में रेत के ढेर पर घरौंदे बनाने और घर में 'घर-घर' खेल इन तीनों बच्चों का प्रिय खेल था। खूब देर तक बालू के ढेर पर ठंडी-गीली बालू में पाँव के ऊपर रेत दाब-दाब के घरौंदा बनाते। आराम से पाँव बाहर निकालते। फिर शुरू होता इस घरौंदे को सजाने का काम। घास-पत्तों, तिनकों से घरौंदा सजता। ये तीन के घरौंदे को कोई तोड़ने की हिम्मत न करता।

रिंकी की मम्मी प्राइमरी स्कूल में टीचर थीं। सबेरे स्कूल जातीं। बड़ी दोनों दीदियाँ ग्यारह बजे स्कूल जातीं। सबेरे रिंकी का ड्रॉइंग रूम इनके 'घर-घर' का अड्डा होता। लेकिन असली मज़ा दोपहर को आता। रिंकी की मम्मी बारह बजे स्कूल से आतीं, खाना-वाना खा के एक बजे आराम करने कमरे में चली जातीं। अब इस तिकड़ी का असल खेल जमता। दो निबाड़ कसी चारपाइयों को खड़ा कर उन पर चादर डाल के घर बनाया जाता। दीदी के दुपट्टे को लपेट के गुड्डो साड़ी पहनती और मम्मी के रोल में आ जाती। मुक्कू धूप का चश्मा लगा के पापा बन जाता। रिंकी अक्सर या तो इनका बच्चा बनती या फिर सब्जी वाली, कामवाली या ऐसा ही कोई किरदार। खेल खूब जमता। सबके जागने-आने के पहले ही इनका खेल खत्म हो पाता। तो साब! 'घर-घर' खेलते-खेलते ये तिकड़ी छह बरस की हो गई और स्कूल जाने लगी। अब केवल दोपहर में खेल जमता, और उसमें टीचर का किरदार भी शामिल होता। आप समझ ही गए होंगे कि टीचर भी रिंकी ही बनती होगी। उसका परमानेंट किरदार जो कोई न था।

स्कूल में भी तीनों एक साथ बैठते, एक साथ लंच करते और घर लौट के एक साथ ही होमवर्क भी करते। सबेरे ग्वाल टोले से दूध लेने भी तीनों एक साथ ही जा रहे थे पिछले एक साल से, जबसे ज़रा बड़े हुए। स्कूल का दूसरा साल निकल गया, तीसरा साल निकल गया, चौथा साल निकल गया, पाँचवाँ साल निकल गया। तीनों का साथ बना रहा, खेल बने रहे। लेकिन छटवीं में आने के बाद सब गड़बड़ हो गया।

एक शाम जब तीनों साथी पकड़म पकड़ाई खेल रहे थे तो अचानक गुड्डो की अम्मा प्रकट हुईं। ज़रा गुस्से में दिख रहीं थीं। दाम मुक्कू पर था, लेकिन पकड़ लिया गुड्डो की अम्मा ने। ज़रा तेज़ आवाज़ में तीनों को धमकाती सी बोलीं-'पढ़ाई-अढ़ाई

कुछ न है का तुम तीनों के पास? अब बच्चे नहो रहे। बड़े हो गए हो। और जे मुक्कू? पाँच हाथ का होने आया, लड़कियों के साथ खेलता है।लड़के न मिलते का तुम्हें? चलो जाओ सब अपने-अपने घर। पढ़ो-लिखो बैठ के।' इतना कहते हुए गुड्डो का हाथ पकड़ा और लगभग घसीटते हुए घर ले गईं। मुक्कू और रिंकी कुछ समझते उसके पहले ही गुड्डो को घसीट के ले जाया गया। दोनों ने एक दूसरे की तरफ़ देखा। मुक्कू ने आँख के इशारे से पूछा-' क्या हुआ?' रिंकी, जिसे सचमुच ही कुछ नहीं मालूम था, ने 'नहीं पता' के अंदाज़ में कंधे उचका दिए।

उधर गुड्डो ख़ुद अचम्भित थी अम्मा के इस नए व्यवहार पर। घर पहुँचते ही अम्मा पर झल्लाने लगी- 'क्या है अम्मा, क्यों खेल बंद करवाया? दिन भर में बस एक घंटा ही तो खेलते हैं हम लोग। क्या सोचते होंगे रिंकी-मुक्कू? कैसा 'फ़जीता' करवाया तुमने हमारा।' मुँह फुला लिया था गुड्डो ने। अम्मा भी जैसे ताक में ही थीं. -'अच्छा! फ़जीता हो गया तुम्हारा? कै दिन से मना कर रहे लड़कों के साथ खेलने से? याद है कुछ? अब बच्ची न हो। बारहवें साल में लग गई हो। अब इस जुलाई से तुम्हारा नाम कन्या शाला में लिखवाना है। बहुत हुंदड़ा लीं लौंडों के संग। अब कायदे से लड़कियों के स्कूल में पढ़ो। जे मुक्कू के साथ खेलना बन्द करो। लड़कियों को केवल लड़कियों के साथ ही खेलना चाहिए। समझीं?' शुरू में ज़रा तेज़ी से लेकिन बाद में समझाइश वाली आवाज़ में बोलीं गुड्डो की अम्मा।

'लेकिन अम्मा, मुक्कू ही तो हमारा दोस्त है। एकदम से लड़का कैसे हो गया? पहले लड़का न था का? अब काहे नहीं खेलना है उसके साथ?' गुड्डो की इस दलील पर वहीं तखत पर पाँव फैलाए, गोद में 'माधुरी' रखे दसवीं क्लास में पढ़ने वाले बड़े भैया ने ज़ोर से घुड़का- 'ज़्यादा चबड़-चबड़ नईं. पढ़ाई करो चुपचाप।'

गुड्डो अम्मा की ये अटपटी बात समझ ही नहीं पा रही थी। और कन्या शाला! यानी अब मुक्कू के साथ पढ़ाई भी बन्द। और रिंकी? क्या उसकी मम्मी ने भी ऐसा ही कुछ कहा होगा उससे? नहीं कहा होगा। कहतीं, तो रिंकी की छत पे खेल कैसे जमता? लगता है रिंकी और मुक्कू साथ में ही पढ़ते रहेंगे। बस उसे ही अलग किया जा रहा। गुड्डो का दिमाग़ कुछ समझ ही न पा रहा था। खैर! फिलहाल इस मुद्दे को यहीं छोड़ वो अपने भैया की, छटवीं की पुरानी किताब से गणित लगाने लगी।पढ़ाई तो करनी थी कुछ न कुछ। नई किताबें जुलाई में ही आएँगीं। लेकिन उसकी अम्मा को कौन समझाए? उन्हें तो बस पढ़ते दिखना चाहिए। ख़ुद पढ़ी नहीं हैं न एक भी क्लास, सो जानती ही नहीं कुछ। अभी कहो कि नई किताबें नहीं आईं, तो तुरन्त पुरानी कोई भी किताब पकड़ा देंगीं और डाँटते हुए कहेंगी- 'जे किताब नई है का? इसी में से पढ़ो।' किताब ले के बैठ तो गई, लेकिन पढ़ने में एक रत्ती मन न लगा उसका। मन में बस यही आता रहा-'क्या सोचा होगा रिंकी-मुक्कू ने?'

सबेरे छह बजे मुक्कू ने आवाज़ लगाई- 'गुड्डोऽऽऽऽऽऽऽ.. निकल जल्दी। छह बज गए।' थोड़ी देर में गुड्डो निकली, हाथ में दूध का डिब्बा लटकाए। तीनों चल पड़े। अभी छुट्टियाँ चल रही थीं तो तीनों के गपियाने का ये सबसे अच्छा समय होता था। एक-डेढ़ किलोमीटर का रास्ता कब निकल जाता, पता ही न लगता। तीनों मिलते ही चहकने लगते। लेकिन आज गुड्डो चुप थी। चल रही थी साथ में लेकिन सिर झुकाए, मुँह बन्द किए।

'क्या हुआ गुड्डो? नाराज़ है क्या? कल वाली बात भूली नहीं क्या? अरे जाने दे यार। अम्मा लोग होती ही ऐसी हैं। गुस्सा उन्हें किसी और बात पर आ रहा होगा, उतारा तुम पर। अभी देखना, आज फिर खेल जमेगा, तब कुछ न बोलेंगीं अम्मा।' मुक्कू ने बड़े बड़ों की तरह ज्ञान बघारा।

'हाँ गुड्डो, काहे मुँह लटकाए है? यार तुम्हारा ऐसा मुँह देख के मज़ा नहीं आ रहा। अम्मा की बात पर क्या गुस्सा होना? हम लोगों ने क्या बिगाड़ा यार? हम लोगों से तो बात करो।' अब रिंकी ने भी मुँह खोला।

अब तक सिर झुकाए चल रही गुड्डो को एकदम से रोना आ गया।

'अरे यार बात केवल अम्मा के गुस्सा होने तक की होती तो ठीक था। कल तो अम्मा बोलीं कि लड़कों के साथ जितना खेलना था, खेल चुकीं, अब लड़कियों के साथ खेला करो। कल से हम दूध लेने भी नहीं जाएँगे तुम्हारे साथ। हमारा नाम भी कन्या शाला में लिखवाएँगी जुलाई से। अब हम कैसे साथ में खेलेंगे रे मुक्कू-रिंकी...' गुड्डो अब बुक्का फाड़ के रो पड़ी थी। दोस्तों से अलग होने की टीस उसे स्थिर नहीं होने दे रही थी। बड़ा दुख इस बात का भी था कि अम्मा बिना किसी कारण ऐसा क्यों कर रहीं?

रिंकी-मुक्कू ने गुड्डो की अम्मा का फ़रमान सुना, तो वहीं ठिठके रह गए।

'साथ नहीं खेलेंगे मतलब? मैंने तुम्हें कभी मारा क्या? कभी तुम्हारी टॉफ़ी चुराई? तुम्हारी कोई शिक़ायत लगाई? होमवर्क की कॉपी नहीं दी? बताओ तुम्हीं। ऐसा कुछ किया कभी? फिर अम्मा मुझसे क्यों नाराज़ हो गईं ? मेरे ही साथ खेलने में क्या परेशानी है?' मुक्कू अपनी ग़लती समझ न पा रहा था। रिंकी अवाक थी।

'अम्मा कहती हैं कि लड़कियों को लड़कों के साथ नहीं खेलना चाहिए।' गुड्डो अभी तक हिचकी ले रही थी।

'लड़कों माने? रिंकी की मम्मी ने तो रिंकी को मना नहीं किया। क्यों रिंकी, तुम्हें मना किया क्या मम्मी ने? रिंकी लड़की नहीं है क्या?' मुक्कू का दिमाग़ चकराया हुआ था।

'मुक्कू मेरी मम्मी ने तो कुछ नहीं कहा। खेलने को मना भी नहीं किया।' रिंकी को गुड्डो के सामने ऐसा कहने में भी अपराधबोध सा लग रहा था। बेचारी गुड्डो..!

ग्यारह साल पुरानी ये तिकड़ी अब टूट जाएगी क्या? कहानी में अचानक ये कैसा मोड़ आ गया? हमने तो ऐसा मोड़ लाना ही नहीं चाहा था। अब? अब क्या? देखते हैं क्या होता है। वैसे गुड्डो की अम्मा को अचानक हुआ क्या? एक दिन में ही लड़की बड़ी दिखने लगी क्या? और दिखने भी लगी तो क्या बचपन के साथियों को छुड़वा देंगीं? हमारी समझ में तो ये बात बिल्कुल न आई साब ! हमें तो लगता है कि गुड्डो की अम्मा किसी और की अकल पर काम कर रहीं। बिना पढ़ी-लिखी महिला हैं, सो दूसरे जैसा पढ़ा देते हैं, पढ़ जाती हैं। अपनी अकल लगाती ही नहीं हैं। वैसे भी उन्हें

पड़ोसिनों की अकल और किसी भी बात के खिलाफ़ पट से लटका देने वाली उनकी ज़बान पर ज़्यादा भरोसा था, ख़ुद से भी ज़्यादा। अपने बच्चों से भी ज़्यादा। तो हमें तो लगता है किसी पड़ोसन ने ही आग लगाई है। किसी पड़ोसन ने ही लड़की का बड़ा होना बताया है और लड़कों के साथ खेलना ग़लत है, ये भी किसी पड़ोसन ने ही बताया है। वैसे गुड्डो का भाई भी कम नहीं है। मुक्कू का बड़ा भाई और गुड्डो का भाई एक ही क्लास में हैं। मुक्कू का भाई जानता है कि कब गुड्डो का भाई पिटा, कब कितने नम्बर आए, या कब स्कूल से बहाना बना के ग़ायब हो गया। शायद इसीलिए गुड्डो का भाई चाहता होगा, इन दोनों की दोस्ती टूट जाए, और गुड्डो का वो स्कूल भी छूट जाए। लेकिन अपने फ़ायदे के लिए किसी की दोस्ती तुड़वाना!! बहुत ग़लत बात है भाई ये तो!

अंत में वही हुआ, जो गुड्डो की अम्मा चाहती थीं। गुड्डो रिंकी के घर तो जाती, लेकिन मुक्कू के घर के आगे से आँख बचाते हुए निकलती। कई बार उसे निकलता देख मुक्कू दौड़ के आवाज़ लगाते हुए बाहर भी आया, लेकिन ऐसे में गुड्डो दौड़ के वापस अपने घर चली जाती। आख़िर घर था ही कितनी दूर? अगल-बगल ही तो था। मुक्कू की मम्मी ने भी गुड्डो की अम्मा को समझाया। उनके सामने तो वे - 'अरे नहीं बहन जी। बच्चे हैं खूब खेलें न साथ में।' कह देतीं, लेकिन घर पर गुड्डो को सख़्त ताकीद करतीं, कि खबरदार जो मुक्कू के साथ खेलने गई। लड़कों के साथ भले घर की लड़कियाँ नहीं खेलतीं।' गुड्डो सोचती, रिंकी भी तो भले घर की है। उसकी मम्मी क्यों उसे मना नहीं करतीं? एक बात और हुई। रोक केवल लड़कों के साथ खेलने भर की नहीं लगी, बल्कि कहीं भी अकेले जाने पर भी लग गई। कहीं जाना हो, भाई के साथ जाना। भाई को कहीं ले जाने की फुरसत ही नहीं मिलती थी।

जुलाई से गुड्डो कन्या शाला जाने लगी। सलवार-कुर्ता पहने, तहाया हुआ दुपट्टा कंधों पर पिन-अप किए। सलवार कुरता देख के तो एकबारगी रिंकी का भी मन हो आया कन्या शाला जाने का। क्या दीदियों की तरह सूट पहने है गुड्डो!! लेकिन फिर जल्दी ही मुक्कू का साथ छूट जाने की आशंका ने कन्या शाला जाने के उन्मादी ख़याल पर रोक लगा दी।

ज़िन्दगी चलती रही। गुड्डो कन्या शाला जाती रही। रिंकी-मुक्कू उत्कृष्ट विद्यालय जाते रहे। चार साल बीत गए थे। बारह साल के बच्चे अब सोलह साल के हो रहे थे। दसवीं में आ गए थे। अब तीनों को ही लगने लगा था कि वे सचमुच बड़े हो गए हैं। बड़े होने के साथ-साथ ये समझ भी आ रही थी कि रिंकी-गुड्डो लड़कियाँ हैं, और मुक्कू लड़का। लेकिन इस समझ के चलते रिंकी-मुक्कू की दोस्ती पर कोई असर नहीं पड़ा था। दोनों खुल के मिलते, साथ में पढ़ते और सुबह दूध लेने भी जाते। जैसे बचपन में रिंकी ठहाका लगाते हुए मुक्कू की पीठ ठोक देती थी, वैसे ही अभी भी करती है। उसकी मम्मी ने कभी नहीं कहा कि मुक्कू लड़का है और वो लड़के से दूर रहे। नतीजा ये हुआ कि लड़के रिंकी के लिए कौतुक का विषय नहीं रहे। किसी भी लड़के को देख कर रिंकी शरमाई नज़रों से सिर नहीं झुकाती थी। न ही कनखियों से देखती थी। ऐन आँख मिला के देखना और धड़ल्ले से बात करना उसकी आदत में था। लड़के भी रिंकी से उल्टी-सीधी बात नहीं करते थे। एकदम दोस्ताना था उसका लड़कों से। वहीं दूसरी लड़कियाँ, जिनकी अम्माओं ने गुड्डो की अम्मा की तरह उन पर पाबंदियाँ लगाई थीं, वे क्लास में पूरे समय कनखियों से लड़कों को देखतीं, और लड़के से नज़र मिलते ही, शर्म के मारे लाल हो जातीं। निगाहें दूसरी ओर फेर लेतीं। इंटरवल में भी इन लड़कियों के पास केवल लड़कों की बातें होतीं। रिंकी उकता जाती। उधर गुड्डो का हाल भी इन्हीं शर्मीली लड़कियों जैसा हो गया था। जबसे मुक्कू का साथ छुड़वाया गया, लड़के उसे अजूबा लगने लगे, अप्राप्य भी। गुड्डो की अम्मा का पाबंदियों का शिकंजा गुड्डो पर कसता ही जा रहा था। पिछले एक साल से तो गुड्डो अब घर में भी सलवार-कुरता ही पहनने लगी थी। मुक्कू को देख के ऐसे मुँह फेरती, जैसे कभी जानती ही नहीं थी। हाँ, अम्मा के आस-पास होने का अंदेशा न होता तो मुक्कू को देख एक विवश सी मुस्कुराहट फेंक देती। रिंकी-मुक्कू अक्सर गुड्डो की बातें करते, और एक साथ उदास हो लेते। दसवीं के बाद दोनों ने पॉलीटेक्नीक का टेस्ट देने की सोची थी, सो उसी की तैयारी में जुटे थे। चाहती तो गुड्डो भी थी ये टेस्ट देना, लेकिन उसकी अम्मा ने तय कर दिया था, कि दसवीं के बाद उसे होमसाइंस ही लेना है। एक-एक कर पर नोचे जा रहे थे गुड्डो के। जबकि उसकी अम्मा सोचतीं, कि वे लड़की को सही रास्ते पर ले जा रहीं। बाहरी दुनिया से बचाए हैं, और एक बेहद सुशील लड़की जैसी कि शादी-ब्याह के लिए चाहिए, तैयार कर रहीं।

उस सुबह जब रिंकी जागी, तो बाहर से आती तेज़-तेज़ आवाज़ों ने उसे हैरत में डाल दिया। आँख मलती बाहर निकली तो देखती क्या है, गुड्डो के घर के आगे मजमा लगा है। इधर-उधर भी लोग चार-चार, पाँच-पाँच के झुण्ड में खड़े हैं। इतनी सुबह क्या हुआ? अभी तो छह भी नहीं बजे! गुड्डो के यहाँ कोई बीमार हो गया क्या? तभी मम्मी सामने से आती दिखाई दीं। रिंकी के कुछ पूछने से पहले ही बताने लगीं-'और रक्खें लड़की को सात तालों में बंद करके। बनवाएँ केवल रोटी। किसी लायक़ न रहने दें। ये तो होना ही था। अब लड़की को क्या दोष देना? लड़की तो इतनी प्यारी है। पढ़ने में भी कितनी अच्छी थी गुड्डो। लेकिन नहीं। कन्या शाला भेजना है। लड़कों से दूर रखना है। लो अब रक्खो लड़कों से दूर। मैं तो कहती हूँ पूरी ग़लती गुड्डो की अम्मा की है। न लड़की पर इतनी पाबंदी लगातीं, न गुड्डो ऐसा कोई कदम उठाती।' रिंकी का दिल दहल गया। क्या हुआ गुड्डो को? कुछ कर तो नहीं लिया पगलिया ने? कई दिनों से परेशान भी दिख रही थी। लेकिन अब स्कूल का टाइम अलग-अलग होने से दिन भर रिंकी की मुलाक़ात गुड्डो से नहीं होती थी। बल्कि कई-कई दिन निकल जाते थे, मुलाक़ात हुए।

'मम्मी, किया क्या गुड्डो ने? उसे कुछ हुआ क्या?' ऐसा पूछते हुए रिंकी की ज़बान लड़खड़ा गई।

'गुड्डो घर छोड़ के भाग गई है। चिट्ठी छोड़ गई है, कि अब वो इस जेल जैसे घर में नहीं रह सकती।'

'अरेऽऽऽऽऽऽऽ !!!' रिंकी अवाक! अब तक मुक्कू भी आ गया था। दोनों अपना

सिर पकड़ के बैठ गए थे।

भीतर से गुड्डो की अम्मा की धाड़ें मार के रोते हुए विलाप करने की आवाज़ें आ रहीं थी–' अरे मोरी गुड्डोऽऽऽऽऽऽऽ.. तुम काय चली गईं .. देखो सब जनें हमें दोस दै रय.. हमने जेल में बंद करो तो का तुमै... काय लिख गईं ऐसौ. हमें का पता था कि तुम मनई मन में इत्तौ घुल रहीं.. आ जाओ मोरी लाड़ली.अब कछु न कैहैं हम.. ओ मुक्कू.. तुमई ढूँढो ई मौड़ी हाँ.. तुमाई तो बचपने की दोस्ती है, तुम पता करो उसका.. !! दहाड़ें मारते हुए भी उन्हें संतोष था कि लड़की किसी लड़के के साथ नहीं भागी। लेकिन याद अब उन्हें मुक्कू की ही आ रही थी। जानती थीं, गुड्डो यदि किसी की बात मानेगी तो वो मुक्कू और रिंकी ही हैं।

'चिंता नईं करो चाची। हम हैं न। हम खोजेंगे गुड्डो को। चुटिया पकड़ के घर ले आएँगे, तुम देखना। अरे बैठी होगी उधर बब्बा जू के मन्दिर के चबूतरे पे। कहाँ जाएगी आख़िर? अकेले जाने का शऊर तो है नहीं उसे, बात करती है.!'

रिंकी और मुक्कू गुड्डो की अम्मा को दिलासा दे रहे थे पूरे भरोसे के साथ।

गुड्डो को खोजने रिंकी-मुक्कू निकल पड़े थे अपने पुराने अड्डों पर। उन जगहों पर जहाँ उनका खेल जमता था, या जहाँ वे परीक्षा के दिनों में अपना-अपना सबक याद करते थे। शहर से चार किलोमीटर दूर है बब्बा जू का मन्दिर। बब्बा जू यानी हनुमान जी। यहाँ बड़ा सा चबूतरा है, जिसके दाईं ओर हनुमान जी की मढ़ैयाँ है और बाईं ओर शिवलिंग हैं नंदी बाबा के साथ। दोनों छोटी-छोटी सी मढ़ैयाँ हैं। बगल में ही खूब बूढ़ा बरगद है जिसकी विशाल शाखाएँ मंदिर के चबूतरे पर पर्याप्त छाया बनाए रखतीं हैं। ऐसा लगता है जैसे ये चबूतरा पेड़ के नीचे बनाया गया जबकि ऐसा है नहीं। दूर खड़ा ये पेड़ ही धीरे-धीरे चबूतरे के पास आ गया। इस मन्दिर में सुबह से लेकर शाम तक आवाजाही बनी रहती है। मंदिर के बगल में ही जैसियाराम पंडित जी, जो इस मन्दिर के पुजारी हैं की कुटिया भी बनी है। पुजारी बब्बा इन तीनों को अच्छी तरह जानते हैं, उनके खानदान सहित। आख़िर पुजारी बब्बा भी तो इस बरगद जितने ही बूढ़े जो थे। बब्बा जू का ये चबूतरा इन तीनों की प्रिय अध्ययन स्थली, खेल का स्थान, और लड़ाई का मैदान था। पढ़ते समय तीनों बच्चे अपना-अपना कोना चुनते और फिर एक कोने से दूसरे कोने तक घूम-घूम के पढ़ते। मुक्कू-रिंकी जानते थे गुड्डो के भागने की सीमा। सो वे सीधे बब्बा जू के मंदिर पर पहुँचे। पुजारी बब्बा नहा रहे थे हैंड पम्प पर।

'जैसियाराम बब्बा जू।' मुक्कू ने ज़ोर से टेर लगाते हुए हाथ हवा में ऊपर उठा के जोड़े।

बब्बा जू नहाते समय महामृत्युंजय का जाप करते हैं सो बोलते नहीं। उन्होंने भी दोनों हाथ उठा के आशीर्वाद की मुद्रा बनाई। ऊं त्रयम्बकं यजामहे सुगंधिम पुष्टिवर्धनम, उर्वारुकमिव बंधनान, मृत्यर्मुक्षिमाम्रताम..

पुजारी बब्बा का स्वर और ऊँचा हो गया।

'बब्बा जू गुड्डो आई है का?'

मंत्र पढ़ते हुए ही बब्बा जू ने मढ़ैया की ओर इशारा कर दिया। यानी ये गुड्डो की बच्ची यहाँ छुपी बैठी है। दोनों लपके मढ़ैया की तरफ।

उधर गुड्डो बड़े जोश में चिट्ठी लिख के घर से तो निकल आई लेकिन चौराहे से आगे आते ही समझ न पाई कि जाएँ तो जाएँ कहाँ? मुट्ठी में केवल दस रुपये हैं जो कल अम्मा ने टेस्ट की कॉपियाँ खरीदने को दिए थे। लाल चौराहे से उसे कई बसें निकलती दिखाई दीं, लेकिन उसकी हिम्मत ही न हुई किसी बस में चढ़ने की। एक तो पाँच बजे सुबह का धुँधलका, ऊपर से उसे बहुत देर से वहाँ खड़ा देख, सामने वाली पान की गुमटी पर खड़े दो शोहदों टाइप लड़के उससे ज़रा दूरी बना के खड़े हो गए। गुड्डो जानती थी कि ये दोनों लगातार उसे देख रहे हैं। गुड्डो के बदन में झुरझुरी दौड़ गई। उसे अम्मा की नसीहत याद आई- 'गुड्डो, बेटा कभी भी देर-सबेर अकेले न आना-जाना। साथ में कोई न कोई ज़रूर हो। ज़माना बहुत खराब है। तुम अभी बहुत छोटी हो सो और तो कुछ न समझोगी, पर इतना समझ लो कि अभी तुम्हारी उमर खराब निगाहों को झेल पाने वाली न है। सो कहीं भी आना-जाना बहुत संभल के। और कोई ऐसा मूड़े आ ही जाए, तो फिर घबराना नहीं। मुकाबला करने का हौसला रखना।' गुड्डो को लगा शायद उसकी अम्मा ठीक ही कहती थीं। आज इन शोहदों की निगाहें उसे बहुत अजीब लग रही थीं। गुड्डो ने आव देखा न ताव, चौराहे पर तुरन्त रुकी एक बस में चढ़ गई। बस स्टार्ट ही थी सो उसके चढ़ते ही चल दी। लड़के चौराहे पर ही छूट गए।

'कहाँ जाना है?' कंडक्टर की आवाज़ से गुड्डो चौंकी। अनायास ही उसके मुँह से निकला–

'कहीं नहीं भैया जी, बस आगे बब्बा जू के मंदिर वाले चौराहे पर उतार दीजिएगा। कंडक्टर आगे बढ़ गया। पाँच मिनट बाद ही बस उसे उसके चिरपरिचित मंदिर के पास उतार के आगे बढ़ गई। चबूतरे पर बैठे बब्बा जू को देख के उसकी जान में जान आई।

'काय गुड्डो.. आज अकेली आई बिटिया? तुमाय साथी कितै हैं?' दातुन करते हुए ही बब्बा जू ने कई सवाल दागे।

'आने वाले हैं वे भी बब्बा जू। हम जल्दी आ गए।' कहते हुए गुड्डो शिवजी की मढ़ैया के अन्दर जा के बैठ गई, रोज़ की तरह। समझ ही नहीं पा रही थी कि अब घर कैसे जाए ? घर में तो मम्मी उठ गईं होंगी अब तक। और पापा भी। और भैया!! गनीमत है, उसकी पढ़ाई अब दूसरे शहर में हो रही। गुड्डो मना रही थी कि मम्मी आ जाएँ उसे ढूँढ़ते हुए। मुक्कू-रिंकी तो आ ही सकते हैं। उन्हें भी तो उसके भागने की खबर मिल गई होगी। घुटनों में सिर दिए गुड्डो अचानक फूट-फूट के रोने लगी। पता नहीं कितनी देर रोती रही..!

'ये देखो रिंकी.. ये यहाँ बैठी है। हम न कहते थे? उधर पूरा मोहल्ला परेशान है, और महारानी जी इधर मौज मना रहीं। चल उठ। बहुत हुई नौटंकी। किसने सिखाया था तुम्हें ये भागने का प्लान?'

सामने रिंकी-मुक्कू को पा के गुड्डो को लगा जैसे अब और कुछ नहीं चाहिए उसे।

एक घंटे बाद ही सड़क पर टिकटिकी बाँधे गुड्डो की अम्मा को तीन छायाएँ आती दिखाई दीं। गुड्डो की अम्मा ने राहत की साँस ली, और अन्दर चली आईं, आख़िर अब उन्हें दोबारा गुस्सा जो होना था गुड्डो की हरक़त पर।

***

पेशावर वाली माँ

पारुल सिंह

पेशावर वाली माँ तीन साल होने को आए। अब चली जाओ तुम मुझे आज़ाद कर दो अपनी क़ैद से, तुम जीती जागती भला कैसे रूह बन कर मुझ पर साया हो सकती हो? तुम भूत नहीं हो।

वो तो तुम्हारे बच्चे .....नहीं नहीं वो नाज़ुक नाज़ुक से बच्चे भूत नहीं बन गए, वो तो फ़रिश्ते हैं।

फ़रिश्ते हैं या थे ? फ़रिश्ते होते हैं या मरने के बाद बन जाते हैं ? फ़रिश्ते होते हैं तो मर क्यूँ जाते हैं ?

नहीं वो मार दिए जाते हैं, शैतान मार देते हैं ?

जो भी हो तुम चली जाओ मुझसे और नहीं सहा जाता तुम्हारा साथ। आजकल ठण्ड भी कितनी हैं तुम्हारे हाँ भी होगी ?

पापा का हर तीसरे दिन फ़ोन आ जाता है। बहुत ठण्ड है आज, बच्चों को अच्छे से कपड़े पहना कर रखना। पेशावर वाली माँ तुम्हारे बच्चों को भी ठण्ड लगती होगी ना। उफ़ इतनी सर्द रातों में तुम ख़ुद से कोसों दूर सीली मिट्टी के अंदर कैसे छोड़ सकती हो उन्हें ? अरे कैसी माँ हो तुम? हाथ और छोटी-छोटी उँगलियाँ भी अकड़ गईं होगी ठण्ड में उन नाज़ुकबदन बालको की। अरे रहम करो उन बच्चों पर! निकाल लाओ उन्हें। क्या टीस नहीं उठती सीने में? देखा ही नहीं तुमने जिगर के टुकड़ों को इतने दिनों से। क्या छाती में कुछ कुलबुलाता नहीं जब स्कूल से वापस आते ही गले से लग कर तुम में फिर से पनाह पाने की कोशिश याद आती है थके हारे बच्चों की ?

अरे ज़ालिम माँ, जा ले आ अपने बच्चे को, बैठा दे उसे गरम कम्बल में लपेट कर और खजूर बादाम का गरम-गरम दूध अपने हाथों से पिला।

जा चली जा। एक तो तेरे मुझ में होने का बोझ, दूसरा तू हर वक़्त जो ये सवाल करती हैं, मैं इनके जवाब कहाँ से दूँ ? जब से तू आई है मैंने दौड़-दौड़ कर बात बे बात अपनी बेटियो को गले लगाया है और जितनी बार उन्हें गले लगाती हूँ, तू बाँहें फैला लेती है, क्यूँ पूछती है मुझ से ?

मैं कैसे बताऊँ, क्या बताऊँ कि तू किसे बाँहों में भरेगी अब, तू किस के बालों, चेहरे को बोसों से ढक देगी, मुझे क्या मालूम तू अब किस को छाती से चिपका कर सोएगी ?

अपने ब्लॉग के साथ ही पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ व समीक्षात्मक आलेख प्रकाशित। कविता संग्रह 'चाहने की आदत है' प्रकाशित।
त्रैमासिक पत्रिका शिवना साहित्यिकी की सह सम्पादक।
संपर्क: डब्ल्यू-903, अमरपाली ज़ोडिएक, सेक्टर 120, नोएडा, उप्र 201301
मोबाइल : 9871761845
psingh0888@gmail.com

किस की एक छोटी सी पुकार पर तू 'आई बेटा' कह कर रसोई से दौड़ी जाएगी।

किस की पेंटिंग्स, प्रोजेक्ट्स देख कर तू ''अरे वाह! शाबाश'' बोलेगी।

और सुनो ये जो तुम पागलों की तरह अपलक देखती हो न, जब मैं नन्ही सी बेटी को उस पर अनायास उमड़ आए प्यार पर बाँहों में छुपा कर 'मेरा नोना बाबू' कहती हूँ, ये मुझे बहुत डराता है मेरी पकड़ ढीली हो जाती है बिटिया पर। तुम से डर कर मैं चुपचाप रसोई में जाकर बिना काम के काम निकाल लेती हूँ।

ख़बरदार जो ये सोचा कि तुम सी होकर दिखाती हूँ तुम्हें। नहीं नहीं मैं तुम सी नहीं

मेरे बच्चे, मेरे ज़िगर के टुकड़े साथ हैं मेरे। कोई बुरी निगाह उनका कुछ बिगड़ना क्या ऐसा सोच भी नहीं सकती।

मैं हूँ ना ..उनकी माँ .....जब मैं हूँ, जब माँ हैं तो, तो किसी बच्चे का कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता .....ये बात सब जानते हैं मैं भी, तुम भी, दुनिया भी।

फिर उस दिन तुमने अपने बच्चों को जाकर बचाया क्यूँ नहीं पेशावर वाली माँ ?

माँ के होते किसी को कुछ नहीं हो सकता इस विश्वास के सबसे बड़े विश्वास करने वाले बच्चे ही तो होते हैं।

ओ निर्मोही ज़रा सोच तो उस आख़िरी वक़्त तक भी उन नन्ही जानों को भरोसा होगा के उनकी माँ बचा लेगी उन्हें ?

ज़रा सोच तो बारूद का दर्द ज़्यादा हुआ होगा, मरने का, या उस आख़िरी घड़ी पर भी जब तू बचाने नहीं पहुँची तो उनके टूटे विश्वास से टूटे दिल का ?

पता नहीं गोलियों के सितम से या तेरे न आने के सदमे में आँखें खुली की खुली रह गईं बेचारों की।

वो आख़िरी घड़ियाँ, क्या क़यामत झेल चल निकले वो बहादुर सूरमा बच्चे ?

देख अब तू और न सता, इम्तिहान आने वाले हैं बच्चों के, अब मुझे फ़ुरसत नहीं, तू भी जा अरे अपने बच्चे का ख़याल कर। क्या कॉफ़ी नहीं देनी देर रात तक जागकर पढ़ते बच्चे को?

सुबह उनका फरमाईशी लंच बॉक्स भी बनाना होगा?

और क्या अरे आजकल बच्चों की खाने की आदतें कितनी अजीब हो गई है न। मेरी बेटी को तो हर रोज़ कुछ नया और टेस्टी चाहिए। अब हम माँओं की जो हालत होती है रोज़ नई-नई रेसिपी खोजने में।

क्या तेरे बच्चे को भी पास्ता और ब्रेड पिज़्ज़ा पसंद है ? मेरी बेटी को तो है।

बहुत उदासी होती है माहौल में जब धूप में मेरे पास आ बैठती है तू, और बताने लगती है किस्से अपने लाडले के, सुन वो उस दिन क्या बता रही थी तुम कि तुम्हारा बेटा कल्पना चावला को अपना आइडल मानता है। वो भी नासा जाना चाहता है एस्ट्रोनॉट बनना चाहता है। सही है बच्चे अपना ऐम आजकल बहुत अच्छी तरह जानते है, उनके फण्डे बड़े साफ होते है ज़िन्दगी के बारे में, तू सोच वरना हमें कहाँ पता था क्या बनना है इतनी उम्र के थे जब हम। बन जाएगा, बन जाएगा, पर.....

जानती हूँ अब कुछ नहीं होगा, हर आने वाले को जाना है पर इत्ती सी उम्र में और इस तरह जाना? ना ना पेशावर वाली माँ ऐसी मौत तो दुश्मन को भी ना आए। दुश्मन ही तो हो तुम, हमारे पर यकीन कर ऐसी दुआ नहीं की थी कभी तेरे लिए। मेरे भगवान्, तेरे अल्लाह की कसम। और दुश्मन है तू तो पगली मेरे पास रोज़ क्यूँ आ बैठती है, क्यूँ तेरे दुख के आँसू मेरी पलकों पर आ कर जम जाते हैं। माँ हिन्दू, मुसलमान नहीं होती, माँ का मज़हब से क्या वास्ता, वो बस अपने बच्चों की माँ होती है। कौन सा भगवान् कहता है कि माँ को उसकी औलाद से ही जुदा कर दो, और अगर भगवान् एक ही है तो फिर काहें का झगड़ा ?

हमारे यहाँ भी खूब हुआ री ऐसा। हमारे यहाँ क्या पूरी दुनिया में हुआ। जर्मनी, जापान,रूस में हुआ। कुछ मिला था क्या मारने वालों को? फिर भी कुछ नहीं सीखा। इन्सान जानवर से भी बदतर है.....

जलियाँवाला बाग में क्या हुआ था ? तुझे याद तो होगा। ओफ़्फ़ .....

अब क्या करेगी तू, जिसकी जितनी लिखी है उतनी ही जीता है। हाँ, ये तो तू सच कहती है ऐसे कोई नहीं जाता। हमारे यहाँ हर चोट का मरहम है, हमारे यहाँ अभिमन्यु भी ऐसे ही चला गया था, पर उसका इलाज हमने कर लिया। हमें दिल को बहलावे देने खूब आते हैं। ये कह कर कि वो किसी राक्षस की आत्मा थी, हमने दिल फुसला लिया, अभिमन्यु की माँ सुभद्रा जब गर्भवती थी, तब उसने गलती से वो बोतल खोल ली थी, जिसमें उसके भाई श्री कृष्ण ने उस आत्मा को कैद कर रखा था। और वो आत्मा गर्भस्थ शिशु अभिमन्यु के शरीर मे प्रवेश कर गई थी।

पर तुम ख़ुद को क्या समझाओगी पेशावर वाली माँ? हम अगले जन्म की आस लगा लेते हैं तुम तो वो भी नहीं मानती। तुम ख़ुद को कैसे सँभालोगी? जिओगी ही कैसे अब? जब दिल की नस-नस तड़फेगी वो दरिंदगी याद कर के जो तेरे बच्चों पर कहर बरपा हुई तो तू ख़ुद को कैसे माफ कर पाएगी कि तू कहाँ थी उस घड़ी, कि तू कुछ भी ना कर पाई अपने नन्हें से चाँद के लिए, कि तू ज़िन्दा ही क्यूँ है? तू ज़िन्दा ही रह कर क्या करेगी पेशावर वाली माँ? इन्सानियत का तकाज़ा है, इन्सान-इन्सान के काम आए। मैं कुछ कर सकती तो ज़रूर करती तेरे नौनिहाल के लिए, जान लड़ा देती उसे बचाने के लिए। तू तो चली आई पर मैं तो कभी तुझे बताने आ भी नहीं सकती कि मैं तेरे ग़म में अपने पति से छुप-छुप कर रोज़ रात को रोती हूँ, कि जब तू सूजी हुई दर्द से बेहाल आँखें कुदरत के कानून के आगे और खोले नहीं रह पाती और सो जाती है या बेहोश हो जाती है, तो मैं तुझे कम्बल उढ़ा आती हूँ, तेरे माथे पर हाथ फिरा देती हूँ, पर ये दुनिया माँ को नहीं समझती और माँ को दुनियादारी समझ नहीं आती। तेरे ग़म मे शरीक हूँ पर तुझे बता भी नहीं सकती।

जब भी हिचकी आए समझना मैंने याद किया, जब भी कभी बादे सबा जानी पहचानी सी लगे, सोचना मैंने दुआ की तेरे लिए, पर अब तू चली जा पेशावर वाली माँ मुझे अपने बच्चे पालने है, और तू तो जानती है माँ अपने बच्चों के लिए बहुत ख़ुदगर्ज़ होती है, वो बस अपने बच्चों के लिए सोचती है पहले। मैं तेरे साथ हूँ पर तू दुश्मन देश की माँ ठहरी, तेरे लिए क्यूँ रोऊँ ? पर है तो माँ ही री, आ गले लग जा, आख़िरी बार।

कभी छुप कर फिर मिलेंगे। अब जा चली जा पेशावर वाली माँ।

शामिल हूँ तेरे ग़म में बहुत शर्मसार भी
लाचार हूँ खड़ा हूँ तमाशाईयों के साथ।

***

भाषांतर

राक्षस गीत

मूल तेलुगु कहानी - अनिल एस. रॉयल
अनुवाद : आर.शांता सुंदरी

ऐसा शोर कि कान के परदे फट जाए। साथ ही क्षण भर के लिए ऐसा सन्नाटा जैसे समय चकित रह गया हो। अगले पल ही आसमान छूते रुदन घना धुँआ, इधर-उधर आग की लपटें, सब जगह घायल शरीर और चीज़ें बिखरी पड़ी हैं। घायल शरीरों से खून की बूँदे ऊपर उठ रहीं हैं। देखते ही देखते उन बूँदों की संख्या एक, दो, दस, सौ तक बढ़कर ज़मीन से आसमन की ओर गाढ़ा लहू बरसने लगा। आसमान को चीरती काली बिजली की रेखा चमक उठी। पास ही गाज गिरी। दिशाओं को कंपाती उस ध्वनि से मैं चौंककर जाग गया, ऐसा एक सपना जो मैं रोज़ देखता हूँ, फिर भी उसकी आदत नहीं पड़ी। बार-बार वही दृश्य ऐसा मारण कांड जिसमें मानवता का कोई नामो निशान नहीं रहा। रक्त से लिखा राक्षस गीत।

उस विस्फोट ने मेरे अस्तित्व का कारण बताया था। चुपचाप छत की तरफ देखता लेटा रहा-इसी उधेड़बुन में कि वह सपना था या सच। जागने का मतलब, वास्तव में पहुँचने के लिए अंगडाई लेना है या दूसरे सपने में आँख खोलना है? अगर यह सपना है तो फिर सच क्या है?

किसी मेधावी ने कहा है,''तुम जिसे मानते हो वही तुम्हारे लिए सच है।''शायद यही सच है। सच भी सापेक्ष होता है ! इसीलिए तो संसार भर में अराजकता फैली है। जो जिसे सच मानता उसी पर विश्वास करता और सामनेवाले के सिर मढ़ देता। सबसे पहले उससे जन्म लेता है हठवाद फिर वह बन जाता है अतिवाद,वह भी आगे बढ़ जाए तो उन्माद और अंत में आतंकवाद बन जाता है। विचारों को परे धकेलते हुए मैं धीरे से उठा।

अगला दिन शुरू हुआ।

****

'बस एक बार मौका मिल जाए . .. उसे मौत के घाट उतारकर उस औरत को अपना बना लूँगा,' उसने मन ही मन सोचा।

उसकी उम्र बीस से कम थी। वह इंजीनियरिंग छात्र जैसा दिखता था। फटे जीन्स, बिखरे बाल, एक हाथ में सिगरेट और दूसरे में काफी का मग, पीठ पर बैक पैक।

बेपरवाही का जीतता जागता नमूना था। यमाहा पर शान से बैठकर काले चशमे पहनकर उसी ओर अपलक देख रहा था।

मैं ने भी उस ओर नज़र घुमाई। चार टेबल छोड़कर एक युवा जोड़ी बैठी थी। देखने में पति पत्नी लग रहे थे। आमने-सामने बैठे एक ही प्याले से बारी-बारी काफी पी रहे थे। वह युवती खूबसूरती का उदाहरण थी और वह युवक मर्दानगी का।

मैंने फिर बिखरे बालों की ओर देखा। वह होठ चबाता सोच रहा था कि उस युवक को कैसे ख़त्म किया जाए और बाद में उस युवती के साथ क्या-क्या किया जाए!

वह उससे छः सात साल बड़ी होगी पर उस बात से उसकी सोच में कोई खलल नहीं पड़नेवाला। इस तरह का रवैया अकसर देखा जा सकता है। सब कुछ मन में चलता रहता है पर उसे अमल में लाने की हिम्मत इस तरह के लड़कों में नहीं होती। इसलिए इनसे ख़तरे की कोई गुंजायिश नहीं रहती।

उस पर से नज़र हटाकर बगल के टेबल की ओर देखा मैंने। वहाँ तीन लड़कियाँ बैठी थीं। वे भी छात्र ही लग रही थीं। काफी का इंतज़ार करते हुए मोबाइल फोन के साथ वक्त गुज़ार रही थीं। मैंने आदत के मुताबिक उनके मन में झाँककर देखा। एक मिनट में जान गया कि कुछ बेकार की बातें ही हो रही थीं। आमने सामने बैठकर भी वॉट्सऐप में एक दूसरे से बातें कर रही थीं। ये नई पीढ़ी की लडकियाँ हार्म लेस क्रीचर्स।

अनिल एस. रॉयल
वैज्ञानिक कल्पना साहित्य से संबंधित कहानियाँ लिखने में रुचि रखने वाले युवा लेखक,अनिल एस. रॉयल की रचनाएँ भले ही कम हों, पर लेखक के रूप में वे अपनी पहचान बना चुके हैं। आंध्रप्रदेश में जन्मे अनिल अमेरिका में रहते हैं। इनकी कहानियों में ऐतिहासिक घटनाओं को वैज्ञानिक बातों से जोड़ा जाता है और पाठकों को हैरान कर देनेवाले मोड़ इनकी कहानियों में अचानक सामने आते हैं। इनकी कहानियाँ सोचने केलिए मजबूर करती तो हैं, साथ में पढ़नेवालों को मजेदार भी लगती हैं।
ईमेल : anil.s.royal@gmail.com

आर. शांता सुंदरी
अनुवाद क्षेत्र में 75 किताबें (तेलुगु और हिन्दी में) प्रकाशित। तेलुगु-हिन्दी के अलावा अंग्रेज़ी से तेलुगु और हिन्दी में भी अनुवाद। पी.एस. तेलुगु विश्वविद्यालय द्वारा 'प्रेमचंद,13 बाल कहानियाँ' के अनुवाद के लिए पुरस्कार। उपन्यास 'नई इमारत के खंडहर' के लिए राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग द्वारा अनुवाद पुरस्कार। 2015 केलिए केंद्रीय साहित्य अकदेमी का अनुवाद पुरस्कार - 'प्रेमचंद घर में' के तेलुगु अनुवाद के लिए।
संपर्क : 506, वेस्टेंड अपार्टमेंट्स, मस्जिद बांदा कोंदापुर, हैदराबाद 500084
मोबाइल : 9409033043

फिर मेरी नज़र वहाँ से जानेवाले एक युवक पर पड़ी। बीस बत्तीस साल का होगा। तेज़ी से चलते हुए मोबाइल पर बात कर रहा था। उसके रंग-ढंग कुछ ठीक नहीं लगे मुझे। क्या, कोई खास बात थी?' फौरन उसे स्कैन किया पारिवारिक मामला था। ध्यान देने की ज़रूरत नहीं, यह सोचकर मैं दूसरी ओर नज़रें फेरने ही वाला था, इतने में वह अचानक रुका। मैं भी ठिठक गया। वहाँ पास ही एक फूलों से भरा पौधा और उन फूलों से रस पीनेवाला नीले रंग का छोटा सा पक्षी दिखाई दिया। शहरों में विरले ही दिखाई देने वाला दृश्य था वह। इतनी हडबडाहट में भी उसे देखने के लिए रुक गया, मतलब यह कोई भावुक आदमी होगा। मैं इतमीनान से उसे देखने लगा। मुझे भी थोड़ा मज़ा लेना है ना!

उसने फ़ोन पर बात करना ख़त्म करके उसी फ़ोन से उस पक्षी का फ़ोटो लिया और फिर बात करते हुए जल्दी-जल्दी चलने लगा। वर्तमान को तसवीरों में बाँधकर उसका आनंद बाद में लेने वाला आधुनिक भावुक।

मैंने उसपर से ध्यान हटाया और चारों ओर देखा। वहाँ हवा में विचार हिलोरें ले रहे थे। आदतन उन्हें जानने की कोशिश करते हुए यह देखना चाहा कि उनमें खतरनाक सोच तो नहीं? शहर में जहाँ चार लोग जमा होते हैं, वहाँ पहुँचते ही स्कैंनिग करना मेरी ज़िम्मेदारी है। शहर के बीचों-बीच स्थित पार्क में, हमेशा भीड़ से भरे काफी शाप के पास। बस अब भी वही काम कर रहा था। शाप के सामने हराभरा एक मैदान है। वहाँ बीस पच्चीस टेबल। उनके इर्द-गिर्द बैठे लोग। उनके साये प्यार की पनीली धूप में लंबे होकर मानों नाच रहे थे। माहौल में सैकड़ों ख़याल उठ रहे थे। उन ख़यालों से निकलने वाली भावनाएँ शोर मचा रहीं थीं। आवेश, आक्रोश, अपमान, संदेह, जलन, अविश्वास जैसी नकारात्मक भावनाएँ ही अधिक थीं। न जाने क्यों लोगों को ख़ुश होने से ज़्यादा दुखी होने और असंतुष्ट रहने के ही अधिक कारण मिलते हैं! हैं, पर वहाँ एक मासूमियत और यहाँ एक छोटी सी ख़ुशी दुबककर बैठी हैं। पर मुझे जो चाहिए वह इससे ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है . . अमानुषिक है।

यह क्या हो रहा है? वहाँ कोई आत्महत्या करने को सोच रहा है!

पर उस पर ध्यान देने की ज़रूरत नहीं। उस बीच वाली टेबल पर बैठे आदमी के मन को कोई अपराध करने की सोच खाए जा रही है। उसे जानने की कोशिश करता हूँ। कुछ ही देर में उसके द्वारा भेजा गया आदमी उसकी पत्नी की हत्या कर देगा। एलाबाई के लिए वह यहाँ आकर बैठ गया है। वह शक़्क़ी पति के मन में उठ रही सोच है। पर वह उसका अपना निजी मामला है,मुझे उससे कुछ लेन देना नहीं है। इस तरह के मामलों में दखल देकर उन्हें रोकने की इच्छा तो होती है पर एजेंसी नहीं मानेगी।

पंद्रह बीस मिनट तक स्कैंनिग करता रहा फिर भी ऐसी कोई सोच नहीं दिखी जो मुझे बेचैन करे। वहाँ तरह-तरह के लोग थे। लगभग सब लोग मोबाइलों या टेबलेटों में मुँह छिपाए बैठे थे। पड़ोसियों से बात करें या न करें, अनजान लोगों से रोज़ अपनी बातें और ख़याल बाँटते हैं। हर वक्त हर बात से 'कनेकटेड' रहने के लिए आतुर वे अपने चारों ओर की दुनिया से 'डिसकनेक्ट' हो गए हैं। ईमेल,एस एम एस, पोस्ट, लाइक, पोक, फोटो,, टेग, वीडियो, ट्वीट,,ऐप्स, गेम्स, अपलोड, डाऊनलोड, फीड्स। जिन बातों को पिछली पीढ़ी ने सुना भी नहीं था, ऐसे विषयों में, पूरी तरह डूबे हुए थे। वास्तविक दुनिया को छोड़कर साइबर की वास्तविकता में नकाब ओढ़े चलने-फिरने का पागलपन।

पर नकाब कहाँ नहीं हैं?

इंटरनेट में ही नहीं, इस दुनिया में नकाब पोशों की भीड़ लगी हुई है, अगर हर इनसान के पास दूसरे का नकाब उतारकर उसके मन की सोच को पाने की शक्ति मिल जाए तो? तब इस दुनिया में रहस्य ही नहीं होंगे। छल कपट नहीं होगा। इतने सारे अपराध नहीं होंगे। कम्यूनिकेशन गैप नहीं होंगे, बात करने की ज़रूरत ही नहीं होगी। बच्चों के मन की बात न जानने वाले माँ-बाप नहीं होंगे। दिमाग में उठने वाले ख़याल जब खुलकर सामने आ जाएँगे तो फिर डर कर या झेंपकर उन्हें लोग नियंत्रित करना सीखेंगे। बेहतर इनसान बनेंगे। तब दुनिया को मेरे जैसों की ज़रूरत नहीं रहेगी। मेरी शक्ति खास नहीं समझी जाएगी।

शक्ति.....

पता नहीं यह शक्ति मुझमें क्यों आ गई! हाँ, कब जागी इसकी धुँधली सी याद रह गई।

सबसे पहले मैं अपनी माँ के विचारों को पढ़ सका था, तब मैं पाँच बरस का रहा हूँगा। विचारों को पढ़ पाना एक बहुत ही अद्भुत बात होती है यह जानने की उम्र नहीं थी मेरी। यूँ ही माँ के मन की बात को जानकर माँ को बता देता और वह हैरान रह जाती। उसके बाद बार-बार अपने मन की बात जानने और बताने का आग्रह करती थी। मैं बता देता तो हर बार वह चकित रह जाती थी। पूरा दिन यही एक खेल की तरह चलता रहता था, बस इतना ही याद है मुझे। थोड़ा बड़ा होने के बाद भी मैं अकसर माँ के विचारों को पढ़ कर बताता था। पर वह उसमें दिलचस्पी दिखाना तो दूर, चिढ़ जाती थी। मुझे बुरा लगता। क्यों चिढ़ती थी यह तो मालूम नहीं हुआ, पर माँ को अच्छा नहीं लगता, इसलिए मैंने वह काम करना छोड दिया। पहले मेरे इस बर्ताव से उसके मन में शक पैदा हुआ पर बाद में यही सोचकर चुप रह गई कि यह शक्ति जैसे मेरे ऊपर आई, उसी तरह अनायास चली भी गई हो। फिर समय के साथ वह इस बात को पूरी तरह भूल गई।

मेरी यह शक्ति दिन व दिन बढ़ती जा रही थी, पर माँ को इसकी जानकारी नहीं थी। पहले मैं सिर्फ माँ के मन की बात जान सकता था। जैसे-जैसे समय बीतता गया मैं दूसरों के विचारों को भी जानने लगा। पड़ोस के लोगों से लेकर दो सौ मीटर के घेरे के हर व्यक्ति के मन में उठते विचार मुझे मालूम होते लगे। इस शक्ति की वजह से ही शायद मुझमें अपनी उम्र से ज़्यादा मानसिक परिपक्वता आ गई। सात साल का था तो एक बात समझ गया कि कोई भी पराया शख़्स उसके मन में प्रवेश करके उसके विचारों को कोई जान ले,यह ठीक नहीं समझता। तो फिर मेरी इस शक्ति के बारे में सबको मालूम पड़ जाए तो क्या होगा? कोई भी मुझे इनसान नहीं समझेगा। मुझसे डरेगा, प्यार या आत्मीयता नहीं दिखाएगा। यह सोचते ही मैं तिलमिला उठता था। इसलिए अपनी इस अजीबो

ग़रीब शक्ति को छुपाकर रखना चाहा। उसके लिए बहुत कोशिश करनी पड़ी। चार लोगों के बीच पहुँचते ही विचार मुझे चारों ओर से घेर लेते। आँखें बंद करने पर यह दुनिया नहीं दिखाई दे, पर सुनाई तो देती है ना! जहाँ तक मेरी बात है दूसरों के विचार न चाहने पर भी ऐसे ही अनायास मेरे मन में घुस जाते थे। ऐसा लगता था जैसे हज़ारों मक्खियाँ भिनभिना रहीं हैं। सिर भारी हो जाता था। छूटने का बस एक ही रास्ता था। उन हज़ारों बातों में से एक को चुनकर उसी पर ध्यान देता। बाकी पीछे जाकर शोर मचाते ही रहते थे, फिर भी थोड़ा आराम मिल जाता था।

इस तरह किशोरावस्था में पहुँचने से पहले हज़ारों लोगों के दिल की बातें जान गया। उस दौरान मुझे एक महान् सत्य का आभास हुआ; जो कुछ दिखाई देता है सब मिथ्या है, दिखाई न देनेवाला ही असली सत्य है। पर वह किसी को भाता नहीं, इसीलिए यह सारा नाटक और छल। अपने बच्चे के लिए जो प्रेम है उसमें भी 'मेरा' का स्वार्थ है। स्वच्छ प्रेम है ही नहीं। अगर होता तो फिर कविता की आवश्यकता नहीं होती। ऊपर से सामान्य दिखाई देने वाले हर व्यक्ति के अंदर उससे पूरी तरह अलग एक व्यक्ति छिपा रहता है। उसके विचारों का कोई अंत नहीं होता। वह जो भी करता है उसकी कल्पना नहीं की जा सकती। उसके भेजे में कब क्या ख़याल आ जाए और क्यों, यह कहना मुश्किल है। जो दुनिया हमारी आँखों को दिखाई देती है वह तीन आयामों में बंधी है, यह दुनिया बौनी है। पर उससे परे एक ऐसा एक असीम संसार है, जो भला-बुरा और काला-सफेद के बीच इनसान के मन में बसा है। उसकी गहराई नापने के लिए लाखों युगों की अवधि पर्याप्त नहीं होती।

उस अँधेरी दुनिया में मैंने झाँककर देखा था। फूलों की तरह खिलकर हँसने वाले चेहरों के पीछे दुबके शीशे के काँटे, जितना गौर से देखोगे उतना ही गहरा चीर देते हैं। उस दर्द को दबाकर रखना बड़ी वेदना पहुँचाता है। वह एक निरंतर होनेवाला संघर्ष है। उसके आघात से मैं विक्षिप्त सा हो जाता, छोटी-छोटी बातें भी भूल जाता, या अलग-अलग घटनाओं को आपस में उलझाकर सभ्रमित हो जाता था।

पर इनके परे भी एक समस्या थी। पिता बचपन में ही गुज़र गए और माँ का इकलौता बेटा था मैं। इसलिए अकेले चलना कितना थकावट देता है, यह मैं अच्छी तरह जानता था। 'मेरे अपने', इस शब्द का मूल्य और भी अच्छी तरह मालूम था। पर अपनी शक्ति के चलते जिन्हें मैं अपना मानता था, उनके मन में मेरे प्रति क्या विचार है यह जानने के बाद उनके साथ पहले जैसा बर्ताव नहीं कर पाता था। कहीं इस दुनिया में मैं नितान्त अकेला न रह जाऊँ, यह डर हमेशा पीछा करता रहता। इससे बचने के लिए, मैंने ठान लिया कि अपनों के मन के अंदर कभी झाँककर नहीं देखूँगा। इस काम में सफल होने के लिए बहुत प्रयास करना पड़ा, पर अंत में सफल हो ही गया। मेरी लिस्ट में बहुत कम नाम रह गए।

उनमें एक नाम था शाहिदा का। वह इंजीनियरिग में मेरी क्लास में थी। पहली नज़र में ही हमारे बीच एक तरह का आकर्षण पैदा हो गया। उसी वक्त मैंने ठान लिया कि उसके मन की बात जानने की कोशिश कभी नहीं करूँगा। परिचय को प्यार में बदलने में ज़्यादा वक्त नहीं लगा। पढ़ाई पूरी करने के बाद शाहिदा से शादी की बात को लेकर माँ से काफी झगड़ा करना पड़ा। माँ शाहिदा के मज़हब को लेकर अड़चन डालने लगी। पर अंत में मान भी गई। शादी के बाद कभी-कभी शाहिदा के मन की बात जानने की इच्छा होती तो फौरन उसे दबा देता था। ऐसा करके मैंने कितनी बड़ी गलती की यह मुझे बाद में मालूम हुआ। पर त बतक देर हो ही चुकी थी।

सिर झटकाते हुए स्कैनिग करने लगा। आसपास लोग अपने-अपने ख़यालों में डूबे से आशा, जलन, कामना, गुस्सा, कमीनापन विकृत विचार, ये सब बेरोक टोक उनके दिलों में चक्कर काट रहे थे। अगर वे जान लेते कि ये सब मैं सुन पा रहा हूँ तो क्या अपने ख़यालों पर रोक लगाएँगे? नहीं मुझपर हमला करेंगे उनके निजी विचारों के अधिकार में बाधा डालने की बात को लेकर सवाल करेंगे, इसी वजह से एजेन्सी अज्ञात रह गई है।

इन्हीं के बारे में सोचता रहा और काफी ठंडी हो गई। उठकर काउंटर पर गया और एक और काफी का आर्डर देकर सामने दीवार पर लगी टीवी में खबरों का स्क्रॉलिंग पढ़ने लगा,''अपने राज्य के लिए विशेष ओहदा पाकर रहेंगे-चंद्रबाबू'', ''विदेशों से कालाधन वापस लौटाएँगे-नरेद्र मोदी'', ''जल्द ही मेगास्टार के डेढ़ सौवीं फ़िल्म की घोषणा-रामचरण'', ''इस देश में जन्मे हर व्यक्ति को जय श्रीराम कहना ही पड़ेगा-साधू महाराज''। दो सालों से हर दूसरे दिन यही खबरें ब्रेकिग न्यूस रहीं हैं। पर सामूहिक अत्याचार समाज विरोधी कृत्यों की खबरों से ये खबरें ही बेहतर हैं। कॉफ़ी तैयार थी। फिर उसी टेबल पर आकर बैठा और काफी पीने को हुआ..... तभी मन में बिजली सी कौंध गई। एक पल के लिए दिमाग सुन्न हो गया।

एजेन्सी से जब संदेश आने को होते हैं, तो दिमाग सुन्न हो जाता है।

कॉफ़ी का प्याला मेज़ पर रखकर मैंने आखें मूँद लीं। अंतर्नेत्रों को कुछ दूरी पर एक सूक्ष्म बिंदु दिखाई दे गई, जिस पर उसे केंद्रित करने की कोशिश में लग गया। शुरू में ऐसा करने में दो मिनट लगते थे, पर अब दो क्षणों में काम हो जाता है, फोकस जैसे ही बैठ गया, संदेश डाउन लोड होने लगे। पहले किसी का चित्र सामने आया पर स्पष्ट दिखाई नहीं दिया। किसी आदमी का था। वह मैं भी हो सकता हूँ या कोई और। टेलीपटी से जितने साफ शब्द सुनाई देते हैं, उतने साफ चित्र दिखाई नहीं देते। इन अस्पष्ट चित्रों का कोई फायदा नहीं होता। पर एजेन्सी का कहना है कि टार्गेट को बिलकुल न जानने से तो यह अच्छा है।

फोटो को परे हटाकर बाकी संदेश ध्यान से सुनने लगा। कोई धार्मिक गुट या आँख के बदले आँख के उसूल को मानने वाला कोई नया अंधविश्वासी दल। मक्का मस्जिद में विस्फोटों की साजिश में लगा था। कल ही उस काम का मुहूर्त निकलवा रहे हैं। उस काम के सूत्रधारों को एजेन्सी देख ले गई। उनमें जो प्रमुख पात्र है, उसका जिम्मा मेरे ऊपर है। उसके लिए उचित जगह भी एजेन्सी ने ही बताई, वह जगह मैं अच्छी तरह जानता था। फिर भी मोबाइल में उस प्रदेश का ताज़ा मान चित्र खोलकर देखा। उस तरफ गए मुझे बहुत दिन हो गए। इस बीच वहाँ क्या-क्या बदलाव आए, यह

जानना बहुत ज़रूरी था।

मानचित्र को अच्छी तरह देख लेने के बाद आँखें मूँदकर बाकी बातें सुनने लगा। आख़िर उसका नाम भी सुनाई दिया–

चिरंजीवी.....

****

आधे घंटे से वहीं घात लगाए बैठा था। एजेन्सी ने खबर भेजी कि अपने अमानवीय योजना को कार्यान्वित करने के लिए आधी रात के बाद चिरंजीवी वहाँ आएगा और इसी रास्ते अपने शेल्टर तक जाएगा। ठीक किस वक्त आएगा, यह पता नहीं, न जाने कब तक उसका इंतजार करना पड़ेगा?

वह शहर से दूर एक उद्योग नगरी थी। दिन में काफी हलचल से भरा वह स्थान आधी रात को एकदम सुनसान हो जाता था। कुछ इमारतें, उनके बीच से जाने वाली कच्ची सड़क और उसके दोनों ओर झाड़-झंखाड के सिवा कोई पेड़-पौधे नज़र नहीं आते। कुछ इमारतों में बिजली की बत्तियाँ जल रही थीं, जहाँ मैं था, वहाँ अँधेरे का परदा था और वह मज़हब के अंधकार में डूबे इनसानों की याद दिला रहा था।

कोई दो पहिये वाली गाड़ी आवाज़ करती मेरी ओर आ रही थी। एनफील्ड गाड़ी, उस पर अकेला आदमी बैठा था। चिरंजीवी तो नहीं?

कच्ची सड़क के किनारे झाड़ियों के पीछे छिपकर बैठ गया और स्कैंनिग शुरू किया। नहीं चिरंजीवी नहीं। किसी अश्लील फ़िल्म का रात का शो देखकर लौट रहा रसिक था। उसकी सोच अमानवीय नहीं गंदी थी। उससे किसी की हानि नहीं होगी। अगर हो तो भी उसी की होगी। वह भी अगर उसकी पत्नी उसके मन की बात को पढ़ सकेगी, तभी।

मुझे हमेशा एक शंका तग करती रहती थी, 'यह जो शक्ति है क्या वह सिर्फ मुझमें है या मेरे जैसे और भी हैं ? अगर हैं तो क्या उनके मन से बात करना मेरे लिए संभव होगा?' यह सवाल वहुत समय तक मेरा पीछा करता रहा। आख़िर मुझे जवाब मिल गया। इसके एक महीना पहले एक भयंकर घटना घटी.....

उस दिन भी हमेशा की तरह शहर भर के पिता दफ्तर गए। माँएँ बाज़ार गईं। पति पत्नी फ़िल्म देखने गए। बच्चे खेलने गए। प्रेमी पार्क में घूमने गए। उनमें से बहुत से घर वापस नहीं लौटे।

मेरी माँ भी...

मुझे फुरसत न मिलने की वजह से उस शाम वह दवाई खरीदने मेडिकल शॉप गई। नकुल चाट भंडार रास्ते में ही पड़ता था। उसे पार करते वक्त, माँ के बगल में ही पहले बम का विस्फोट हुआ। उसके बाद दस मिनटों में शहर में कई जगह बम फूटे। सैकड़ों की जानें गईं।

'क्या अपराध किया था उन सबने?'मानता हूँ, उनमें कई खामियाँ थीं; फिर भी मेरी तरह वे भी इनसान थे। जीवित रहना उनका अधिकार था। उसे छीननेवाले इनसान नहीं हैं, हैवान कहलाएँगे। मनुष्यों के रूप में इस दुनिया में चलने-फिरनेवाले राक्षस। उन्हें काटकर रख देना चाहिए !

वेदना से आवेग उठा। उसमें से एक विचार ने जन्म लिया। मैं अपनी शक्ति का उपयोग करके कुछ नहीं कर सकता?क्या इस तरह की घटनाओं को घटने से पहले नहीं रोक सकता?मुझमें यह अनोखी शक्ति होने का कारण शायद यही तो नहीं?

उस रात पागलों की तरह शहर भर में घूमता रहा। जहाँ-जहाँ बम फूटे उन सभी जगहों पर गया। हर जगह राक्षस गीत का अलाप हो रहा। इस तरह की दुर्घटना फिर कभी न हो इसके लिए मुझे अपनी शक्ति से उसे रोकना होगा, पर कैसे? उस सवाल का जवाब एक महीने बाद मुझे ढूँढ़ता मेरे पास पहुँच गया। एजेन्सी वालों से। संसार भर में रहने वाले टेलिपैथी के सदस्यों से युक्त, सरकार के दखल के बिना काम करने वाली अज्ञात संस्था है हमारी एजेन्सी। माइंड रीडिंग द्वारा आतंकवादी क्रियाकलापों को पहचानकर उन्हें रोकना ही उसका काम है। बहुत समय से मुझपर निगाह रखे है यह एजेन्सी। जब देखा कि मैं अपनी शक्ति को भले कामों में लगाना चाहता हूँ, तो एजेन्सी ने मुझे सदस्य बनने के लिए निमन्त्रण भेजा। राजी होने में मुझे पल भर भी नहीं लगा।

ख़ुशी.....

मैं अकेला नहीं हूँ, मैं कोई अजूबा या अप्राकृतिक इनसान नहीं हूँ। मेरे जैसे और भी बहुत हैं, यह सोचकर ख़ुशी हुई। पर वह सिर्फ चार मिनट की ख़ुशी थी। मैंने सदस्यता लेने के लिए सहमति प्रकट किया नहीं कि एजेन्सी से एक और संदेश आया,''तुम्हारी पत्नी के मन की बात पढ़ो।'' कारण मालूम नहीं हुआ फिर भी अनिच्छा से काम में लग गया।

विस्मय! समझ गया कि शाहिदा को व्हाइट लिस्ट में रखकर मैंने कितनी बड़ी गलती की। फौरन उस गलती के लिए मूल्य चुका दिया। उस दिन से जिस किसी को भी देखता, उसके विचारों को पढ़ना शुरू कर देता; आतंकवादियों की साजिशों को पहचानकर एजेन्सी तक पहुँचाना, हो सके तो आतंकवादियों को ख़त्म कर देना यहीं मेरा काम था। उस सूची में अब तक पाँच नाम हैं, चिरंजीवी छठा है।

वह सामने जो आ रहा है वही है क्या? सड़क पर दूर एक आदमी इसी ओर चला आ रहा है। झाड़ियों के पीछे और दुबककर स्कैनिंग शुरू किया। दस सैकेंड में पता चल गया कि वही है। उसके मन में--कल शाम.मक्का, मस्जिद. सूसाइड बमबारी का विचार, जब तक मैं हूँ, यह काम होने का सवाल ही नहीं उठता। झाड़ियों के पीछे मैं तैनात बैठा था। जैसे ही वह मेरे पास से गुज़रा, पीछे से उस पर कूदकर मैंने उसे ज़मीन पर औंधे मुँह गिरा दिया, इस तरह अचानक हुए हमले से वह विस्मित हो गया और पीछे मुड़कर देखा। नीम अँधेरा था फिर भी बिलकुल पास होने की वजह से उसका चेहरा साफ नज़र आया। उसने मूँछ मुड़ा कर दाढ़ी रखी हुई थी। देखने में मुसलमान लग रहा था।

मस्जिद की चौखट पर किसी को शक न हो इसलिए वहुत अच्छा भेस बनाया।

इतने में वह बोल उठा''कौन है तू? क्या चाहिए।''

अच्छा हैदराबादी बोली भी सीख ली? पर मुझे चकमा नहीं दे सकता है तू!

''तेरे प्राण चाहिए'' कहता मैंने एक हाथ से उसे ज़मीन पर दबाते हुए दूसरे हाथ में हथियार ले लिया। उसकी आँखों में विस्मय की जगह डर ने ले ली। चीखते हुए मुझे परे हटाने की कोशिश की उसने। पर मेरी ताकत के आगे नहीं टिक सका।

''तुझे पकड़ लिया चिरंजीवी, अब तेरी साजिश बेकार रही,'' कहते हुए हथियार ऊपर उठाया।

''यह चिरंजीवी कौन ? मैं रियाज

अहमद हूँ। छोड़ दे मुझे।'' वह छटपटाने लगा और मेरी ओर निरीह दृष्टि से देखने लगा। एक पल के लिए रुककर मैंने उसके मन में झाँक कर देखा।

वह मन में सोच रहा या ''पता नहीं मेरी झूठी बात पर इसे यकीन हुआ या नहीं अब कुछ फेर बदल हुई तो सारा किया धरा बेकार जाएगा''पर उसके चेहरे पर वही निरीह भाव था।

''मौत सामने है फिर भी खूब अभिनय कर रहा है बे! तुझसे पहले जो पाँच लोग थे उनका भी यही रवैय्या था.. शाहिदा का भी।''

साल भर बाद भी उसकी बातें मेरे ज़हन में ताज़ा है-

''पिछले महीने नकुल चाट भंडार में बम फटने से तुम्हारी माँ मर गई, उसके पीछे मेरा हाथ था।''

''यह तुम क्या कह रहे हो? तुम्हारी शादी के वक्त तुम्हारी माँ ने बिस्तर पकड़ ली थी और हिलने-डुलने की हालत में नहीं थी। उसी हालत में एक साल पहले वे चल बसी..... कैसे भूल गए? तब से तुम खोए-खोए से रहने लगे, तो मुझे लगा उस गम से कुछ दिन बाद ख़ुद उबर जाओगे, पर अब लगता है कि तुम पगला गए हो। पता नहीं मन में क्या-क्या ख़याली पुलाव पकाने लगे हो। मैं और जिहादी? बकवास ! पाँच साल साथ रहे हैं हम..... माइ गाड..... वह चाकू कहाँ से आया? क्या कर रहे हो स्टॉप इट....या अल्लाह ....''

बस उसके बाद हमारे बीच फिर कोई बातचीत नहीं हुई। मंजी हुई अभिनेत्री थी वह। मरने से पहले भी असलियत नहीं बताई। ऊपर से मुझे पागल सिद्ध करने पर तुली थी।

इन आतंकवादियों में यह आम बीमारी है। अपने पागलपन को ख़ुद न पहचानने का उन्माद ब्लडी साइको होते हैं। इनके पागलपन का एक ही इलाज है-

ऊपर उठा चाकू आवेग के साथ नीचे उतरा.. सीधे चिरंजीवी की छाती में...

उसकी आँखों में बुझती रोशनी को देखते वक्त न जाने क्यों मेधावी के वही शब्द याद आए- ''जिस पर तुम यकीन करते हो वही तुम्हारे लिए सच है।''

***

दोहे

संपर्क: प्रकृति-भवन, नीरपुर, नारनौल (हरियाणा)- 123001
मोबाइल:9416320999
ईमेल: nnltimes@gmail.com

रघुविन्द्र यादव

खूब किया सय्याद ने, बुलबुल पर उपकार।
पंख काटकर दे दिया, उड़ने का अधिकार।।

***

बस्ती में रावण बढ़े, सड़कों पर मारीच।
घिरी हुई है जानकी, फिर दुष्टों के बीच।।

***

कहीं भामिनी लुट रही, जले कहीं तंदूर।
सिया, अहिल्या, द्रौपदी, नया नहीं दस्तूर।।

***

गली-गली में हो रहा, चीरहरण अपमान।
अंधे राजा बाँटते, पीड़ित को ही ज्ञान।।

***

अपने ही शोषण करें, कौन बंधाए धीर।
सभी डालना चाहते, औरत को ज़ंजीर।।

***

चीख रही है द्रौपदी, देख रहे सब मौन।
'केशव' गुंडों से मिले, लाज बचाए कौन।।

***

नारी पूजक देश में, है नारी लाचार।
हत्या, शोषण, अपहरण, भरे पड़े अखबार।।

***

रामराज की कल्पना, करे उसे भयभीत।
कैसे भूले जानकी, अपना दुखद अतीत।।

***

संसद में होती रही, महिला हित की बात।
थाने में लुटती रही, इज्ज़त सारी रात।।

***

नदिया अब कैसे करे, सागर पर विश्वास।
कतरा-कतरा पी गया, बुझी न फिर भी प्यास।।

***

बेटी कभी न ले सकी, अपने निर्णय आप।
नारी के दुश्मन रहे, रिश्ते-नाते, खाप।।

***

कहीं शिकारी तानते, उस पर तीर कमान।
कहीं भेड़िये घात में, हिरनी है अनजान।।

***

विधवा होते ही हुए, सब दरवाज़े बंद।
आँखों का भी नींद से, टूट गया अनुबंध।।

***

सीता को आता नहीं, रामराज भी रास।
अग्नि परीक्षा है कहीं, और कहीं वनवास।।

***

बुलबुल ने आकाश में, जब-जब भरी उड़ान।
बाजों ने प्रतिबन्ध के, सुना दिए फरमान।।

***

धन-पशुओं ने यूँ किया, धनिया के सँग प्यार।
गले लगाईं रातभर, सुबह दिया दुत्कार।।

***

लगा दाँव जिसने किया, नारी का अपमान।
'धर्मराज' कह दे रहे, उसे मान-सम्मान।।

***

कहते कहते रो पड़ी, बुलबुल अपना दर्द।
अबला की मजबूरियाँ, कब समझे हैं मर्द।।

***

जंगल की सरकार ने, साध लिया है मौन।
घायल हिरनी पूछती, न्याय करेगा कौन?

***

पूर्ण सुरक्षा दे रही, भेड़ों को सरकार।
मुस्तैदी से भेड़िये, उठा रहे हैं भार।।

***

नहीं सुरक्षित देश में, अब 'सीता' का मान।
गली-गली में घुमते, बिना खौफ़ शैतान।।

***

विधवा रब से माँगती, अपनी मौत अकाल।
बुरे वक़्त में हो गए, पत्थर भी वाचाल।।

***

है नारी के भाग्य में, दर्द, घुटन, अवसाद।
अपने जिसको लूटते, कहाँ करे फ़रियाद।।

***

गूँगा-बहरा हो गया, जब से सभ्य समाज।
चौराहों पर लुट रही, अबलाओं की लाज।।

***

रखना मत अब द्रौपदी, केशव से भी आस।
कलियुग है द्वापर नहीं, ख़ुद पर कर विश्वास।।

***

अनूदित अमेरिकी कहानी

पुल पर बैठा बूढ़ा

मूल कथा : अर्नेस्ट हेमिंग्वे
अनुवाद : सुशांत सुप्रिय

स्टील के फ्रेम वाला चश्मा पहने एक बूढ़ा आदमी सड़क के किनारे बैठा था। उसके कपड़े धूल-धूसरित थे। नदी पर पीपों का पुल बना हुआ था और घोड़ा-गाड़ियाँ, ट्रक, मर्द, औरतें और बच्चे उस पुल को पार कर रहे थे। घोड़ा-गाड़ियाँ नदी की खड़ी चढ़ाई वाले किनारे से लड़खड़ा कर पुल पर चढ़ रही थीं। सैनिक पीछे से इन गाड़ियों को धक्का दे रहे थे। ट्रक अपनी भारी घुरघुराहट के साथ यह कठिन चढ़ाई तय कर रहे थे और किसान टखने तक की धूल में पैदल चलते चले जा रहे थे। लेकिन वह बूढ़ा आदमी बिना हिले-डुले वहीं बैठा हुआ था। वह बेहद थक गया था इसलिए आगे कहीं नहीं जा सकता था।

पुल को पार करके यह देखना कि शत्रु कहाँ तक पहुँच गया है, यह मेरी ज़िम्मेदारी थी। आगे तक का एक चक्कर लगा कर मैं लौट कर पुल पर आ गया। अब पुल पर ज़्यादा घोड़ा-गाड़ियाँ नहीं थीं, और पैदल पुल पार करने वालों की संख्या भी कम थी। पर वह बूढ़ा अब भी वहीं बैठा था।

''आप कहाँ के रहने वाले हैं ?'' मैंने उससे पूछा।

''मैं सैन कार्लोस से हूँ,'' उसने मुस्करा कर कहा।

वह उसका अपना शहर था। उसका ज़िक्र करने से उसे ख़ुशी होती थी, इसलिए वह मुस्कराया।

''मैं तो पशुओं की देखभाल कर रहा था,'' उसने बताया।

''ओह,'' मैंने कहा, हालाँकि मैं पूरी बात नहीं समझ पाया।

''हाँ, मैं पशुओं की देख-भाल करने के लिए वहाँ रुका रहा। सैन कार्लोस शहर को छोड़ कर जाने वाला मैं अंतिम व्यक्ति था।''

वह किसी गरड़िए या चरवाहे जैसा नहीं दिखता था। मैंने उसके मटमैले कपड़े और धूल से सने चेहरे और उसके स्टील के फ्रेम वाले चश्मे की ओर देखते हुए पूछा -- ''वे कौन से पशु थे ?''

''कई तरह के,'' उसने अपना सिर हिलाते हुए कहा, ''मुझे उन्हें छोड़ कर जाना पड़ा।''

मैं पुल पर हो रही आवाजाही और आगे एब्रो के पास नदी के मुहाने वाली ज़मीन और

संपर्क: A-5001, गौड़ ग्रीन सिटी, वैभव खंड, इंदिरापुरम, ग़ाज़ियाबाद - 201014 (उ. प्र.) मोबाइल : 8512070086
ईमेल : sushant1968@gmail.com

अफ़्रीकी-से लगते दृश्य को ध्यान से देख रहा था। मन-ही-मन मैं यह आकलन कर रहा था कि कितनी देर बाद मुझे शोर का वह रहस्यमय संकेत मिलेगा, जब दोनों सेनाओं की आमने-सामने भिड़ंत होगी। किंतु वह बूढ़ा अब भी वहीं बैठा हुआ था।

''वे कौन-से पशु थे ?'' मैंने दोबारा पूछा।

''उनकी संख्या तीन थी,'' उसने बताया। ''दो बकरियाँ थीं और एक बिल्ली थी और कबूतरों के चार जोड़े थे।''

''और आप को उन्हें छोड़ कर जाना पड़ा ?'' मैंने पूछा।

''हाँ, तोपख़ाने की गोलाबारी के डर से। सेना के कप्तान ने मुझे तोपख़ाने की मार से बचने के लिए वहाँ से चले जाने का आदेश दिया।''

''और आपका कोई परिवार नहीं है ?'' मैंने पूछा। मैं पुल के दूसरे छोर पर कुछ अंतिम घोड़ा-गाड़ियों को किनारे की ढलान से तेज़ी से नीचे उतरते हुए देख रहा था।

''नहीं,'' उसने कहा, ''मेरे पास केवल मेरे पशु थे। बिल्ली तो ख़ैर अपना ख़्याल रख लेगी, लेकिन मेरे बाक़ी पशुओं का क्या होगा, मैं नहीं जानता।''

''आप किस राजनीतिक दल का समर्थन करते हैं ?'' मैंने पूछा।

''राजनीति में मेरी रुचि नहीं,'' वह बोला। ''मैं छिहत्तर साल का हूँ। मैं बारह किलोमीटर पैदल चल कर यहाँ पहुँचा हूँ, और अब मुझे लगता है कि मैं और आगे नहीं जा सकता।''

''रुकने के लिए यह अच्छी जगह नहीं है,'' मैंने कहा। ''अगर आप जा सकें तो आगे सड़क पर आपको वहाँ ट्रक मिल जाएँगे, जहाँ से टौर्टोसा के लिए एक और सड़क निकलती है।''

''मैं यहाँ कुछ देर रुकूँगा,'' उसने कहा। ''और फिर मैं यहाँ से चला जाऊँगा। ट्रक किस ओर जाते हैं ?''

''बार्सीलोना की ओर,'' मैंने उसे बताया।

''उस ओर तो मैं किसी को नहीं जानता,'' उसने कहा, ''लेकिन आपका शुक्रिया। आपका बहुत-बहुत शुक्रिया।''

उसने खोई और थकी हुई आँखों से मुझे देखा और फिर अपनी चिंता किसी से बाँटने के इरादे से कहा, ''मुझे यक़ीन है,बिल्ली तो अपना ख़याल रख लेगी। बिल्ली के बारे में फ़िक्र करने की ज़रूरत नहीं। लेकिन बाक़ियों का क्या होगा ? बाक़ियों के बारे में आप क्या सोचते हैं ?''

''मुझे तो लगता है कि शायद आपके बाक़ी पशु-पक्षी भी इस मुसीबत से सही-सलामत निकल आएँगे।''

''क्या आपको ऐसा लगता है ?''

''क्यों नहीं,'' दूर स्थित नदी के किनारे को देखते हुए मैंने कहा। वहाँ अब कोई घोड़ा-गाड़ी नहीं थी।

''लेकिन वे तोपख़ाने की मार से कैसे बचेंगे जबकि मुझे तोपख़ाने की संभावित गोलाबारी की वजह से वहाँ से चले जाने के लिए कहा गया था ?''

''क्या आपने कबूतरों का पिंजरा खुला छोड़ दिया था ?'' मैंने पूछा।

''जी हाँ।''

''तब तो वे उड़ जाएँगे।''

''जी हाँ, वे ज़रूर उड़ जाएँगे। लेकिन बाक़ियों का क्या होगा ? बेहतर होगा कि मैं बाक़ियों के बारे में सोचूँ ही नहीं।'' उसने कहा।

''अगर आपने आराम कर लिया हो, तो मैं चलूँ,'' मैंने कहा। ''अब आप उठ कर चलने की कोशिश कीजिए।''

''शुक्रिया,'' उसने कहा और वह उठ कर खड़ा हो गया, लेकिन उसके थके हुए पैर उसे नहीं सँभाल पाए, और काँपते हुए वह वापस नीचे बैठ गया।

''मैं तो केवल पशुओं की देख-भाल कर रहा था,'' उसने निरुत्साहपूर्वक कहा, हालाँकि अब वह मुझसे बातचीत नहीं कर रहा था। ''मैं तो केवल पशुओं की देख-भाल कर रहा था।''

अब उसके लिए कुछ भी नहीं किया जा सकता था। वह ईस्टर के रविवार का दिन था और फ़ासिस्ट फ़ौजें एब्रो की ओर बढ़ रही थीं। वह बादलों से घिरा सलेटी दिन था। बादल बहुत नीचे तक छाए हुए थे जिसकी वजह से शत्रु के विमान उड़ान नहीं भर रहे थे। यह बात और यह तथ्य कि बिल्लियाँ अपनी देख-भाल ख़ुद कर सकती थीं -- उस बूढ़े के पास अच्छी किस्मत के नाम पर केवल यही चीज़ें मौजूद थीं।

***

लेखकों से अनुरोध

'विभोम-स्वर' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें। कृपया रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

vibhom.swar@gmail.com

जो न करे ख़ुदाई, वह करे चतुराई

डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल

दरोगा गुलदारसिंह रिटायर होकर लौटे तो सारे गाँव में हर्ष की लहर दौड़ गई। वैसे हमारे गाँव हों या शहर, हर्ष की लहर ज़रा कम ही दौड़ती है। शोक की लहर दौड़ती रहती है और सारे साल दौड़ती रहती है। हमारा विचार है कि संसार में दौड़नेवाली जितनी भी चीज़ें हैं, उनमें शोक की लहर ही अकेली ऐसी चीज़ है, जो निरंतर दौड़ती है और रुकने का नाम ही नहीं लेती। इसे उन देशों में ख़ास तौर पर दौड़ते देखा गया है, जहाँ की जनता ग़रीबी की रेखा के नीचे जीवन व्यतीत कर रही है। ग़रीबी की रेखा पर और उसके नीचे यह लहर ख़ूब फर्राटे भरती है। शोधकर्ताओं का मानना है कि ग़रीबी की रेखा इसके लिए बिजली के तार की तरह होती है, जिसमें शोक की लहर बिना बाधा तीव्र गति से दौड़ सकती है और यहाँ-वहाँ हर जगह शोकसभाएँ संपन्न करा सकती है। अब जहाँ तक सवाल हर्ष की लहर का है, यह तो जीवन की विशाल झील में कभी-कभी ही उत्पन्न होती है और उत्पन्न होते ही क्षणभर में लुप्त हो जाती है।

तो साहब! गाँव में हर्ष की एक छोटी-सी लहर उस समय दौड़ गई, जब दरोगा गुलदारसिंह रिटायर होकर घर आ गए! सरकारी सेवा में रहते हुए जब वे अवकाश में एक-दो दिन के लिए घर आते थे, तो कोई व्यक्ति आसानी से उनसे मिलने की हिम्मत नहीं जुटा पाता था। रौब-दाब ही ऐसा था, दारोगा गुलदारसिंह का। मजबूत काठी और चेहरे पर ताव दी हुई मूँछें। मूँछों का ताव उन्हें हर समय ऐसा तावदार बनाए रखता कि लोग-बाग़ उनके सामने से भी निकलते हुए घबराते। पर अब, जब वे रिटायर हो गए, वर्दी तन से उतर गई, कंधे पर लगे स्टार संगत छोड़ गए तो दरोगा गुलदारसिंह भी ठीक हमारी तरह साधारण सिंह होकर रह गए। ज्ञात हुआ कि दरोगासिंह का जो रौब-दाब था, वह दरोगागर्दी की वजह से नहीं था, वर्दी की वजह से था। वर्दी नहीं रही तो मुठभेड़ भी नहीं रही।

हमने एक दिन अनुकूल मौक़ा देखकर दरोगा गुलदारसिंह को जा दबोचा, जो बेचारे अब भूतपूर्व दरोगा हो चुके थे। हमारे देश की परंपराओं में यह परंपरा सबसे ज़्यादा लाभदायक है कि जब कोई पदवी किसी व्यक्ति के नाम के साथ चिपक जाती है तो वह मरते दम तक उतरती नहीं, बल्कि मरने के बाद भी कम ही उतरती है, बस इतना अंतर पड़ता है कि पदवी कालपूर्व से भूतपूर्व हो जाती है। जैसे भूतपूर्व प्राचार्य, भूतपूर्व मंत्री, भूतपूर्व सचिव, भूतपूर्व अध्यक्ष आदि-आदि।

जिस समय हम रिटायर दरोगा गुलदारसिंह से भेंट करने उनके निवास- स्थान पर पहुँचे, हमने देखाकि भूतपूर्व दरोगा जी अपनी चौपाल पर अकेले बैठे मक्खियाँ मार रहे हैं। देखकर कोई आश्चर्य नहीं हुआ। पहले दोषियों को कम और निर्दोषों को अधिक मारा करते थे, अब पदमुक्त हो गए तो क्या हुआ? कुछ और नहीं तो बेचारे मक्खियाँ तो मार ही सकते हैं।

राम-राम और दुआ-सलाम के उपरांत जब इधर-उधर की बात छिड़ी तो हमने रिटायर दारोगा गुलदारसिंह से पूछा कि दरोगा जी, कोई ऐसी घटना सुनाइए, जो आपके सेवाकाल की सबसे यादगार घटना रही हो और आप जिसे चाहकर भी कभी नहीं भुला पाएँगे।

संपर्क: 16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ.प्र.) 246701
मोबाइल: 07838090732
ईमेल: giriraj3100@gmail.com

दरोगा गुलदारसिंह ने तुरंत हमारे सवाल का उत्तर देते हुए कहा, 'हमने तो भाई पुलिस में रहते हुए अपने पूरे सेवाकाल में एक ही बात सीखी कि बुद्धि से बड़ा कोई मित्र नहीं होता है। जब साथी-संगी साथ छोड़ जाएँ, मित्र-परिचित साथ छोड़ जाएँ, कर्मचारी-अधिकारी साथ छोड़ जाएँ, शुभचिंतक साथ छोड़ जाएँ, भाई-विरादर और नेता-राजनेता सब साथ छोड़ जाएँ तो उस समय अगर कोई काम आता है तो अपनी बुद्धि ही काम आती है। इसीलिए तो हम कहते हैं, जो न करे ख़ुदाई वह करे चतुराई। चतुराई से काम न लिया होता तो बुरे फँस गए थे एक बार।'

चतुराई की बात सुनी तो दरोगा जी की बात में हमारी रुचि बढ़ी। पूछा, 'क्या हुआ था श्रीमान जी। किसप्रकार काम आई चतुराई आपके?'

हमारे सवाल पर दरोगा गुलदारसिंह ने अपने साथ बीती एक घटना इस प्रकार सुनानी शुरू की, जैसे पंचतंत्र की कोई बेहद रोचक कथा सुना रहे हों। बोले, 'अरे भाई! एक बार हम बहुत बुरी तरह फँस गए थे। हुआ यह कि हमने बलात्कार का एक केस पकड़ा। केस हमने क्या पकड़ा, हमें तो घर बैठे विधिवत् पकड़ा दिया गया। मुख़बिर की निशानदेही पर हम हमेशा की तरह इस बार भी दलबल सहित घटना-स्थल पर पहुँचे और घटना-स्थल से जो हमेशा की तरह इस बार भी अभियुक्त का निवास-स्थान ही था, हम बलात्कार के अभियुक्त झबरेसिंह पुत्र कोबरेसिंह निवासी ग्राम पठारपुर को हथकड़ी लगाकर खींच लाए। झबरेसिंह पर आरोप था कि उसने गाँव की एक अल्पवयस्क कन्या से ईख के खेत में उस समय बलात्कार किया, जब वह अपने गन्ने के खेत की नराई कर रही थी।

हमने सर्वप्रथम अभियुक्त और पीड़ित कन्या का राजकीय चिकित्सालय में डॉक्टरी मुआयना कराया। कन्या उसके परिवारजनों को सौंपी और अभियुक्त को थाने ले आए। अभी हम चालान कर उसे जेल भेजने ही वाले थे कि गाँव का प्रधान माखनलाल भागा-भागा हमारे पास आया और अपनी मुट्ठी हमारी मुट्ठी की तरफ़ बढ़ाते हुए बोला, 'दरोगा जी! इस साले संतोषी को भी किसी ऐसे केस में धर दो, जो ससुरा याद करे, जीते जी। हमने प्रधान की मुट्ठी में दबी मुद्रा अपनी मुट्ठी में दाबी और मुट्ठी को अपनी पॉकेट में ठूँसते हुए प्रधान से पूछा, 'कौन है यह साला संतोषी?'

मालूम हुआ, संतोषी प्रधान का नौकर था और वह बिना बताए काम छोडकर घर बैठ गया था। पॉकेट तो हमारी गर्म हो चुकी थी, हमने अभियुक्त झबरेसिंह को तो हवालात में दाख़िल किया और दलबल सहित पुन: गाँव में पहुँचकर संतोषी पुत्र कजवासिंह को पकड़ लाए। मौक़ा अच्छा था, हमने उसे भी बलात्कार के केस में रखा और इकहरे बलात्कार को सामूहिक बलात्कार का कांड बना दिया।

हमने पूछा, 'आगे क्या हुआ दरोगा जी?'

'आगे क्या होना था', दरोगाजी बोले, 'चालान कर दोनों को जेल भेज दिया।'

'पर वह चतुराई कहाँ काम आई आपके?' हमने उत्सुकता व्यक्त करते हुए दरोगाजी से पूछा।

बोले, 'बताते हैं, बताते हैं, धैर्य रखो।'

दरोगा ने जेब से सिगरेट निकालकर सुलगाई, एक लंबा कश लिया। बोले, 'हमने अभियुक्त नंबर दो की डॉक्टरी जाँच नहीं कराई थी। पकड़ा और चालान कर सीधा जेल को रवाना कर दिया।

'मुक़दमा चला। न्यायिक दंडाधिकारी के यहाँ पेशी पड़ी। हमने ठाठ के साथ दोनों अभियुक्तों को अदालत के सम्मुख प्रस्तुत किया। हम जानते थे, क्या होना है?'

हमने पूछा, 'आप क्या जानते थे दरोगा जी कि क्या होना है?'

'अरे हम जानते थे कि पेशी पड़नी है सो पेशी पड़ गई।' दरोगा बोले, 'एक पेशी पड़ी, फिर दूसरी पेशी पड़ी, फिर तीसरी पेशी पड़ी। हम हर पेशी पर अभियुक्तों को जेल से अदालत में लाते और अदालत को उनके दर्शन कराकर वापस उन्हें जेल भेज देते। पाँच वर्ष गुज़र गए कोर्ट-कचहरी की यात्रा करते-करते, हमें भी और हमारे द्वारा पकड़े गए अभियुक्त को भी।'

'इस बीच उस पीड़ित बालिका का क्या हुआ?' हमने वारदात की कहानी के बीच उस कन्या को याद किया, जिसके साथ यह दुराचार हुआ था। दरोगा बोला, 'उसका और क्या होना था रे! जो कुछ उसके साथ होना था, वह तो हो ही चुका था। इससे अधिक और क्या हो सकता था।'

हमने पूछा, 'यह कहने से आपका क्या अभिप्राय है, दरोगा जी।'

अपनी मूँछों को एक और ताव देते हुए दरोगा जी मुँह-ही-मुँह में हिनहिनाए। बोले, 'तुम भी एकदम बाबले आदमी हो यार! जिस महिला के साथ बलात्कार हो चुका हो, असली या फ़र्जी, वह किसी और कार्य की थोड़ी रहती है समाज में। इज़्ज़त गई तो सब-कुछ गया। वह बेचारी हर पेशी पर अपने अभिभावकों के साथ अदालत में आती और अगली पेशी की तारीख़ सुनकर वापस चली जाती।'

'पाँच साल तो बहुत होते हैं, दरोगाजी! उसका विवाह?' अभी हमने अपना वाक्य पूरा भी नहीं किया था कि दरोगा फिर अपनी मूँछों में हिनहिनाया। बोला, 'अजीब उल्लू की दुम हो तुम! अरे भाई बलात्कारी पुरुष के विवाह तो एक छोड़ चार हो जाते हैं, पर बलात्कार से पीड़ित नारी को कोई नहीं पूछता, विवाह की मंडी में। समझे कि नहीं समझे?'

हम समझते तो पहले भी थे, पर यूँही बात से बात निकालने के लिए एक सवाल कर लिया था हमने।

बातचीत का सिलसिला पुन: जोड़ते हुए दरोगा ने घटना को थोड़ा और आगे बढ़ाया, बोला, 'वैसे केस हमने पूरी तरह गाँठकर लिखा था। हमने अपनी विवेचना में लिखा : कु. फूलवती, जिसकी आयु डॉक्टरी प्रमाणपत्र तथा उसके अभिभावकों के अनुसार चौदह वर्ष से अधिक नहीं है, जब दोपहर के समय अपने गन्ने के खेत से घास निकाल रही थी, तभी झबरेसिंह पुत्र कोबरासिंह निवासी पठारपुर तथा संतोषी पुत्र मोखा टहलते-टहलते घटना-स्थल पर आए और उन्होंने काम कर रही फूलवती को जबरन दबोच लिया। फूलवती ने अपने-आपको बचाने की बहुत कोशिश की, किंतु अभियुक्तों ने उसे नहीं छोड़ा और उसके साथ बारी-बारी से बलात्कार किया। अभियुक्त जैसे ही घायल कन्या को छोड़कर फ़रार होना चाहते थे कि शोर की आवाज़ सुनकर अमुक-अमुक तुरंत घटना-स्थल पर पहुँचे तथा अभियुक्तों का पीछा करते हुए उन्होंने दोनों को पकड़कर पुलिस

के हवाले कर दिया। दोनों अभियुक्त शातिर बदमाश हैं और इससे पहले भी छुटपुट अपराध कर चुके हैं।'

'पर वह चतुराईवाली बात तो इस घटना में कहीं आई नहीं दरोगा जी।' हमने दरोगा गुलदारसिंह से पूछा।

'आएगी-आएगी, धैर्य रखो।' वह अपनी आदत के अनुसार मूँछों को ताव देते हुए बोला-हमने सबूत के जो गवाह अदालत में पेश किए थे, वे बड़े घाघ टाइप के थे। जिरह में टस से मस होनेवाले नहीं। कार्रवाई शिनाख़्त में पूरे उतरे थे। अभियुक्तों के चेहरों को कपड़े में छुपा देने के बावजूद गवाहों ने उन्हें ठीक-ठीक शिनाख़्त किया। सफ़ाई के वकील की ऐसी-तैसी कर दी। जिरह में वह-वह गिरह लगाई कि आप सुनते तो हैरत से मुँह में उँगली दाब लेते।

'पर अंत में हुआ क्या?' हमने उतावलेपन से पूछा।

'बताते हैं, बताते हैं, धैर्य रखो।' दरोगा ने आदत के अनुसार फिर अपना यह वाक्य दोहराया। बोला, 'हमारी गोट तो उस समय पिट गई, जब पूरा सबूत गुज़र जाने के बाद अभियुक्त नंबर दो संतोषी पुत्र मोखा ने अपने वकील के माध्यम से यह प्रार्थनापत्र अदालत को दिया कि निर्णय से पहले उसका डॉक्टरी परीक्षण कराया जाए।

दरोगा यह वाक्य कहकर क्षणभर को रुका, फिर बोला, 'हम तुम्हें यह बताना भूल गए कि अदालती कार्रवाई के दौरान वकील सफ़ाई और न्यायालय ने हमसे पूछा था कि बलात्कार के आरोपी अभियुक्त नंबर दो का डॉक्टरी मुआयना क्यों नहीं कराया गया है और यदि कराया गया तो रिपोर्ट कहाँ है? जिस पर हमने अपनी चतुराई से काम लेते हुए उत्तर देकर न्यायालय को संतुष्ट कर दिया कि अभियुक्त नंबर दो चूँकि मौक़े से फ़रार होकर ग़ायब हो गया था और वह अगले दिन पुलिस की गिरफ़्त में आया, इसलिए उसने समय का लाभ उठाते हुए सबूत नष्ट कर दिया।'

'यह तो कोई बड़ी चतुराई नहीं हुई, दरोगा जी!' हमने निराशा-से भरे भाव में दरोगा गुलदारसिंह से कहा। वह बोला, 'अभी तुमने चतुराई देखी ही कहाँ है? बिल्ली बेले से बाहर अभी हमने निकाली ही कब है?'

हमने कहा, 'ज़रा जल्दी निकालिए, दरोगाजी।'

'निकालते हैं, निकालते हैं। धैर्य रखो।' दरोगा ने आदत के अनुसार फिर यह वाक्य दोहराया। बोला, 'संतोषी के प्रार्थनापत्र पर जब उसकी मेडिकल जाँच कराई गई तो जाँच रिपोर्ट देखकर हमारे हाथों के तोते उड़ गए। रिपोर्ट में लिखा था, 'अभियुक्त सहवास के योग्य नहीं है, जन्म से हिजड़ा है।'

हम रिपोर्ट का यह अंश सुनते ही अपने स्थान से दो हाथ ऊपर उछल गए। बोले, 'वाकई बहुत बुरे फँसे दरोगा जी आप?'

'अजी! फँसे ही नहीं। सर्विस पर बन आई। किसी निर्दोष व्यक्ति को झूठा फँसाने के अभियोग में अदालत पता नहीं हमारी कितनी ऐसी-तैसी करती, पर संकट के ऐसे समय में जब अधिकारी और हितकारी अपने और पराए सब हमारा साथ छोड़ गए थे, हमारी चतुराई ही काम आई।'

'कैसे?' हमने पूछा।

'वह ऐसे!' दरोगा बोला, 'हमने अरे क्या कहते हैं उसको, साला वह भला सा नाम है, वह कृत्रिम हाँ याद आया बायवरेटर, वायवरेटर मँगाया बाज़ार से और उसे कपड़े में लपेटकर सील किया, उस पर दो गवाहों के दस्तख़त कराए और उसका अभियुक्त के पास से बरामद होना दर्शाया। हमने तर्क दिया कि अभियुक्त संतोषी ने व्यक्तिगत रंजिश की बिना पर बालिका को शारीरिक क्षति पहुँचाने की नियत से बलात्कार में इस आले का प्रयोग किया।' जब हम यह तर्क दे रहे थे तो अदालत ठहाकों से गूँज गई। मानों हम सफ़ेद झूठ बोल रहे हों। दरोगा ने बात आगे बढ़ाई, अदालत ने प्रश्न किया, 'तुमने इसको अभियुक्तों के कपड़ों आदि सबूत की अन्य चीज़ों के साथ क्यों नहीं प्रस्तुत किया?'

हमने हाथ जोडक़र अर्ज की, 'ग़लती हो गई हुजूर।' मुक़दमा तो छूटा, पर हमारी जान बच गई। दरोगा ने मामले को अंतिम बिंदु तक पहुँचाते हुए कहा, 'जो न कर सके ख़ुदाई, वह करे चतुराई। समझे कि नहीं समझे?'

हम चूँकि समझ गए थे, इसलिए गर्दन हिलाकर मौन हो गए।

***

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : विभोम स्वर

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : जुबैर शेख़।

पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।

पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।

पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. **उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम :** पंकज कुमार पुरोहित। **पता :** रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 20 मार्च 2017

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित

(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

विलायती राम पांडेय और शुगर का झमेला

लालित्य ललित

कहते है न!

कुछ काम न करो, तब वज़न बढ़ जाता है और तो और कमीज़ें टाइट हो जाती हैं, पतलून आती नहीं। अब मियाँ कितनी कमर को अंदर को धकेले, ये कोई पालतू प्रजा तो है नहीं, कि डराया और वह डर गई।

यह कमर जब तक थी, थी और कमर नुमा थी, पर चटोरी जुबान ने पेट के माध्यम से देशी घी के पराँठे और लच्छा पराठा खा-खा के कमर को कमरा बना दिया था।

इधर आए-दिन पत्नी रामप्यारी से भिड़ंत हो जाती। कुछ करो, वरना दिक्कत में आ जाओगे। सोते-सोते भी पत्नी का ख़याल आता, बेशक वह मायके गई हो। राम-जाने कौन सी टेली पेथी थी जो पीछा ही नहीं छोड़ती थी। अच्छी शादी करवाई। जब नहीं करवाई थी, वे ही दिन बढ़िया थे, वोह रमता जोगी सा मन समंदर होता। अब मुसीबत गले लगा ली, कुछ होना न होना भी बेकार था। जब तक हो, सहो। ये हिंदुस्तान है साब। यहाँ पत्नियों की चलती है, क्या समझे। अगल-बगल में कोई नहीं था, अपने आप से बतियाने में बड़ा मन प्रसन्न होता है बाऊजी। कहते है न!

हींग लगे न फिटकरी और रंग भी चौखा!!

बदन भारी, हाय पांडेय जी। सबकी आँख की किरकिरी बने हुए थे। ज़ालिम बदन अपना, खा पी के बनाया है, तुम्हें क्या दिक्कत है। पर जी, आज अपने को दिक्कत नहीं, दूसरे को है, इसका वज़न क्यों बढ़ा, यह देर से क्यों आते है। इनकी पत्नी पार्क में कितनी देर सैर करती है और कितने ग्राम गप्पे लगाती हैं। शेयर करे भी तो किससे। अपना सूचकांक है ही भारी। बहरहाल अब लगी साँस फूलने। सुबह -शाम की सैर डॉक्टर ने पर्ची में लिख दीं-कम से कम चालीस मिनट की सैर ज़रूरी। अन्यथा कुछ भी हो सकता है।

इधर जब से पांडेय जी को डॉक्टर ने डराया था, भला आदमी ट्रेक सूट में आ गया। सुबह सैर करता तो भाटिया के कुत्ते से डर कर,चोपड़ा की कार के नीचे छिपा बैठता था, मन में आया भी कि एक छड़ी ले लूँ, कम से कम डरेगा तो सही, वरना दिमाग में बचपन का कीड़ा घूमता रहता। काटेगा तो 14 इंजेक्शन लगेंगे। कुत्तों से कौन कटवाए अपने को। अगर काट लेगा, महीने के अंतिम दिनों में तो रही सही बचत मारी जाएगी, डॉक्टर को दिखाने में।

बहरहाल महल्ले में चर्चा का विषय था-कि पांडेय जी को क्या हुआ-दफ्तर से आते ही ट्रेक सूट में उतर आते है, शाम को घूमने। कहीं ऐसा तो नहीं-वैसे कहते है कि प्यार वोह

संपर्क: नेशनल बुक ट्रस्ट,इंडिया, नेहरू भवन, 5, इंस्टिट्यूशनल एरिया, फेज-2,वसन्त कुंज, नई दिल्ली-110070
मोबाइल:9873525397
ईमेल: lalitmandora@gmail.com

नशा है जब हो जाए, कम है। महल्ले में चुगलियों का बाज़ार गर्म रहता। वैसे भी तापमान अपने यौवन पर था, जैसे किसी नवयौवना को जवानी एक दम से आई हो। पसीने में लथपथ पांडेय जी के चक्कर चालू थे।

पत्नी भी उनके भले में थीं। सैर करने जाते और वापसी में मिसेज़ का हाथ बटाते। सब महिलाएँ अपने-अपने पतियों की क्लास लेती-कुछ सीख लो,पांडेय जी से, दफ्तर से आते ही सैर को जाते है। भाभी जी का हाथ बटाते है, एक तुम हो निकम्मे कहीं के, जब देखो, थक गया हूँ, कितना काम था, डार्लिंग। पत्नियों को सब पता है, कि जो पति जितना प्यार से मनुहार करेंगे, उनका कहीं लोचा है। पर वे मौके की तलाश में रहती है, कि एक बार मौका मिले तो सही। किसी की हेकड़ी निकाली जाए, तभी बात बनेगी।

बात-बात में से निकल आई बात-दफ्तर जाने से पहले पत्नी ने पांडेय के सामने ब्रेक फ़ास्ट सजा दिया-इंग्लिश स्टाइल में-दलिया मीठे वाला और उसके ऊपर किशमिश और बादाम के टुकड़े। माँ-कसम पांडेय जी के मन में अज्ञात भावनाएँ जाग्रत हो चुके, इससे पहले ही मिसेज पांडेय ने पांडेय जी की उँगली पकड़ी और झट से हल्की से सुई चुभो दीं-जैसे ही कुछ सेकिंड में परिणाम आया-कहने लगी-है, भगवान्, यह क्या हुआ। तुम तो अपनी सैर का वक्त बढ़ाओ। देखा खाली पेट शुगर का लेवल 175 आया है, यह आना चाहिए कम से कम 100, बहुत ज़्यादा है। तो क्या नाश्ता ले जाओगी, अपना मन तो किशमिश और बादाम देख रोमांचित हो गया था, कहने लगी-अब तो खा लो, शाम से मीठा बंद, दफ्तर में फीकी चाय, आई बात समझ में। आई सब बात, अब चलूँ, नहीं फिर ट्रैफिक में फसूँगा।

बहरहाल दफ्तर पहुँचे ही थे, अपने बगल के कुलीग से बात दोहरा दी-अचानक ज़ोर से चिल्लाए, कहने लगे-यानी आप को भी शुगर डिक्लेयर हो गई, इतनी ज़ोर से बोले कि लगा कि इस बार के चुनाव लड़ने की टिकट मेरे नाम से किसी की सिफारिश पर मिल गई हो। सँभल जाओ, यह परहेज़ करो, अचानक से सीधा सा सम्पादक मित्र कोई नीम-हकीम बन उपदेश देने की मुद्रा में आ चुका था, कहने लगा-हमारी शुगर जैसे ही 130 क्रॉस होती है तो पत्नी वोह क्लास लेती है। बहुत ज़िम्मेवारी रहती है। कहीं कुछ हो गया हमें, तो घर का क्या होगा, बच्चों का क्या होगा कि क्या बताऊँ। मैं समझ चुका था, क्लास बढ़िया रहती होगी, इन मित्र की। कुछ न कुछ कहते रहे। सुबह की चाय का स्वाद जाता रहा और बेवजह का भाषण सुन मैसेंजर में किसी से दुआ सलाम हुई तो दूरस्थ बैठी मोहतरमा का संदेश-ओह, सुनके तकलीफ हुई, आप ऐसा कीजिए कि करेले का सेवन कीजिए और जामुन खाइए, किसी की क्या मजाल कि आपको शुगर नुक्सान पहुँचाए। कल ही किसी बाबा जी का चूर्ण लेकर आती हूँ। मेरे हसबेंड को भी हुआ था- इस चूर्ण को चटाने से इनकी शुगर जाती रही। हद है ज़माने की, जिसे देखो सब आपकी वाट लगाने को तैयार बैठे हो।

ज़माना भी अपना कमाल का है, बिन पैसे वाला पार्क में चक्कर लगाता हुआ नहीं थकता और पैसे वाले को जिम चाहिए, ट्रेड मिल चाहिए। उसके बिना उसका माहौल नहीं बनेगा।

जब-जब सड़क पर किसी मेहनत कश मज़दूर को देखता हूँ कि उसके तो सिक्स पैक अपने आप ही बन गए, उसे कहीं जाने की ज़रूरत नहीं पड़ी। यानी अपन जो सो काल्ड इंटेलेचुअल्स हैं, वोह थोड़े से इंसान बन जाएँ, थोड़े से ईमानदार, अपने प्रति, अपने कर्तव्यों के प्रति, मजाल क्या कोई शुगर पास फटकेगी, दिमाग दुरुस्त और सेहत चुस्त होगी। अच्छे विचार जितनी तेज़ी से आते उतनी ही तेज़ी से लुप्त भी हो जाते, जैसे एक ज़माने में कई कंपनियाँ आईं कि आपके पैसे कुछ दिनों में बेहतरीन इंटरेस्ट देने लगेंगे, कुछ समय दिया भी, उसके बाद कंपनियों की साँस फूल गई और वे सब अज्ञात दिशा को अंतर्धयान हो गईं, अब हम जैसे ग़रीबों का रक्तचाप बढ़ना स्वाभाविक था। पत्नी का साफ निर्देश था, समोसे बंद, बर्फी बंद, आगरे का पैठा बंद। मरता क्या न करता। मुँह पर कपड़ा बाँध लिया-मिठाई बंद, क्या पता उसकी ख़ुशबू से भी शुगर बढ़ जाए। नया ज़माना है,कुछ भी कहीं भी हो सकता हैं

पांडये जी को कभी-कभी उपदेश अच्छे लगते थे। उनका सैर अभियान जारी था। हाँ, अपने बगल के कुलीग के साथ की सुबह की मॉर्निंग टी अब छोड़ दीं, सोचना शुरू कर दिया-काहे पीए अपन फीकी-मीठी चाय। जब जल ही जीवन है। जब बातों के मूल में जल ही अनिवार्य। सो उन्होंने आज से जल पर ज़ोर शुरू कर दिया। वैसे भी अनुभवी लोगों का कहना है-जल ही जीवन हैं, सो साफ जल बेहतर सेहत की निशानी है। सुनने में आया है, विलायती राम पांडेय की शुगर कंट्रोल उनकी कड़ी मेहनत और मिसेज पांडेय की मशक्कत से कम हो गई। पत्नी को और बच्चों को ख़ुश करने के लिए पांडेय जी लेंस डाउन के लिए प्लान बनाने लगे। बच्चों का कहना था, उनके यार दोस्त भी जा रहे है, आप भी चलिए, कहीं न कहीं। गर्मी से आतंकित पांडेय जी भी थे, एक तो दफ्तर के एसी का कंडेनसर खराब था। एडमिन को कहा भी, कहते है मेंटेनेंस को कह दिया है, जल्द हो जाएगा, अब इस बात को भी 20 दिन गुज़र गए। परिवार की बात पर अमल किया और निकल गए, किसी पहाड़ की ओर। उनका मानना है कि घर के बिना जीवन बेकार है सो घर भी ख़ुश रहे और घरवाले भी। पता था, कहीं जाएँगे, तो चाँद पिटेगी सो अलग, पर अब जाए बिना कोई चारा भी नहीं था।

कार सर्राटे से अपने लक्ष्य की और दौड़ रही थी। बच्चों के सपने अलग। किसी के मन में ठंडी हवा तो किसी के मन मे शॉपिंग घूम रही थी। पर पांडेय जी के मन में था, चलो किसी बहाने गर्मी से मुक्ति तो मिलेगी, बेशक तीन दिन को घर से दूर निकल आए हो। मिसेज़ पांडेय ने अपना सर विलायती राम पांडेय के कंधे टिका दिया था। अब पांडेय जी आश्वस्त थे कि किसी भी भारी से भारी चिंता को जब चाहे कंट्रोल कर सकते हैं। गाना बज रहा था-तुझे जीवन की डोर से बाँध लिया है..... बाँध लिया है। आगे के बोल भूल चुके विलायती अब किसी अज्ञात अभिनेत्री के सपनों में विचरने लगे थे। यह विचरना ऐसे माहौल में हम भारतीय पुरुषों का जन्मसिद्ध अधिकार है, इस अधिकार को हम किसी को भी छीनने नहीं देंगे। कदापि नहीं।

***

टाइम सरेंडर्स ऐट द बैरेल और झूठ

दिलीप तेतरवे

सच बोल-बोल कर मैं थक गया हूँ। सच बोलने के असीमित घाटे मैं देख चुका हूँ। अनेक मुसीबतें सिर पर लाद चुका हूँ। बैकवर्ड सच्चा आदमी, समय के साथ बिलकुल ही नहीं चल सकता, चल क्या सकता घिसट भी नहीं सकता। आज सुबह से मेरा प्रिंसिपल है- झूठ बोलो, मस्त रहो! वैसे, मैंने एक गीत सुना था- झूठ बोले कौवा काटे, काले कौवे से डरियो। काले कौवे तो कहाँ उड़ गए, पता नहीं, और पक्षी संरक्षक भी उन्हें ढूँढ़ते हुए न जाने कहाँ खो गए! न काला कौवा है और न हरा तोता। शेष हैं सफ़ेद बगुले, सफ़ेद हाथी, सफ़ेद शेर और सफ़ेद झूठ- और हकीकत कहती है- चलती का नाम गाड़ी! जल-थल-नभ में चलनेवाली झूठों की सेडान कार दौड़ती, तैरती और उड़ती है और सच की साईकिल पर भी आफत है! पंचर कैसे बने?

आज सुबह से ही झूठ बोलने की प्रैक्टिस कर रहा हूँ। पर सच बोलते-बोलते जुबान इतनी गन्दी हो गई है कि झूठ बोलते-बोलते मैं सच बोलने लग जाता हूँ। इस सच-कैंसर से तबाह हूँ! ससुरा सच मेरे सिर से उतरता ही नहीं, जैसे शराब की लत हो जो सरकारी लताड़ से भी भी टसमस होने का नाम न ले। फिर भी, कहा गया है, वह भी इंग्लिश में कि 'प्रैक्टिस मेक्स अ परसन परफेक्ट'- इस अंग्रेज़ी कहावत को भी यह 'मूढ़ सच' मानने के लिए तैयार नहीं है और यह ढीठ ज़ुबान से उतरता नहीं! किन्तु झूठ को बाई हुक और क्रुक अपनी ज़ुबान में फिट करना है। क्या करूँ, किस झूठेश्वर बाबा के पास जाऊँ?

समय की पुकार है- झूठा है सब संसार! सो मैं जान गया हूँ -झूठे संसार में सच बोल कर अनदेखे स्वर्ग की सीट रिजर्व करने की भावना युक्ति संगत नहीं है। झूठ बोलिए और स्वर्ग की फैसिलिटीज़ बेड रूम में सजा लीजिए। अभी-अभी एक किताब बाबा असत्यानंद ने लिखी है, 'झूठ दी पॉवर'।यह शुद्ध-विशुद्ध झूठ बोलने की कला सिखलाती है।मानव को समय से जोड़ती है। समय से जुड़ाव ही ज्ञान तत्त्व है, जिसके लिए आदि काल से अनेकानेक महात्माओं ने तपस्या की और अचानक इस युग में बिना तपस्या किए मुझे झूठ का अति मूल्यवान ज्ञान प्राप्त हो गया है। मेरे गमले का बोंजाई वट वृक्ष अब पूज्य हो जाएगा, जिसके करीब मैं यह बहुमूल्य ज्ञान प्राप्त करते समय भटकाव में खड़ा था!

अब मुझे अपने पुरखे याद आ रहे हैं, सच बोलने की बीमारी तो मुझे पुरखों से ही मिली। जाने कब किसने मेरे पुरखों को भड़का दिया, भटका दिया कि स्वर्ग के चक्कर में वे

संपर्क: संपादक, अनवरत, 423-न्यू नगरा टोली, राँची-834001
मोबाइल: 09304453797
ईमेल: diliptetarbe2009gmail.com

यह भी भूल गए कि संसार तो झूठा है, यहाँ झूठ ही चलेगा। और वे मेरे डीएनए में सत्य-कैंसर का बीज बो गए। लेकिन, मैं इस कैंसर को मार के ही दम लूँगा, जैसे एक क्रिकेटर ने उसे क्रिकेट बॉल समझ कर, उसे बाउंडरी के उस पार पहुँचा दिया। सो मैं सत्य-कैंसर को क्रिकेट का बॉल मानते हुए उसे बाउंडरी के पार कर दूँगा ताकि वह मुझे बाउंडरी के पार न कर दे!

असत्य सिद्ध कई अमित्रों ने बताया कि झूठ बोलना आसान नहीं है। बड़े साहस का कार्य है। झूठ बोलने के लिए शर्म नामक शब्द को अपने शब्दकोश से निकालना पड़ता है। शिशु रूपी झूठ को जन्म लेते ही उसे भूखे, नंगे, याचक, बूढ़े, हाँफते-काँपते सत्य से लड़ना पड़ता है। इतने सारे निगेटिव तत्त्व सच के साथ जुड़े होने के बावजूद वह अपने अनुभव से अंतिम दम तक लड़ता है। झूठ को उसे हराने में कड़ा संघर्ष करना पड़ता है। यह भी जान लो कि सत्य बहुत दुखदाई होने के साथ-साथ बड़ा चिपकू भी है। एक बार अगर यह सिर पर सवार हो गया तो समझ लो कि कलिदेवता तुम्हारे सिर पर सवार हो गए हैं। झूठ एक पुख्ता बुनियाद की माँग करता है। उसे जन्म देने के पहले शोध करना पड़ता है कि उसे किस सत्य से टक्कर लेना है, उस सत्य की टेक्नीक क्या है, वह कौन से दाँव लगा सकता है, उसे अपनाने वाला मुर्ख किस कोटि का है। एक बात याद रखो मूर्खों में बड़ा दम होता है। सच तो बेबुनियाद खड़ा हो जाता है और कहता है- मैं तो शाश्वत हूँ। झूठ को अपनी बुनियाद पर खड़े होकर अपने को शाश्वत सिद्ध करने के लिए, बार-बार मिथ्यासिद्धों के पावन मुख से उच्चारित होना पड़ता है। उसका शाश्वत होना उसके बार-बार ध्वनित होने, गूँजित होने में निहित है। झूठ को सत्य के साथ-साथ समय से भी लड़ना पड़ता है। झूठ के साथ नाटकीयता भी ज़रूरी है। झूठ बोलना कला है। सत्य बोलना अ-कला है। विद्वानों ने कहा है कि कोई कला अश्लील नहीं होती, हम बताते हैं कि मिथ्याकला सबसे बड़ी कला है। इस कला से आप अपने को कलात्मक अभिव्यक्ति दे कर नाम-धाम, धन-धाम, कुर्सी-धाम आदि इत्यादि प्राप्त कर पृथ्वी पर ही स्वर्ग की सहूलियतों का आनन्द ले सकते हैं।

अब मेरे प्रिय हो चुके असत्य मित्रों ने मुझे बहुत-सा ज्ञान दिया है- महाभारत में झूठ की महिमा बतायी गई है! धर्मदेव के अवतार सत्यनिष्ठ युद्धिष्ठिर के मुख-माध्यम से विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण ने अश्वत्थामा के युद्ध में मारे जाने का भ्रमात्मक ब्रेकिंग समाचार पैदा कर दुर्योधन का साथ दे रहे गुरु द्रोणाचार्य को अपना हथियार डाल देने के लिए विवश कर दिया और फिर अर्जुन के हाथों उन्हें शहीद करवा दिया! यह है झूठ का पॉवर! झूठ के पॉवर का एक और एपिसोड महाभारत में है- बेचारे युद्धिष्ठिर को स्वर्गारोहण करते हुए अश्वत्थामा से सम्बंधित अपनी एक झूठ उक्ति के लिए अपनी एक उँगली बर्फ में गलवानी पड़ी- तो जान लो झूठ इतना शक्तिशाली है कि वह धर्मदेव के अवतार सत्यनिष्ठ युद्धिष्ठिर की एक उँगली को चबा जा सकता है! और पते की बात जान लो- सदा झूठ बोलने वाले के लिए बेनिफिट यह है कि उसे स्वर्गारोहण करने के लिए हिमालय पर कठिन चढ़ाई नहीं करनी पड़ती, न बर्फ में उँगलियाँ गलवानी पड़ती हैं, बल्कि झूठों को स्वर्ग की सहूलियतों से अधिक सहूलियतें तो अपने आवास में ही मिल जाती हैं! इंद्र बड़ी ईर्ष्या करते हैं, पृथ्वी लोक के असत्यवानों के ऐश्वर्य पर, उनकी सुख-समृद्धि पर और लक्जरी युक्त जीवन पर। एक और हक़ीक़त जान लो- चन्द्रदेव अपने द्वारा सम्पादित एक दुराचर के लिए एक काला धब्बा अपने चेहरे पर झेल रहे हैं, लेकिन झूठे को तो सत्यवान् सदासर्वदा गलत ही मानते हैं, फिर भी, उनका चेहरा सदासर्वदा चकाचक रहता है, बल्कि वे ही दूसरों के चेहरे को दागान्वित कर देते हैं- और जिन दागों को कोई फेसक्रीम मिटा नहीं सकता! और झूठ का एक बड़ा आयाम भी जान लो- झूठ स्वर्ग की सीढ़ी है।और सत्य? ख़ुद सोच लो कि वह कैसी सीढ़ी है और वह सीढ़ी सत्य साधक को कहाँ ले जाती है? जान लो, सत्यवानों को बराबर फोर्स्ड उपवास पर रहना पड़ता है और असत्यवानों को ज़्यादा उम्दा खाने के कारण डाइटिंग पर जाना पड़ता है! दोनों की लाइफ स्टाइल में बहुत फर्क है-आसमान और ज़मीन जितना। सत्य उद्योग का चाकर होता है, और झूठ अपने आप में उद्योग। झूठों की सत्ता होती है जिसके अन्दर सारे सत्यवान् हाथ-पाँव मारते रहते हैं. अरे! जितना मंथन करोगे, झूठ की उतनी ही महिमाओं का ज्ञान तुमको मिलेगा। झूठ की कला तुम्हारे दिमाग में फिट हो जाएगी। जब तुमको झूठ का ज्ञान प्राप्त होगा और तुम अगर मेहनत करोगे तो झूठाधिराज बन कर जीवनभर राज करोगे।

यह भी जानना आवश्यक है-हर सत्य अकेला जन्म लेता है और अकेला ही विस्मृत हो जाता है। और जब एक झूठ जन्म लेता है तो अपने साथ सौ झूठ को जन्म देता है, और असली दुनिया से लेकर आभासी दुनिया तक फ़ैल जाता है वायरस की तरह और वह ट्विटर और फेसबुक पर वायरल हो जाता है, चैनलों पर भी ब्रेकिंग न्यूज बन जाता है और आदमी का मूड बदल देता है! झूठ देश के इतिहास को उल्टा-पुल्टा कर सकता है। वह धर्म और संस्कृति को रीडिफाइन कर सकता है। झूठ इस ज़माने का सर्शक्तिमान ठोस तत्त्व है। वह लोगों के साथ है, और लोग उसके साथ हैं- झूठो नमः, झूठो नमः कर रहे हैं चतुर और सुखी लोग! अरे मूर्खो! सत्य को ढूँढना है और अपनाना है तो जाओ 'दीन के वतन में!' सो वत्स रूपी अमित्र! तुम झूठ का पुतला बनो, झूठ का दफ्तर खोलो, झूठ का पुल बनाओ, झूठ की पोट खोलो और आनन्द में रहो.....!

कसम असत्यदेव की, मैं अब झूठ और झूठ के अलावा कुछ भी नहीं बोलूँगा। मैं अपने शब्दकोश से सत्य शब्द को विस्थापित कर दूँगा, जैसे गरीब विस्थापित होकर भी अमीरों का कारखाना स्थापित करते हुए गरीबी के ब्लैक होल में गायब हो जाते हैं! और अब मैं तो कानूनविदों से निवेदन करूँगा कि गीता की जगह कोर्ट में शपथ लेने के लिए 'झूठ दी पॉवर' नामक ग्रन्थ का सदुपयोग किया जाए। इस महान ग्रन्थ के लेखक हैं युगनिर्माता महाऋषि सुमिथ्या जी 'असत्यव्रत'। यह किताब गीता को रिप्लेस करने के लिए सबसे उपयुक्त है, युगानुरूप है। एक टाइम मशीन द्वारा टेस्टेड है। जिसका नारा है-टाइम सरेंडर्स ऐट द बैरेल ऑफ़ झूठ!

***

एकलव्य कुमार की सच्ची कथा

कमलेश पाण्डेय

संपर्क: बी-260, पॉकेट-2, केंद्रीय विहार,
सेक्टर-82, नोएडा, उप्र 201304
मोबाइल : 9868380502

संस्थान की परम्परा ध्वस्त होने को थी। एकलव्य कुमार ने उसके एक विभाग के अध्यक्ष पद के लिए न केवल आवेदन किया था, बल्कि उसे लेकर गंभीर भी थे। ।

एचआर मुनि आहत थे। व्यवस्था की धुरी रहती आई परम्पराओं को चुनौती मिलना अशुभ संकेत हैं। परम्पराएँ और उन्हें पालने वाले नियम-विनियम-आदेशादि ऋषि-मुनियों और राज-पुरुषों की असीम मेधा और घनघोर राजनीतिक विमर्शों से जन्मते हैं, उन पर प्रश्न उठाने का किसी को क्या अधिकार है, अर्थात् कोई नहीं। बात यहीं समाप्त हो जानी चाहिए। एचआर मुनि तो संस्थान की नियमावली को देवताओं द्वारा सृजित मानते हैं, क्योंकि ये आंग्ल-देवों के काल से चलती आ रही परम्परा पर टिकी है। आई-सी-एस वर्ण के देवताओं का स्थान कालान्तर में सभी वर्णों में सर्वश्रेष्ठ आई ए एस कुल के अतिमानवों ने ग्रहण कर लिया था। यद्यपि संस्थान छोटा-सा है और इसकी चौहद्दी में मात्र अध्यक्ष का ही पद ऐसा है जहाँ इस वर्ण का कोई महापुरुष समा सके, किन्तु वो परम्परा ही क्या जो जल की भाँति हर स्तर पर आकार न ले। प्रशासनिक वर्ण-व्यवस्था भी अधोगामी होकर बही तो निम्न स्तर के उच्च पदों पर अब लोक-सेवाआयोग(लोसेआ) वर्ण के अन्य आश्रमों में दीक्षित सामंतजन भी विराजने लगे।

एकलव्य कुमार इस स्वायत्त संस्थान में प्रारम्भ से ही उपस्थित हैं। तीक्ष्ण बुद्धि,

अध्ययन-मननशील प्रवृत्ति और कठोर परिश्रम से संस्थान सम्बंधित समस्त ज्ञान अर्जित करने के उपरांत भी उनकी तृष्णा नहीं मिटी। वे सेमीनार-कक्षों में पीछे बैठ कर विमर्शों का सार गह लेते। आउटसोर्सिंग-पद्धति से लाखों मुद्राएँ देकर कतिपय प्रोफेशनल संस्थाओं से लिखवाए और दीमकों के लाभार्थ ग्रन्थागार में रखवाए गए शोधग्रन्थ भी एकलव्य कुमार चाट जाते। इस ज्ञान से वे उत्कृष्ट प्रकार के नोट्स बनाते, जिनका सदुपयोग कट-पेस्ट कला में निष्णात वरिष्ठ मुनिगण अपने आचार्यों को प्रसन्न करने और प्रगति-पथ पर आगे बढ़ने में करते। ऐसे एकलव्य कुमार को कनिष्ठ होते हुए भी गरिष्ठ दायित्वों से लादा जाता और वरिष्ठ पदों के अनुकूल न होते हुए भी कच्छप-गति से प्रोमोशन-पथ पर बढ़ते हुए वे ऐसे कूल तक पहुँच गए जहाँ से अगला पग वे किसी विभाग के अध्यक्ष के आसन पर ही रख सकते थे। पर ज्योंही वो पद रिक्त होता, सीधे आकाश-मार्ग से लोसआ कुल का कोई सामंत वहाँ उतर आता। समस्त नियमों को जानने वाले एकलव्य कुमार इस अलिखित नियम के आगे असहाय थे।

विदित हो कि एकलव्य कुमार प्रोमोटी नामक वर्ण से आते थे जो कुलीन थी भी और नहीं भी। इस वर्ण के व्यक्ति लोसेआ की हीन श्रेणियों में दीक्षित होते और कभी-कभी शुद्ध रक्त कुल के सामंतों से बच गए किसी ऊँचे पद पर प्रोन्नति पा जाते थे। ये पर्याप्त ज्ञानी और वर्षों एक ही पद पर कार्य करने के कारण अनुभव संपन्न भी होते। वही प्राय: संस्थानों को अपने कंधों पर ढोते थे। उधर मात्र एक परीक्षा उतीर्ण कर लोसेआ में दीक्षित हुए सामंत शुद्ध रक्त-कुल में प्रवेश करते एवं मसूरवती पर्वत पर प्रशासन-शास्त्र की दीक्षा लेने के बाद सर्वज्ञदेव की उपाधि पाते। इसके पश्चात अंतरिक्ष विज्ञान से लेकर चिकित्सा-शास्त्र तक किसी भी क्षेत्र से जुड़ा संस्थान उन्हें अध्यक्ष बना कर स्वयम् को कृतार्थ करता।

नियमों की लीला भी अपरम्पार है। आये दिन सम्राट कोई न कोई आयोग बैठा देते जो किसी पद पर नियुक्ति की नियमावली को झाड़ता-पोंछता, कुछ नियमों को संशोधित कर देता और कुछ को बदल भी देता। एकलव्य कुमार के संस्थान की प्रशासनिक संरचना पर भी इनका समानुपातिक प्रभाव पड़ता। प्राय: ये झाड़-फूँक कास्मेटिक-प्रकृति की होती, अर्थात् नियमावली के मूल सिद्धांतों और स्वरूप पर कोई आँच नहीं आती। यों सम्राट पुन:-पुन: घोषणा करते कि योग्यता ही चुनाव की एकमात्र अर्हता है, किन्तु वास्तविक चुनाव के अवसर पर अलिखित परम्पराएँ ही मानदंड होती थीं। इस बार की झाड़-पोंछ में सभी संस्थानों में विभागाध्यक्ष पद के उम्मीदवारों हेतु एक शोध-पत्र प्रस्तुत करना अनिवार्य कर दिया गया था।

एकलव्य कुमार ये जान कर उल्लसित भये। संस्थान में उनसे उत्तम शोध-पत्र कौन लिख सकता था। इधर अपने अर्जित ज्ञान और प्रचुर सामग्री से वे शोध-ग्रन्थ रचने बैठे, उधर संस्थान के एचआर मुनि को अपना आवेदन प्रस्तुत कर दिया। अंगद के पाँव सदृश टस से मस न होने वाले भारी-भरकम एचआर मुनि के कक्ष में खलबली का प्रकोप हुआ। बोर्ड-कक्ष में ''गॉड सेव द संस्थान नाउ।'' और ''हाउ कैन ही डेयर टू।'' जैसे उद्‌गार गूँजने लगे।

परम्परा से जो चुनाव तार्किक, सहज और प्राकृतिक था वो उम्मीदवार के लिए शोध-पत्र जमा करवाने की अनिवार्यता से संकट में आ गया। विभाग के कर्मकांडों के बारे में कुलीन सामंतों को कोई ज्ञान नहीं था, शोध पत्र तो दूर का पक्षी था। प्रथम दृष्टया एकलव्य कुमार ही एकमात्र निर्विवाद रूप से चुने जाने योग्य पात्र थे। एचआर मुनि चिन्तालीन भये। संकट से घिरी प्रशासनिक वर्ण-व्यवस्था की रक्षा हेतु वे सचिव मुनि महर्षि द्रोण आचार्या की शरण में गए।

यद्यपि एकलव्य कुमार ने श्रम और स्वाध्याय से ही समस्त ज्ञान प्राप्त किया था, परन्तु वे संस्थान के वरिष्ठतम ऋषि सचिव मुनि को यदा-कदा अपने गुरु कह कर संबोधित करते। वर्षों से संस्थान में कुण्डली आसन में विराजे सचिव मुनि तिकड़म-शास्त्र के भी विकट ज्ञाता थे। एकलव्य कुमार ने कुछ वर्ष उनके अधीनस्थ सेवा की थी, जिसके परिणामस्वरूप उन वर्षों की सीआर-पत्री पेंडिंगावस्था में था। अपनी ग्रीवा को सचिव मुनि के हाथों में पाकर उनके पास अपने ज्ञान और अनुभव का श्रेय सचिव मुनि को देने के सिवा कोई चारा न था।

सचिव मुनि अपने एक उच्च-रक्त-कुल सखा के भांजे अर्जुन सिंह को उस पद पर शोभायमान देखना चाहते थे, जिस पद के एकलव्य उम्मीदवार बन बैठे थे। अर्जुन किसी सुदूर स्थित जनपद में पोस्टित एक शापग्रस्त राजकुमार थे जिन्हें राजधानी में लौटा लाने का यही एक मार्ग था। जब सचिव मुनि ने एचआर मुनि से मंत्रणा की तो अनिवार्य शोध-पत्र का प्रश्न उठ खड़ा हुआ। तब सचिव मुनि ने एकलव्य कुमार को अपने कक्ष में बुला कर पूछा कि ये जानते हुए भी कि इस उच्च पद पर कोई हीन प्रोमोटी-कुल का व्यक्ति कभी आसीन नहीं हो सकता, वे क्यों उम्मीदवार बन बैठे हैं?

अपनी पात्रता पर आश्वस्त एकलव्य कुमार ने सचिव मुनि से आग्रह किया कि इतने वर्षों की सेवा के रिवार्ड-स्वरूप रिटायरमेंट से दो वर्ष पूर्व तो उन्हें अध्यक्ष के आसन पर बैठने दिया जाए। तब सचिव मुनि ने उन्हें विदेश-प्रवास व प्रशिक्षण का प्रलोभन दिया, न मानने पर परम्परा की दुहाई दी, पर एकलव्य कुमार टस से मस न हुए। अंतत: सचिव मुनि को ब्रम्हास्त्र निकालना पड़ा। आसन के नीचे से एकलव्य कुमार की सीआर-पत्री निकाल कर बोले, ''हे एकलव्य कुमार, ये पत्री देखते हो। इसमें दो-चार एंट्रीज़ इधर-उधर कर दूँ तो तुम्हारे ग्रह-योग ऐसे बन जाएँगे कि ये उच्च पद तो क्या, पेंशन भी हस्तगत न होगा। सो, इस पद का लोभ छोड़ दो। अपने क्षोभ व मन की शांति के लिए इसे मेरी गुरु-दक्षिणा समझ लो।''

ये सुन कर एकलव्य कुमार भयभीत होकर उनके समक्ष नतमस्तक भये। उचित अवसर जानकर सचिव-मुनि ने उन्हें पद की पात्रता के प्रयोजन से लिखे अपने शोध-पत्र को प्रस्तुत करने का आदेश किया और प्रस्तुत किये जाने पर उसे वहीं छोड़ कर प्रस्थान करने का आदेश दिया।

कहना न होगा कि उसी शोध-पत्र का उपयोग कर अर्जुन सिंह की अर्हता परिपूर्ण हुई और वे विभागाध्यक्ष के आसन के सर्वथा योग्य सिद्ध होकर चुन लिये गए और सम्पूर्ण टेन्योर उस पर दर्प-पूर्वक विराजे।

***

हिन्दी साहित्य का बाज़ारकाल

भरत प्रसाद

नई सदी, नई ज़मीन, नया आकाश, नया लक्ष्य, नई उम्मीदें, नई आकांक्षाएँ। यकीनन मौजूदा सदी ने मनुष्य और उसके जीवन के प्रत्येक पहलू को नएपन की आँधी में उलट-पलट कर रख दिया है। परम्परागत मूल्य, मान्यताएँ, रिवाज, संस्कार और तौर-तरीके विलुप्त प्रजातियों की नियति प्राप्त करने वाले हैं। आगामी पचास वर्षों के अन्दर करोड़ों वर्ष पुरानी धरती पर ऐसा अभिनव मनुष्य खड़ा होने जा रहा है - जो 'न भूतो न भविष्यति' के मुहावरे को चरितार्थ करेगा।

सृजन का ज़हर है बाज़ारवादः

सृजन नैसर्गिक उर्जा है, प्राकृतिक उन्मेष और अलौकिक आग है। जेनुइन सृजन विशुद्धतः नैसर्गिक विस्फोट है। अप्रत्याशित, अज्ञात और अलक्षित रौशनी, जो कब, किस में, किस दर्जे तक प्रकट हो उठे, कह पाना मुश्किल है। नैसर्गिक होते हुए भी सृजन अभ्यास साध्य काबिलियत है - जो परिश्रम, साधना, धुन, लगन और ज़िद के बल पर असली रूप में सुरक्षित रह पाती है। सृजन अनवरत काँपती हुई लौ के मानिंद होती है। यह ऐसी हठीली आग है, जिसे बिरला ही सुलगा पाता है उसे दहकता गोला बना पाता है। सृजन शक्ति के पोषक तत्त्व हैं - उद्दाम भावुकता, ज़मीनीपन, आत्मधिक्कार, सृष्टिधर्मिता और दुस्साहसिक कल्पनाशीलता। इंकार का विवेक है तो सृजन है, सच से आँख मिलाने का हौसला है - तो सृजन है, यथार्थ की नई परिभाषा गढ़ने की ज़िद है तो सृजन है। प्रकृति के बीच पोषित सृजन शक्ति जहाँ सर्वाधिक मौलिक रूप में सक्रिय रहती है, वहीं सांसारिकता का व्यामोह सृजन की नैसर्गिक चेतना को दिशाहीन और कुंद बना देता है। भौतिक ऐश्वर्य का स्थूल आकर्षण, मोहजाल और जादू रचनात्मक व्यक्तित्वों को कुछ इस कदर दिग्भ्रमित करता है कि उस पर भौतिक माया का अखण्ड नशा छा जाता है और कई बार तो रचनाकार इस माया को निरन्तर हासिल करते रहने के लिए ही सृजन को मोहरा बनाता है। बाज़ार ने मनुष्य को सुख, सुविधा, ऐय्याशी, का कौन सा स्रोत बाकी रखा है ? फ्रिज, कूलर, टी. वी., वाशिंग मशीन, कार, मोबाइल अब घरेलू सुविधाओं की सामान्य श्रेणी में गिने जा रहे हैं। कम्प्यूटर, लैपटॉप के बिना विद्यर्थियों के दिन सुकून से कटते ही नहीं। यांत्रिक विज्ञान और कम्प्यूटर क्रांति ने जीवन में सुविधाओं का ज्वार ला दिया है। सी. डी. की सुविधा आउटडेटेड है ; अब 'पेनड्राइव' की लोकप्रियता पृथ्वी की परिधि माप रही है। हार्डवेयर

संपर्कः एसोसिएट प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग - 22 (मेघालय)

और साफ्टवेयर की असाधारण तकनीकी ने मानव ज्ञान की गति को विद्युती बना दिया है। मेमोरी कार्ड में हज़ारों गाने, फ़िल्में, चित्र, पुस्तकें, पत्रिकाएँ, वीडियो एक ही साथ लिए जा सकते हैं। आज तक के अर्जित ज्ञान को मेमोरीबद्ध करने की क्षमता यांत्रिक विज्ञान ने हमारे हाथों में दे दी है। किन्तु ग़ौर करने लायक पहलू यह है कि अव्वल दर्जे वाली रचनात्मक मेधा कहाँ विलुप्त हो गई ? क्यों अन्तर्धान हो गई ? समकालीन हिन्दी साहित्य अपनी किसी भी विधा में कालजयी सर्जक हासिल करने के लिए तड़फड़ा रहा है तो क्यों ? कविता में मुक्तिबोध और नागार्जुन के बाद, पूरे 40 वर्षों के दौरान एक भी सर्वस्वीकार्य अव्वल कवि नहीं ? आलोचना में रामविलास शर्मा और कथा साहित्य में रेणु के बाद चमकता - रौशन करता एक भी ध्रुव तारा नहीं ?

भौतिक सृष्टि के इतिहास में एक से बढ़कर एक सृजन के चमत्कार प्रकट हुए हैं और आगे भी अनिवार्यत: होंगे। बाज़ारवाद तो क्या ? सार्वभौमिक बाज़ार का युग छा जाए समूचे विश्व में, तब भी सृजन के आश्चर्य साकार होते ही रहेंगे। बाज़ारवाद ने मनुष्य की भौतिकप्रेमी आकांक्षा में समुद्रवत् उफान ला दिया है - यह ध्रुव सत्य है ; किन्तु इसी निराशा के घटाटोप के बीच कोई इंकारी दूरदर्शिता का अनम्य व्यक्तित्व ज़रूर तन खड़ा होगा, जो ठीक बाज़ारवाद के बीच, बाज़ारवाद के दर खिलाफ होगा, जो भौतिकता की चुम्बकीय माया के चक्रव्यूह में अकेला लड़ेगा, जो प्रलोभनों की भीड़ में निर्लिप्त वैरागी की तरह अकेले कबीरी राग छेड़ेगा, जो युग के प्रत्येक अन्धकार का जवाब अपने रौशन आत्मा की अचूक वाणी से देगा। प्रकाश के पक्ष में घूमती रहने वाली पृथ्वी की अमर रचनामयी क्षमता पर अखण्ड विश्वास न करने का कोई कारण ही नहीं हैं।

मन में न जाने कितने गहरे पैठे हुए इस अनंत विश्वास के बावजूद यह मानने को विवश होना पड़ता है कि बाज़ारवाद सृजन का ज़हर है। वह न सिर्फ सृजन की कल्पनाशीलता को भोंथरा कर देता है, न सिर्फ सृजन के उन्मेष को रोक देता है - बल्कि सृजन में विविधता लाने वाली कलात्मकता को भी सोख डालता है। दरअसल बाज़ारवाद किंकर्तव्यविमूढ़ कर देने वाला ऐसे चित्ताकर्षक महाजाल है - जो मनुष्य को अपने आप से दूर बहुत दूर ले जाता है, जो अपने को पहचानने वाली अन्तर्दृष्टि पर पर्दा डाल देता है, जो स्वीकार्य और अस्वीकार्य का निर्णयात्मक विवेक समाप्त कर डालता है - जो वर्तमान समय में अपना योगदान देने के संकल्प का अपहरण कर लेता है। यह बाज़ारवाद बौद्धिक, मानसिक, आत्मिक और शारीरिक रूप से मनुष्य को अघोषित गुलाम बनाता है - आज़ाद, अधिकार सम्पन्न, शक्तिशाली, सम्प्रभु और सर्वशक्तिमान गुलाम। बाज़ारवादी युग का मनुष्य किसी सत्ता, साम्राज्य या सरकार का भले गुलाम न हो- किन्तु वह ईश्वरनुमा बाज़ारवाद का घनघोर गुलाम बन चुका होता है। बाज़ारवाद की यह आकंठ गुलामी उसे मनुष्य के स्तर पर बौना कर डालती है। मनुष्य होकर भी वह विपरीत मानव बनने लगता है। न्यूनतम मानव मूल्य धारण करने लायक भी वह नहीं रह जाता। बाज़ारवाद की गिरफ्त में सोते हुए भावशून्य मानव के लिए मानवीय संबंध खेल से ज़्यादा कुछ नहीं हैं। उसके लिए न विश्वास की कोई कीमत है, न पारिवारिक- सामाजिक कर्तव्यों की और न ही वैयक्तिक ज़िम्मेदारियों की। यह बाज़ारपरस्त गुलाम अपनी आत्मा के निर्णय के अनुसार कदम उठाने को आज़ाद नहीं है - क्योंकि नाप-तौल, गुणा-भाग, जोड़-घटाना, में बेतरह रमी रहने वाली उसकी सौदागर आत्मा बाज़ारवाद की माया के हाथों बिक चुकी होती है। आज मनुष्य के पारिवारिक, सामाजिक, वैचारिक और राजनीतिक ताने-बाने के नष्ट-भ्रष्ट, दिशाशून्य एवं अर्थहीन हो जाने का कारण यही बाज़ारवादी गुलामी है। बाज़ारवाद हमें आत्मिक रूप से पंगु बनाकर गूँगा भी कर डालता है, हमारे कदमों से दिशाओं की भूख छीन लेता है ; हाथों से रचनात्मक चमत्कार की संभावना को खत्म कर देता है। उद्योग ; प्रौद्योगिकी, यंत्र, और तकनीकी की असाधारण ताकत पर निर्भर यह बाज़ारवाद स्वयं निर्जीव सत्ता होते हुए भी आज समस्त सृष्टि की नियति को संचालित कर रहा है। अपने पूँजीपरस्त हृदय की धड़कनों पर टिका बाज़ारवाद मनुष्य को पूँजी का पुतला बनाने की ओर अग्रसर कर रहा है। चूँकि बाज़ारवाद पूँजी की महामाया पर टिका है - इसीलिए उसका प्रथम और अन्तिम लक्ष्य पूँजी की अपराजेय सत्ता को बरकरार रखना है। यह पूँजी व्यक्ति और उसके व्यक्तित्व के बहुमुखी विकास का जब तक 'साधन' है - तब तक वह हृदय, मस्तिष्क और संवेदनशीलता को दिशाहीन नहीं करता, किन्तु वह जैसे ही साध्य का स्थान हासिल कर लिया सबसे पहले हमारे नैसर्गिक विवेक को लील जाता है। और जिस व्यक्ति ने हृदय में अभिनव एहसास की ताज़गी, उध्र्वगामी चेतना और अदूषित अन्तर्दृष्टि को खो दिया - वह सर्जक हो या आम इंसान- ज़िन्दा रहने का मतलब ही खो दिया। आज दिन-ब-दिन ऐसे ही धनान्ध रचनाकारों की फौज बढ़ती जा रही है- जो नाम और दाम की कमाई करते-करते अपने अन्त:व्यक्तित्व की अलौकिक ताज़गी ही खो बैठे हैं। विष्णुचन्द्र शर्मा के इस धारदार निष्कर्ष का कुछ तो कारण है - 'एक खाया-अघाया वर्ग लेखकों में भी है, जो सोचना छोड़ चुका है। वह पुरस्कार के लिए जीता है और पश्चिमी जीवन पद्धति के लिए सौदा पटाता है। वह फ्रांस से आता है और एक सूचना प्रसारित कर अपने अभिजात वर्ग में सो जाता है। (सर्वनाम, जुलाई-सितम्बर, 2005) व्यक्तिगत हित का बलिदान, जहाँ भीतर से मनुष्य की रचनात्मक शक्ति को बल देता है, वहीं निजी लाभ का अन्धापन उसकी रचनात्मक क्षमता को घुन के माफिक चाल खाता है। लेखक के सामने आज आत्मप्रचार का दबाव है, बाज़ार में अपने नाम का सिक्का चलाने की हड़बड़ी है ; ढंग से खड़े होने लायक न होकर भी दीर्घ अवधि तक स्थापित रहने की सनक है, छपकर, पुरस्कृत होकर, व्याख्यायित, बहुचर्चित और उद्धृत होकर आज का लेखक सृजन के मार्केट में अन्तिम साँस तक बने रहना चाहता है। मार्गजनक रचनात्मकता और धनधर्मी बाज़ारवाद अपनी प्रकृति में एक दूसरे के जानी दुश्मन हैं। आज का रचनाकार इस सार्वकालिक सत्य को न समझ पाते हुए दोनों को एक साथ साधने की जुगत में लगा हुआ है; जो कि असम्भव से कई कदम आगे असम्भव है।

व्यक्तित्व का असाधारण साधारणीकरण:

यह बारम्बार दोहराया जाता है कि आज के साहित्य का समाज पर कोई प्रभाव नहीं रह गया है। आज समाज, संस्कृति, व्यवस्था और व्यक्ति के निर्माण में साहित्य की निर्णायक भूमिका लगभग समाप्त हो चली है। अर्थात् समाज को अब साहित्य की अब पहले जैसी जरूरत नहीं रही। समाज के प्रति साहित्य की सिमटती भूमिका को लेकर उठे हुए ये सभी प्रश्न, चिंताएँ और निष्कर्ष वाजिब हैं। स्वाधीनता के बाद से ही साहित्य की भूमिका सवाल के दायरे में आने लगी है। आज़ादी के बाद किसी भी दौर या दशक में साहित्य ने सीधे-सीधे समाज की चेतना को नेतृत्व दिया हो और अपनी निर्णायक भूमिका निभाते हुए सामाजिक परिवर्तन का नज़ारा पेश कर दिया हो- ऐसा दिखाई नहीं देता। दलित साहित्य ने दलित समाज और उनकी संस्कृति के प्रति प्रबुद्ध वर्ग को संवेदनशील, अवश्य किया है- किन्तु इससे क्षितिज की रेखा पर जीती हुई साँवली दुनिया की तस्वीर सचमुच बदल गई हो, ऐसा कहाँ दिखाई देता है ? सामाजिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक या मानसिक चेतना को प्रज्ज्वलित करने में सबसे निर्णायक भूमिका सदा ही साहित्य और दर्शन की रही। दुनिया के एक नहीं दर्जनों विशाल देश युगारम्भकारी साहित्य और नवोन्मेषी दर्शन के आलोक में अपने गौरव की दुर्लभ ऊँचाईयाँ हासिल किए हैं। कम से कम रूस, फ्रांस, इग्लैण्ड और भारत का इतिहास तो यही है।

देश के मन, चित्त, आकांक्षा, सपने और स्वभाव को रचने वाला साहित्य ही युगधर्मी साहित्य कहा गया। इस बात में कुछ भी नयापन नहीं कि साहित्य हालात-ए-वक्त की धड़कन है- जिसमें तत्कालीन यथार्थ को धड़कता हुआ सुना जा सकता है। कई बार इतिहास की मोटी-मोटी पुस्तकें समय की आन्तरिक हकीकतें बताने से चूक जाती हैं तो यह दायित्व साहित्य पूरा करता है।

साहित्य अपने आप में कोई स्वतंत्र कला नहीं है - वह भी अपने मूल्य, महत्त्व, गौरव और अमरता के लिए किसी न किसी व्यक्तित्व पर ही निर्भर है। लेखक के व्यक्तित्व का स्तर अन्ततः साहित्य के स्तर को तय करता है। इतना ही नहीं, लेखक के भीतर अवस्थित भावना, कल्पनाप्रवणता, स्मृति की तीव्रता और असाधारण सूक्ष्मता के अनुपात में ही साहित्य का क़द सुनिश्चित होता है। साहित्य समाज के हर तबके तक पहुँचे, हर वर्ग, हर समाज, हर जाति, के बीच समान रूप से जगह बनाए, इसके लिए ख़ुद लेखक को अपने व्यक्तित्व का असाधारण रूप से साधारणीकरण करना होता है। उसे अन्दर-अन्दर अपनी भावनाओं को मिट्टी के कण-कण में भिन जाने वाले पानी की तरह विस्तार करना पड़ता है। मन-मस्तिष्क को सैकड़ों दिशाओं में कुछ इस कदर बिछा देना होता है- मानों वह समस्त अलक्षित तथ्यों, सत्यों और रहस्यमय मर्मों का अखण्ड साक्षात्कार कर रहा हो। लेखक सिर्फ एक शरीर, एक हृदय, एक मस्तिष्क, एक आत्मा और एक सोच वाला ही रह गया तो फिर क्या लेखक हुआ ? वह तो अबाध विचरण करता है अपने सम्पूर्ण वजूद के साथ अन्य शरीर में, घटना की शिराओं में, निर्जीव वस्तुओं की काया में, रहस्यों की माया में, दृश्य और अदृश्य में, विशला और सूक्ष्म में, सत्य और असत्य में, आदि और अनंत में। लेखक के आत्मान्तरण की कोई सीमा नहीं, कोई शर्त या बंधन नहीं, कोई पूर्णविराम नहीं। अपने समय की आवाज़ वही रचना बनती है; जिसका रचनाकार ख़ुद साकार और निराकार, शरीरी और अशरीरी सत्ता में प्रवेश करने की क्षमता रखता हो। जो अपनी जुबान से नहीं, विषयों की जुबान से लिखता हो। प्रत्येक विषय की अपनी मौलिक वाणी होती है - वह उसी वाणी में बात करना चाहता है, किन्तु उसके पास हमारी तरफ जुबान नहीं है। जिस क्षण लेखक ने विषय को उसकी वाणी में अभिव्यक्ति दे दी, समझिए-युगान्तकारी रचना का जन्म हो गया। विषय हमसे किस भाषा में बोल रहा है- यह जानने के लिए विषय को उसके इतिहास, भूगोल, व्याकरण और गणित के साथ आत्मसात करना पड़ता है। एक प्रकार से सुमिरना पड़ता है विषय को, ध्यान के शिखरत्व और संवेदना के अतल आवेग के साथ। मौजूद सदी के महा बाज़ारवाद ने रचनाकार के साधारणीकरण की क्षमता को बाकायदा सोख लिया है। जिस साधारणीकरण के बूते वह न सिर्फ सर्वजन ज्ञानाय अपनी रचना का ज़मीनीकरण करता था, बल्कि ख़ुद के व्यक्तित्व को भी पानी बनाए रखता था - आज विलुप्त और नष्ट हो रहा है। बाज़ारवाद न तो व्यक्तित्व के साधारणीकरण की इजाज़त देता है, न ही सृजन के साधारणीकरण की।

वह रचनाकार और रचना दोनों को 'स्पेशल' दिखने के लिए प्रेरित करता है। यह दिखता, चमकता, झलकता हुआ स्पेशलाइज़ेशन लुभाने के लिए, निगाहों को खींचने के लिए और बुद्धि को विवेकशून्य दीवाना बनाने के लिए है। सर्जक के भीतर नैसर्गिक तौर पर कूट-कूटकर भरी असीम और अप्रत्याशित मौलिक दृष्टि का जितना क्षरण बाज़ारवाद ने किया है, उतना भौतिक मायाजालों के किसी भी रूप ने आजतक नहीं किया है। सर्जक अपनी रचना को स्पेशलाइजेशन के साँचे में इसलिए नहीं गढ़ रहा कि - वह साहित्य में कोई अभूतपूर्व आयाम स्थापित होगा, बल्कि वह इसलिए विशेषीकरण कर रहा है कि रचना बिके, बेस्ट सेलर का रुतबा हासिल करे, मार्केट की स्टार पुस्तक सिद्ध हो, रातों रात आसमान में चाँद-सितारों की जगह बना ले, और पलक झपकने, उठने के बीच उसकी लाखों प्रतियाँ पाठकों के हाथों में विराजमान दिखें। लद-फन गए सृजन के वे दिन, जब बाज़ार की अपसंस्कृति के खिलाफ आग उगलने वाली कृतियों का अपना रुतबा होता था, जो बाज़ार की माया से दूर गुज़र बसर करने वाले बेखास भारतीय की जीवन संरचना को साकार करके कालजयीपन की उपाधि पाती थीं, अब तो वही रचना कालजयी है, जो आजजयी है, भीड़जयी है, प्रचारजयी है और सबसे बढ़कर मार्केटजयी है। रचनाकार को यदि सचमुच साहित्य के गिरते स्वास्थ्य और घटते कद को बचाना है तो अपने व्यक्तित्व का अभूतपूर्व साधारणीकरण करने के साथ-साथ अपने सृजन का भी साधारणीकरण करना होगा। सृजन का यह साधारणीकरण सर्वप्रचलित, सर्वज्ञात और सर्वसामान्य विषयों का सम्मान करने एवं उनकी अभूतपूर्व मीमांसा करने से आरम्भ होता है - जैसा कि कथा साहित्य में प्रेमचन्द, रेणु और शरतचन्द ने किया और कविता के क्षेत्र में कबीर, तुलसी, जायसी एवं नागार्जुन ने। साधारण के असाधारण मूल्य की स्थापना सिर्फ दूरदर्शी चेतना का

अनमोल कलाकार ही कर सकता है।

बाज़ारपरस्त साहित्य का कल:

सृजन का कालजयी होना बहुत दूर की बात, अब उसका आजकलजयी होना ही संदिग्ध हो गया है। दैनिक अखबार की घटनाओं की तरह रचनाएँ बारिश की शक्ल में प्रकट हो रही हैं। उन पर चर्चाएँ, गोष्ठियाँ एवं समीक्षाएँ भी कुछ इसी फटाफट वाले अंदाज़ में। साल भर के अन्दर या साल बीतते-बीतते शून्य बटा सन्नाटा। रचनाकार गद्गद् कि 25-30 समीक्षाएँ उसकी किताब को त्रिकालजयी सिद्ध करने के लिए काफी हैं। बाज़ारोन्मुख आलोचक तृप्त कि उसने मित्रता, स्वार्थ और गठजोड़ का बारीकतम ख़याल रखते हुए रचना को दुर्लभ कृति की श्रेणी में पहुँचाकर बेमिसाल दायित्व निभा दिया और प्रकाशक आनन्दित कि उसके द्वारा प्रकाशित बहु समीक्षित पुस्तकों पर जहाँ-तहाँ से लखटकिया आर्डर सुनिश्चित। अपनी पुस्तकों पर पकड़-पकड़ कर समीक्षा उगलवाना और सम्पादकों को 'सेट' करके उसे छपाने का जुगाड़ गाँठना अधिकांश लेखकों की नियति बन चुकी है। सम्पादक को सिर्फ किताब भेज कर आलोचना के दो शब्द पाने का ख्वाब बुनने वाला लेखक शर्तिया पिछड़ा हुआ माना जा रहा है। हालात तो इस ऊँचाई (?) तक पहुँच गए हैं - कि 'मैंने तुम पर लिखा'- अब तूँ भी मेरे ऊपर लिख। मैंने साक्षात्कार में तेरा नामोल्लेख किया है- तू अपने लेख में मुझे अमरता की गद्दी पर अपने हाथ से उठाकर बिठा।' आज वरिष्ठ रचनाकारों में ऐसे अनेक चमकते नाम हैं जो अपनी ढोल पिटवाने के लिए देश के शहरों, कस्बों, गाँवों में संघर्षरत युवा नामों को अपनी महिमा और मान्यता के जाल में फँसाते हैं, उनकी पुस्तकों का ब्लर्ब लिखते हैं, अपनी पत्रिकाओं में, सभाओं में या नियमित कॉलमों में उसका नाम-गायन करते हैं और बदले में जगह-जगह अपनी कृतियों की समीक्षाएँ, अपने व्यक्तित्व के असाधारणत्व पर लेख लिखवाते हैं। युवा अंधभक्त और बुर्जुग काव्येश्वर के ऐसे अबूझ स्वार्थतंत्र को धन्य-धन्य कहें या ? इस तंत्र का जन्मदाता है बाज़ारवाद। प्रचार के ज्वारीय वातावरण पर टिका साहित्य अपनी स्तरीयता में दो तो क्या एक कौड़ी का भी न होने के बावजूद पाठक के दिमाग पर कितना मादक प्रभाव छोड़ता है- इसका सबसे प्रत्यक्ष उदाहरण है - इक्कीसवीं सदी का हिन्दी साहित्य। प्रसिद्ध आलोचक विजय कुमार ने बाज़ारवादी युवा पीढ़ी की दर नंगई का जैसा नज़ारा पेश किया है- वह देखिए - 'नए और युवा कवि का दुर्भाग्य यह है कि हिन्दी में अब एक भयावह नैतिक स्खलन का दौर है। चारों तरफ केवल उत्सवधर्मिता है। अफरातफरी और धमा-चौकड़ी मची हुई है। प्रत्यक्ष और परोक्ष तरीकों से साहित्य के मठाधीशों द्वारा अपनी शक्ति संरचनाओं का अश्लील प्रदर्शन है।' (नया ज्ञानोदय, मई-2007,पृ. 12)

जुगाड़ से लिखने, तिकड़म से छपने और जोड़-घटाना-गुणा-भाग की कलाकारी से स्थापित होने का समय हमारे-आपके ठीक बीच तनकर खड़ा है। आज जो लेखक व्यवहार निभाने में अप-टू-डेटेड नहीं है, जो सम्पादकों, सृजनेश्वरों को साहित्येतर सुविधाएँ उपलब्ध नहीं करा सकता- जीवन भर कलम पकड़कर रोने के लिए तैयार रहे। आजकल वह कौन सी महामाया का चक्र माहौल में घूम रहा है कि बेमिसाल सृजन की आग पहचानने वाली आँखें ही नहीं बची हैं। जिस कलम में तब्दीली लाने वाली पदचाप है, उसे न आलोचक सुन पा रहा, न ही साहित्य जगत। जिस रचना में वक्त से अपलक निगाहें मिलाने का माद्दा है- उसे गुमनामी के कूड़ेदान में फेंकने की साजिशें हो रही हैं। जिस शिल्पी में समय की मुकम्मल प्रतिमा स्थापित करने की दुर्लभ क्षमता है वह आम पाठकों को छोड़कर किसी को फूटी आँखों नहीं सुहा रहा। हालात के बदतर से बदतर होने का आलम यह कि जो साहित्य के संकट पर ताली पीट-पीटकर रो रहा है- वही उदात्त अर्थों से लबरेज रचना पढ़ते ही छँटा हुआ गूँगा बन जाता है। वह न जाने किस गहन ग्रंथि के कारण प्रत्यक्ष दिखती प्रकाशधर्मी रचना पर मौन साध लेता है। इतना ही नहीं दोयम-तेयम-चैथम दर्जे की रचना की बेशर्मी के साथ ऐसी प्रशंसा भूँकता है कि आँधी मचने लगती है। निश्चय ही, निश्चय ही अब विशुद्ध साहित्येतर कारणों से रचनाएँ लोकप्रिय हो रही हैं और जबरन मील का पत्थर घोषित की जा रही हैं। वे कारण हैं - लेखक की राजनीतिक और आर्थिक हैसियत, वरिष्ठ शब्देश्वरों और साहित्य के शतरंजबाज मित्रों से आत्मबद्ध सम्पर्क। इस संबंध का विषवृक्ष अंगूर का लाल पानी पाकर और हराभरा होता है। यूँ कहिए कि शरीर में अकड़ जगा देने वाला लाल रस साहित्य में साहित्य के खिलाफ मची हुई अंधेरगर्दी का सबसे बड़ा कारण है। यह पानी जिस किसी के गले उतर गया- कुछ न कुछ कारनामा करवा ही देता है- किसी लम्पट शब्दकार को पुरस्कार दिलवा देगा, किसी कवयित्री को रातोंरात स्टार बनवा देगा, किसी पिछलग्गू को विदेश यात्रा करवा देगा, किसी चेला को कॉलेज या यूनीवर्सिटी में स्थापित करवा देगा। यहाँ तक कि अपनी उम्र, पद, प्रतिष्ठा, कद भुलवा कर नवोदित रचनाकारा से एकाकार होने के सपने पलवा देगा। दारूबाज साहित्यकारों की विवेकशून्य जमात इसी बाज़ारवाद की ही देने है, जिसके भीतर न पवित्र संकल्प है, न पक्षधरता की आग, न आम जन हृदय से एकाकार होने की तड़प, न सृजन के हथियार से समय को पराजित करने का औघड़ी आत्मविश्वास, न लौ में तब्दील होने की ताकत, न आकाशधर्मी चेतना हासिल करने का आत्मसंघर्ष और न ही सृजन के प्रति अटूट समर्पण का जज़्बा। निर्जीव किन्तु प्राणलेवा लाल रस का आकंठ गुलाम बन चुके इन साहित्यकारां की आँखें सपने देखना कब का भूल चुकी हैं। इन आँखों के आँसू माया-जाल के हाथों कब के बिक चुके हैं। इन मुर्दा आँखों ने सत्ता-प्रभुसत्ता से समझौता कर लिया है। साहित्य के वर्तमान संकट या भावी पुनर्निमाण को लेकर कोई 'विज़न' नहीं है। 'मान न मान मैं तेरा मेहमान' स्टाइल में जबरन स्थापित हुए जा रहे हैं- ये लालरसवादी कलमबाज। यह अद्भुत संयोग है कि ऐसे ही रसाचार्यों के खाते में सर्वाधिक पुरस्कार हैं और साहित्य जगत् के राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और सेनापति भी हैं। मानो

दोयम दर्जे की रचनाओं को प्रथम श्रेणी में चिरस्थापित करने का खेल चारों ओर मचा हुआ है। आम पाठक जिस रचना को पढ़कर साहित्यिक के प्रति अपने प्रेम पर पछता रहा है, न जाने किस रहस्यमय तंत्र के अन्तर्गत उस पर प्रतिष्ठित पुरस्कार मिलना

आम बात हो गई है। आज का साहित्य प्रेमी पाठक ख़ुद को ऐसा ठगा सा महसूस कर रहा है- मानों उसकी अतृप्त साहित्यिक अभिरुचि से साथ खिलवाड़ किया जा रहा है। भाषा, शैली, शिल्प और संवदेना की कसौटियों पर साधारण से साधारण सिद्ध होने वाली कृतियाँ घनघोर प्रचार, समीक्षा, चर्चा और भजन-कीर्तन की वैसाखियों पर असाधारण दर्जे की घोषित हो रही हैं। यह साहित्यगिरी कविता, कहानी, उपन्यास और आलोचना जैसी सभी प्रमुख विधाओं में जारी है। यदि कृति में मौलिक चमक से भरी भाषा नहीं है, यदि अर्थों की बहुमुखी तरंगे पैदा करने वाली शैली नहीं है और हमारे अन्तस्थल में जज़्बातों का ज्वार खड़ा कर देने वाली नवोन्मेषी संवेदना नहीं है तो फिर किस लिए वह असाधारण है ? गुणवत्ता के आधार पर कृति की श्रेष्ठता प्रमाणित होने के दिन लद गए। अब उसके कालजयी होने की शर्तें हैं- सरनाम पुरस्कार, आलोचना के मठाधीशों की चरण भक्ति, अपने उपर लिखवाने की विलक्षण कलाकारी और साहित्येतर मधुर संबंधों की परम साधना। ये सभी दक्षताएँ दिन-प्रतिदिन माँजते, चमकाते, धारदार बनाते रहने से न सिर्फ आपकी सड़ी-गली कृतियाँ अविस्मरणीय घोषित की जाएँगी, बल्कि आपको भी किसी न किसी क्रीम विधा में मूर्ति की तरह स्थापित कर दिया जाएगा। साहित्य के बाज़ारकाल ने रचनाओं का स्तर, साहित्य में उसकी जगह तय करने की कसौटियों को इस कदर गड्मगड् कर दिया है कि असली सृजनात्मकता का सर्वोच्च सम्मान लगातार सपना होता जा रहा है।

साहित्य के पतन का पलायन वेग: साहित्य में जैसे-जैसे पूँजी, बाज़ार, राजनीति की सत्ता ने अपने फन फैलाए हैं, वैसे-वैसे साहित्य का छद्म रूप विकसित होता चला गया है। छद्म साहित्य समय के सख्त सवालों से न टकराता हुआ, आँखें न मिलाता हुआ, तन कर न खड़ा होता हुआ साहित्य है। ऐसे साहित्य में भाषा की जादूगरी हो सकती है, मनोहारी शिल्प की तूति बोल सकती है, लच्छेदार और तरंगमय वाक्यों की भरमार हो सकती है- किन्तु उसमें आत्मा नाम की चीज़ नदारत मिलेगी, उसमें समय की धड़कनें नहीं सुनाई देंगी, उसमें जनता की चीखों, आहों, और आँसुओं के लिए जगह नहीं होगी, यदि होगी भी तो विश्वास न करने योग्य, अस्वाभाविक और ग़ैर प्रामाणिक। छद्म साहित्य को माहौल में टिकाए रखने का आधार भाषाई, शिल्पगत या शाब्दिक कला ही देती है। अपने पोर-पोर में उद्दाम संवेदना से कसी हुई रचना कला शून्य होकर पाठकों के दिलों पर जहाँ सदियों तक राज करती है - वहीं खाँटी कलात्मकता में झलक मारती हुई रचना फटाफट सम्मोहन पैदा कर हमेशा के लिए ठण्डी पड़ जाती है। यह साहित्य का ऐसा बाज़ारकाल है- जहाँ रचना जन्म ली नहीं कि अमरता का स्वाद चख लिया, चार दिन बीते नहीं कि इतिहास में स्थान पक्का। वह पाठक जो सदियों से कृति की महत्ता की अन्तिम कसौटी माना जाता रहा है, अब खारिज किया जा चुका है। सृजन की इस सार्वकालिक कसौटी की फिक्र न रचनाकार को है और न ही आलोचक को। मौजूदा काल के पहले सृजन की असाधारणता को या तो बहुसंख्यक पाठक सिद्ध करते थे, या फिर न्यायाधीशनुमा समय। किन्तु बाज़ारवाद न पाठक के निर्णय का इंतज़ार करता है, न ही समय के फैसले पर यकीन करता है। अपना और अपनी रचना का जितना, जिस हद तक हला-भला होना है- उसके जीते जी, उसकी आँखों के सामने हो जाए। रचनाकार देख ले कि उसकी रचना ने अपनी विधा में अमरता की सीट पक्की कर ली। रचनाकार खुलेआम बस यही नहीं लिख रहा कि उसने अमर रचना लिख डाली है, किन्तु उसका असहज व्यवहार, दम्भपूर्ण प्रसन्नता, आसमानी प्रयत्न, प्रचार का जुगाड़, पुरस्कृत होने के लिए अपनाई गई नवधा भक्ति कुल मिलाकर किस निष्कर्ष का संकेत देते हैं ? साहित्य में अब ऐसे कलमेश्वरों की भरमार है जो बढ़चढ़ अपनी कविताओं, कहानियों, आलेखों पर मौखिक कसीदे गढ़ते हैं, तारीफों की बारिश करते हैं और उसकी अद्वितीयता का लोहा मनवा लेने के लिए एड़ी-चोटी की सारी ताकत झोंक देते हैं। यह आत्मप्रशंसा कभी आत्महत्या से कम घातक नहीं मानी जाती थी, किन्तु आज वही अहमियत हासिल करने की अनिवार्य योग्यता है।

स्पष्ट तौर पर इस बाज़ारवाद ने साहित्य में समय और आम पाठक की ऐतिहासिक भूमिका को ही समाप्त कर दिया है। पाठक के विश्वास की मुहर लगे बग़ैर रचनाएँ इतिहास में जगह बनाने लगी हैं यह वर्तमान साहित्य के भयावह पतन की इन्तहा तो है ही, भविष्य में विलुप्त हो जाने वाली कला की नियति का संकेत भी है। भविष्य का हिन्दी साहित्य अपनी भयानक नियति प्राप्त करने की ओर अग्रसर है। पिछले पचास-साठ वर्षों से साहित्य का दिन तिगुना-रात दस गुना राजनीतिकरण, जुगाड़ीकरण, स्वार्थीकरण हुआ है। साहित्यकार -'न भूतो, न भविष्यति' के स्तर का पतनवादी प्राणी बन चुका है। भ्रम उठता है कि साहित्य, लेखक के लिए कहीं ऐय्याशी का अखाड़ा तो नहीं, कहीं रुतबा झाड़ने का अड्डा तो नहीं, कहीं गुमनामी की भड़ास निकालने का मंच तो नहीं ? आख़िर कारण क्या है कि संघर्ष के दिनों में एक-एक कदम बढ़ने के लिए जान लगा देने वाला कवि, कहानीकार, आलोचक साहित्य में चर्चित, स्थापित या सरनामित होते ही बड़बोलेपन में ताक्धिनाधिन् नाचता हुआ पुतला बन जाता है। सृजन से कीमती है- तपा हुआ व्यक्तित्व और तपे हुए व्यक्तित्व से मूल्यवान है-साहित्य का गौरव और साहित्य के गौरव से भी ऊपर का महत्त्व रखती है- मानवता। इसलिए जो सर्जक मानवता का माथा बुलन्द रखने के लिए कलम का वज़न उठाता है- अन्ततः वही युगप्रवर्तक साहित्यशिल्पी सिद्ध होता है। ग़ौर करने लायक है- शिव कुमार मिश्र के वाक्य-दर-वाक्य, यदि पतन की ओर पलायन वेग से अग्रसर होते हिन्दी साहित्य को समझना है तो- 'बाज़ार का मायालोक, अपसंस्कृति का सैलाब, सुख-भोगवाद की आँधी, निजीकरण का बढ़ता दायरा, विदेशी पूँजी का निवेश, यह सब एक ओर और वंचितों, उपेक्षितों की एक बड़ी दुनिया दूसरी ओर। सुख भोगवाद में आकंठ डूबा समाज का एक छोटा तबका एक ओर तथा दमन, उत्पीड़न, अभाव और वंचनाओं का शिकार, दलित, आदिवासी, स्त्री तथा हाशिए पर जीने वालों का संसार दूसरी ओर।' (परिकथा; मार्च-अप्रैल-2008, पृ. सं. 8)

***

समकालीन हिन्दी कहानी में महानगरीय नारी जीवन

मेरी रिया डी .काउथ

आजकल जिस प्रकार गाँव और महानगर में व्यापक अंतर होते जा रहे हैं, उसी प्रकार वहाँ रहनेवालों की मानसिकता एवं जीवन शैली में भी व्यापक अंतर दिखाई दे रहा है। महानगर एक व्यक्ति के विकास केलिए काफी व्यापक वातावरण की सृष्टि करता है। इसी कारण पुरुष के साथ-साथ स्त्री भी इसकी ओर आकर्षित होती है। पढ़ाई, नौकरी तथा अन्य व्यापक सुविधाओं ने 'नारी' को आधुनिक रूप प्रदान करने में मदद की है। लेकिन यही आधुनिक रूप एक ओर उसे नैतिक मूल्यों एवं पारिवारिक मूल्यों से हटकर असंवेदनशील होने का कारण भी बन जाता है। महानगरों की चमक-दमक ने उसकी ज़िन्दगी को ऐसा घेर लिया है कि वह अपने संस्कारों एवं परंपराओं से दूर जा रही है। यह भी कहना ज़रूरी है कि महानगरों में नारी जीवन आधुनिक बन गया है। साथ ही साथ स्त्री को पुरुषों की गिरती सोच और बरताव का सामना करना पड़ता है। समकालीन हिन्दी कहानियों में महानगरीय जीवन बिताने वाली नारियों के इन्हीं दोनों रूपों को अधिकांशत: उभारने का प्रयत्न किया गया है।

महानगरों में मॉडलिंग के चक्कर में पड़कर फँस जाने वाली लड़कियों की शुमार बहुत ज़्यादा है। चित्रा मुद्गल की कहानी 'हस्तक्षेप' में विज्ञापनों में स्त्री के इस्तेमाल की कूट नीति के बारे में चर्चा हुई है। नीता विज्ञापनों एवं फैशन 'शो' में भाग लेनेवाली मॉडल है। उसका मानना है कि यही आधुनिकता है। आजकल आधुनिक नारियों की सबसे बड़ीकमी यही है कि वे 'आधुनिकता' का वास्तविक अर्थ नहीं पहचानतीं। कहानी की अंकू (अंकिता) शरीर की राजनीति को पहचानती है। अंकू का यह वाक्य इस संदर्भ में विचारणीय है - ''सोचो .... आधुनिकता की जिस परिभाषा में तुम जी रही हो, जीना चाहती हो, वह परिभाषा अधिकार, आधुनिकता और स्वतंत्रता के नाम पर पुरुषों द्वारा ही अखबारों, पत्रिकाओं, विज्ञापनों, फ़िल्मों, पोस्टरों, स्लाइड्स के माध्यम से स्त्री को सौंपी जा रही है। स्पष्ट है कि स्त्री को आगे भी अपने अधीन बनाए रखने के सामंती इरादों को वह इन हथकंडों से सिद्ध कर रहा है - स्त्री अब भी इस्तेमाल हो रही है और तथाकथित भद्र, संपन्न, महत्त्वाकांक्षी, आधुनिकता कहलाने की शौकीन शिक्षित स्त्री-वर्ग, ठीक तुम्हारी तरह इन परिभाषाओं को आत्मसात् कर पुरुषों से बराबरी का दंभ जी रही है ....''1 कहानी की नीता और अंकू दो प्रकार की दृष्टि रखती हैं। नीता की सोच एक पढ़ी-लिखी नारी की विद्रोह भरी सोच है। जब कि अंकू इन्हीं पढ़ी-लिखी नारियों का इस्तेमाल करनेवाले पुरुषों को पहचानने की क्षमता रखती है।

शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, कोच्चि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कोच्चि से समकालीन हिन्दी कहानियों में महानगरीय जीवन का यथार्थ पर शोध कार्य कर रही हैं।

संपर्क: Kadavil House,
Kumbhalangi Vazhi, Palluruthy
Kochi-682006, Kerala
Email: riapluto@gmail.com
मोबाइल :9656506066

ऊर्मिला शिरीष की 'उसका अपना रास्ता' की वृन्दा भी मॉडल बनने केलिए दिन-रात परिश्रम करती है। लेकिन उसकी बहन अनुराधा इसके खिलाफ है। मॉडलिंग के चक्कर में पड़कर दिल्ली महानगर में पहुँचती वृन्दा ख़ुद को दाव पर लगाने केलिए मज़बूर हो जाती है। एड एजेन्सी चलाने वाला पवन वृन्दा का शारीरिक इस्तेमाल करता है। वृन्दा का गर्भवती होने की खबर सुनकर पवन कहता है - ''इस उम्र में सेक्स एन्जॉय करने के लिए होता है या बच्चा पैदा करने के लिए ? अब आँसू बहाओ या माँ बनो या अबॉर्शन कराओ, मेरे पास इस बारे में बात करने के लिए फिर कभी मत आना।''2

महानगरों में आकर नैतिक मूल्यों एवं परंपराओं का स्थान कहाँ तक आ पहुँचा है ? नई पीढ़ी एवं पुरानी पीढ़ी के बीच में अंतर बढ़ता जा रहा है। उषा महाजन की 'एंटीक' कहानी में दिल्ली में पढ़ाई-लिखाई करने वाली गोगी और उसके माँ-बाप के बीच के संबन्धों में आनेवाले विघटन और आधुनिकता की तड़क- भड़क में फँसकर नैतिकता विहीन होने का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है। गोगी जहाँ पढ़ाई करती है, वहाँ आधुनिकता के नाम पर चलने वाले लड़के-लड़कियों के व्यवहार देखकर माँ घबरा जाती है। लेकिन गोगी अपना खुला संसार चाहती है। वह अपने बॉयफ्रेंड के साथ रहने लगती है। बाद में उससे वह अपना रिश्ता ठुकरा देती है। गोगी अपनी माँ के फोनकॉलों को अपनी माँ का प्यार न मानकर अपने 'फ्रीडम' के लिए बाधा समझती है।

सुधा अरोड़ा की कहानी 'महानगर की मैथिली' में माँ-बाप और मैथु के बीच संवेदनशून्यता पर विचार किया गया है। एक बच्ची के लिए अपने माँ सब कुछ होते हैं। हमारा संस्कार भी इसी सोच पर बल देता है कि एक माँ अपनी ख़ुशी से पहले अपने बच्चे या बच्ची की ख़ुशियों को प्रमुखता दे। लेकिन कहानी की माँ अपनी बच्ची को आया के पास छोड़कर, उसके आँसुओं को अनदेखा कर महानगर का मज़ा लूटने पति के साथ निकल जाती है। कहानीकार ने यहाँ बाज़ारीकरण के प्रभाव को भी दर्शाने का प्रयास किया है। जब चित्रा ने मेथु को जन्म दिया था और काफी दिन होने से पहले ही नौकरी के लिए दफ्तर निकल पड़ी तो उसकी सहकर्मी मिसेज माथुर कहती है - ''.... अरे बच्चे को पैदा होते ही पाउडर के दूध की भी आदत डालो ....।''3 बाज़ारीकरण के इस दौर में हर चीज़ डिब्बे और पैकट में हमें प्राप्त हो जाती है। यहाँ तक बच्चों को माँ के दूध के बदले पाउडर का देना तो आज नारियों ने अपने को आधुनिक बनने का आसार मान लिया है। लेकिन सोचने की बात है कि क्या इस दूध के साथ माँ का प्यार भी मिला हुआ है या नहीं? महानगरों में यह सामान्य सा हो चुका है। मॉडन बनने के चक्कर में लोग क्या-क्या पीछे छोड़ देते हैं, इस पर किसी का ध्यान नहीं जाता।

अरुण प्रकाश जी की 'बहुत अच्छी लड़की' में इस मुद्दे को अलग नज़रिए से उभारा गया है। कहानी की अनिता राव अपने तीन वर्षीय बेटी मोना को एक बोझ मानती है। अपनी नई ज़िन्दगी के निर्माण में उसको एक अवरोध मानती है। वह अपने पति विकास की मृत्यू के बाद दीपक से विवाह करना चाहती है। दीपक ने ही इस मामले को आगे बढ़ाया था। लेकिन मोना उसके लिए एक काँटा नज़र आती है। अनिता का कहना है - ''इस समाज में बच्चा तो खिलौना रहता है और बूढ़े लोग बोंझ।''4 अनिता अपनी बेटी को मिसेज़ कापड़िया को सौंप देती है, जिनके पास अनेक ऐसे बच्चे हैं जिनको अपने माँ-बाप ने छोड़ दिया था। महानगरों की बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं के बीच ऐसी अनेक संस्थाएँ हैं जहाँ आधुनिक युग के माँ-बाप अपने बच्चों को छोड़कर, अपने रास्ते ढूँढ़ने जाते हैं।

लेकिन रमेश बतरा की कहानी 'शहर की शराफत' में मीना की मम्मी को अपनी बेटी की चिंता होती है। यहाँ अपनी बेटी के प्रति चिन्तित माँ को देखा जा सकता है। अपने दोस्त के घर जाने वाली मीना के समय पर न आने का डर उसकी माँ को परेशानी में डालती है। बेवजाह परेशान होने से वह अपने आप को रोक न पाती। समाज में स्त्रियों पर बढ़ते अत्याचार, उसे इसके लिए मजबूर कर देते हैं। पड़ोसी कॉलनी में घटित बलात्कार की घटना उसके दिलो दिमाग में छा जाती है। इसके अतिरिक्त उसे एक किताब से मालूम पड़ा कि - 'केवल हमारे ही देश में औसतन पचास बलात्कार हर रोज़ हो जाते हैं ....।'5

नारी महानगरों में तो स्वतंत्र है ही और उसे पुरुष के समान अधिकार भी प्राप्त है। फिर भी स्त्री बेफिक्र होकर कहीं भी जा नहीं पा रही है। विकास की ओर बढ़नेवाले महानगरों की जनता की मानसिकता को भी विकासशील होना चाहिए। स्त्री के प्रति नगरों में रहनेवालों की दृष्टि में कोई व्यापक परिवर्तन नहीं आया है। स्त्री को सिर्फ एक शरीर मानने या उसे शारीरिक भूख मिटाने के साधन मानने की वह मानसिकता सदियों पहले की है; जो आज भी किसी न किसी रूप में कहीं न कहीं उपस्थित है। आजकल जगह-जगह पर होनेवाले बलात्कार इसी के ही सबूत हैं। कुछ साल पहले दिल्ली में हुई बलात्कार की घटना, मानवीय मूल्यों का हनन करनेवाली थी। 'निर्भया' का नाम लेकर न्याय के लिए लड़ते वक्त भी हमें यह सोचना चाहिए कि क्या कल एक और निर्भया न पैदा होने का वादा हम दे सकते हैं ? न्याय व्यवस्था, न्यायलय, पुलिस, मंत्री सब होने के बावजूद बलात्कार का सिलसिला आज भी ज़ारी है। आश्चर्य की बात यह है कि - 'पहले कानून औरत को कहता था, सिद्ध करो कि यह हुआ है। अब आदमी को कहेगा, सिद्ध करो कि यह नहीं हुआ।'6

उर्मिला शिरीष ने 'चीख' कहानी में एक ऐसी नारी का चित्रण किया है, जो महानगरों में व्याप्त अन्याय की शिकार बनती अनेक नारियों के प्रतीक के रूप में हमारे सामने आ जाती है। उस लड़की केलिए वह रास्ता, वह जगह सब जान पहचान के थे। वह रोज़ उसी रास्ते से आती-जाती है। फिर भी उसके साथ न इनसाफी हुई। हमारे घरवाले यही कहा करते हैं कि अपने बच्चे अनजान रास्ते या अनजान जगह पर न जाए। लेकिन महानगरों में जाने-अनजाने जगहों से कोई मतलब नहीं है। यहाँ तक स्त्री अपने घर में भी सुरक्षित नहीं है। यह कहानी भारत के महानगरों का वह रूप दिखाता है जो उनकी चमक-दमक के पीछे छिपा है। ''जितनी दुनिया आगे बढ़ रही है, उतनी ही ज़िन्दगी असुरक्षित होती जा रही है।''7

चित्रा मुद्गल की 'दरमियान' कहानी में एक नौकरीपेशा नारी की ज़िन्दगी पर प्रकाश डाला गया है। जब वह भीड़ भरे रास्ते से चलती है तो उसे लगता है कि उसकी जाँघों को कोई रगड़ रहा है। वह घबरा जाती है। 'औरत चाहे भीड़ में चल रही हो या भीड़ भड़क्के से दूर, पुरुष उन्हें धूरने से नहीं चूकते।'8 कहानी की आकांक्षा को ऐसा लगता है कि अधिकांश पुरुष रावण के वंशज हैं .... 'जिनकी दस जोड़ी भुजाएँ ही नहीं, दस जोड़ी आँखें भी हैं जो रडार की भाँति स्त्रियों की गतिविधियों को सुँघती बारीक-से-बारीक हरकत को दर्ज करती रहती हैं।'9

घरों-सड़कों में ही नहीं, कार्यालयों में भी स्त्री का शोषण हो रहा है। आजकल 'चापलूसी, सिफारिश, सफलता' ये तीनों शब्द एक दूसरे से इतना मिले हुए हैं कि उनको अलग करके देखना मुश्किल है। नौकरी के मोह में लोग सबकुछ दाँव पर लगा देते हैं। यहाँ तक कि कभी ऐसे संदर्भ में स्त्री पर शारीरिक एवं मानसिक शोषण भी चलता है। 'सिफाारिश' कहानी के ज़रिए अचला नागर जी इसी मामले को सामने लाई हैं। कहानी की नायिका रुचि को एक सरकारी नौकरी पाने के लिए अपने को अधिकारियों के सामने समर्पित करना पड़ता है। वह कहती है - ''झुंड की शक्ल में आगे बढ़ते इन भयानक खूनी चेहरों को देखकर मेरे मुँह से चीख निकलने को होती है - नहीं .... लेकिन तभी जैसे 'न्युमरालजिस्ट' की गणना हथेली बनकर उसे वहीं का वहीं रोक देती है .... मन का गलियारा विद्रूप और व्यंग्यवाली हँसी से भरभरा उठा है .... सफलता और सिफारिश।''10

महानगर में ऐसे अनेक क्षेत्र हैं, जहाँ नारी के कई रूप उभरकर आते हैं। कभी परिवार के माँ के रूप में, कभी बेटी, कभी कार्यालयों में काम करनेवाले कर्मचारी के रूप में, कभी प्रेमिका के रूप में, कभी बाज़ारीकरण के चंगुल में फँसी मजबूर नारी के रूप में। पिछले ज़माने की नारी की जो मानसिकता है, आज वह बिलकुल बदल चुकी है। 'आधुनिक नारी' का प्रयोग भी इसी को दर्शाता है। इसके बदलते रूप के साथ-साथ उसको जिन समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है उसके रूप भी बदल चुके हैं। अपनी समस्याओं के प्रति उसकी दृष्टि में भी बदलाव आ गया है। पहले वह अपनी उलझी ज़िंदगी को लेकर परेशान थी, उसपर किए जाने वाले शोषण को वह चुपचाप सहती गई और सहानुभूति का पात्र बनती गई। लेकिन आज उसपर प्रौढ़ता आने लगी है। फलस्वरूप प्रतिरोध का स्वर भी उससे उभारने लगा है। लेकिन जब महानगरीय नारी जीवन का सवाल आता है तब सबसे पहले महानगरीय परिवेश में उसका जीवन किस प्रकार होता है इसी का वर्णन मिलता है। इसमें प्रतिरोध के साथ-साथ आधुनिक नारी का बरताव, उसकी ज़िंदगी, लाइफ स्टाइल, महानगर में उसकी समस्याएँ वहाँ की तेज़ रफ्तार की ज़िंदगी एवं शोर-शराबे में अपने आप को भूल जानेवाली नारी आदि पर ज़ोर दिया जाता है। इसके साथ-साथ कहानिकारों ने नगरों की सामाजिक, साँस्कृतिक, राजनीति एवं आर्थिक बातों को भी समकालीन कहानी का विषय बनाया है। पुरुष एवं महिला कहानीकारों ने महानगरीय नारी जीवन पर विचार किया है। यह भी कहना होगा कि अधिकांश : महिला कहानीकारों की कहानियों में ही नारी जीवन के विभिन्न पहलुओं का सटीक आकलन मिलता है।

***

संदर्भ ग्रन्थ सूची : 1. चित्रा मुद्गल - आदि - अनादि 2 (हस्तक्षेप) - पृ:243, 2. ऊर्मिला शिरीष - निर्वासन (उसका अपना रास्ता) - पृ:141,3. गिरिराज शरण (सं) -महानगर की कहानियाँ (सुधा अरोड़ा - महानगर की मैथिली) - पृ:194, 4. अरुण प्रकाश - विषम राग - (बहुत अच्छी लड़की) - पृ:72, 5. गिरिराज शरण (सं) - महानगर की कहानियाँ (रमेश बतरा - शहर की शराफत) - पृ:128, 6. गिरिराज शरण (सं) - महानगर की कहानियाँ (रमेश बतरा - शहर कीशराफत) - पृ:129, 7.राजेन्द्र यादव (सं) - हंस, जनवरी-फरवरी 2000 (ऊर्मिला शिरीष - चीख) - पृ:83, 8. चित्रा मुद्गल - आदि - अनादि 2 (दरमियान) - पृ:171, 9. चित्रा मुद्गल - आदि - अनादि 2 (दरमियान) - पृ:171,10. - कार्यालय जीवन की कहानियाँ (अचला नागर सिफारिश)।

ग़ज़लें

भावना कुमारी

जो वक्त के हिसाब से ढलता चला गया
हर मोड़ पर वो आगे निकलता चला गया
जैसे कि मोम हूँ मैं, वो जलता हुआ दिया
वैसे मेरा वजूद पिघलता चला गया
यूँ ख़ुशबू उसकी आन बसी रूह में मेरी
मेरा ही अक्स उसमें बदलता चला गया
जैसे कि मुँह में बच्चा कोई मिट्टी डाल ले
ऐसे वो मुश्किलों को निगलता चला गया
दिल में हज़ार जज़्बों की गठरी लिए हुए
मैं लड़खड़ा पड़ी, वो सँभलता चला गया
उसके क़रीब जाके भी मैं छू नहीं सकूँ
वह दूर मुझसे इतना निकलता चला गया

***

नदियों के गंदे पानी को घर में निथार कर
चूल्हा जला रही है वो पत्ते बुहार कर
फुटपाथ के परिंदों की तकदीर है यही
ताउम्र उनको जीना है दामन पसार कर
उड़ने लगी है कल्पना बिंबों की खोज में
कुछ शब्द चल पड़े हैं स्वयं को निखार कर
वो कामयाब होते हैं हर गाम पर सदा
जो हर लड़ाई लड़ते हैं गलती सुधार कर
अब तो लड़ाई है मेरी अन्याय के ख़िलाफ़,
हर झूठ का रख देंगे हम चोला उतार कर !

***

कठिन राहों पे चलना आ गया है
मुझे घर से निकलना आ गया है
भला क्या फ़िक्र उसको नींद की हो
जिसे करवट बदलना आ गया है
रही है इस तरह ख़ुशियों की किल्लत
कि बच्चों-सा मचलना आ गया है
चुभन ख़ारों की अपने दिल में रख कर
गुलों के संग चलना आ गया है
न अब इतराओ हाथों की लकीरों !
मुझे किस्मत बदलना आ गया है

***

bhavna.201120@gmail.com

वैश्वीकरण और भारतीय स्त्री : विभ्रम और यथार्थ

अपरूपा पंडित

संपर्क: अपरूपा पंडित, शोध छात्रा, असम विश्वविद्यालय दिफू कैम्पस, लोको कॉलोनी, लम्डिंग, मकान नं एल-168, पोस्ट : लम्डिंग, जिला होजाई, असाम 782447
मोबाइल : 7002192050

समकालीन वैश्वीकरण की अवधारणा उदारवादी पूँजीवाद की देन है। वैश्वीकरण का नारा 19वी शताब्दी के अंतिम और बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दौर में भी दिया गया था, वह मार्क्सवादी इंटरनेशनल के लिए था जिसमें दुनिया के मजदूर वर्ग को एकजुट करने का आह्वान किया गया था और इसी के अनुरूप रुस में सोवियत क्रांति, जर्मनी, चीन आदि कई देशों में कम्युनिस्ट क्रांतियाँ हुईं। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद उदारवादी पूँजीवादी देशों की पहल पर विश्व व्यापार के लिए एक संधि की गई लेकिन अमेरिका का नया साम्राज्यवादी अभियान चलता रहा जो बीसवीं सदी के अंतिम दौर में विश्व व्यापार के नाम पर नए वैश्विक बाज़ार में फलित हुआ। भारत में स्पष्ट रूप से इसके प्रति रूझान स्व. राजीव गाँधी की सरकार के आने के बाद दिखाई देने लगा। सोवियत संघ में गोर्बाचोव ने जो पेरेस्त्रोईका और ग्लासनोस्त की शुरूआत की वह अमेरिकी पूँजीवाद के लिए अनुकूल था और इसी के प्रभाव में स्व. राजीव गाँधी ने निजीकरण, कम्प्यूटरीकरण को बढ़ावा दिया और अमेरिका की ओर दोस्ती का हाथ बढ़ाया। अंततः नवें दशक में सोवियत संघ टूट गया और 1991 में इधर भारत विश्व बाज़ार का औपचारिक रूप से हिस्सा बन गया।

वैश्वीकरण के इस नए दौर में भारतीय स्त्रीवादी विमर्श की क्या स्थिति बनी इस पर

विचार करना ज़रूरी है क्योंकि यूरो-अमेरिकी नारीवाद की तुलना में भारतीय स्त्रियों की बुनियादी समस्याएँ भी समाप्त नहीं हुई थीं, जैसे-दहेज हत्या, आर्थिक परावलंबन, राजनीति, रोज़गार में समानता, घरेलू एवं बाह्य हिंसा, यौन उत्पीड़न आदि; लेकिन अचानक सशक्तीकरण के नाम पर उसे बाज़ार के विमर्श का हिस्सा बना दिया गया। इससे स्त्री कितनी मुक्त हुई, इसी पर विचार करना इस लेख पत्र का उद्देश्य है।

एक ज़माना था जब स्त्री के बारे में बातें दो तरीके से की जाती थीं- या तो उसे भोग की वस्तु मानकर अथवा माया, पाप की खान या भरमाने वाली, धर्म के मार्ग से भटकाने वाली के रूप में। यह समझने की कोई कोशिश ही नहीं की गई कि वह लैंगिक अस्मिता के साथ-साथ व्यापक मानवीय समूह का हिस्सा भी है। भोगवाद का प्रमाण इससे मिलता है कि पुराने समय में स्त्री के नख-शिख वर्णन पुरूषों ने जिस तरह खुल कर किये उस तरह सभ्यता के विकास में उसकी भूमिका के बारे में नहीं लिखा। जगदीश्वर चतुवेदी कहते हैं- ''.....स्त्री के शरीर एवं सौंदर्य के ऊपर विचार करने के लिए पुरूष निर्मित शास्त्र हमारी ज़्यादा मदद नहीं कर सकते।''1 जब भारत में आधुनिकता की शुरूआत हुई और उपनिवेशवाद के विरूद्ध आंदोलन शुरू हुए तब पहली बार स्त्री की सामाजिक-राजनीतिक भूमिका सामने आई। तब से लेकर पिछली सदी के नवें दशक तक भारतीय नारीवाद कई मोड़ों से गुज़रा है, समानता के बाद सशक्तीकरण की बात आई लेकिन अभी समानता का आंदोलन भी पूरा नहीं हुआ था कि वैश्वीकरण शुरू हो गया और विश्व बाज़ार व्यवस्था भारत में आ गई। इसने सारे पुराने मूल्यों को ध्वस्त नहीं किया, बल्कि उनका बाज़ारीकरण कर दिया और जो मानवीय संवेदना से भरे हुए बोध और अनुभूतियाँ थीं उनको निरस्त कर दिया। इस टूट-फूट के वातावरण में सबसे विचित्र स्थिति स्त्री की हो गई क्योंकि जिस समानता और मानवीय गरिमा को प्राप्त करने के लिए मेरी वोल्स्टन क्राफ्ट से लेकर बेट्टी फ्रीडन और उसके बाद सीमोन द बोउवार एवं भारत में मीरा, अक्क महादेवी एवं आधुनिक काल की स्त्रियों ने संघर्ष किया, इस नए बाज़ार ने उस पूरे संघर्ष को झटके में ध्वस्त कर दिया। आधुनिकता को निरस्त करके जो उत्तर आधुनिकता का विमर्श दुनिया में चलाया गया वह वास्तव में जर्जर हो चुके पूँजीवाद को नया जीवन देने के लिए था और ख़ास बात यह है कि इस नये पूँजीवाद का अगुआ यूरोप नहीं, अमेरिका है। वैश्वीकरण की राजनीति और उसके लिए जिस 'ग्लोबल विलेज' का नारा अमेरिका ने दिया वह वास्तव में नए साम्राज्यवाद के अभियान के लिए था जिसके उदाहरण के लिए हम युगोस्लाविया, सूडान, इराक, अफगानिस्तान में अमेरिकी हस्तक्षेप को देख सकते हैं। पुराने समय में यूरोप, ख़ास तौर से ब्रिटेन ने दुनिया भर में साम्राज्यवाद को फैलाया था, अब यह काम अमेरिका कर रहा है और इसी के बौद्धिक विमर्श के क्षेत्र में आधुनिकता को निरस्त करके उसकी जगह उत्तर आधुनिकता के विमर्श को लाया गया और उत्तर आधुनिकता स्त्री को सामाजिक समूह का हिस्सा मानने के बजाय सिर्फ एक लैंगिक अस्मिता, यानी देह मानती है और यूरोप के लिए भारत की स्त्रियाँ भोग की वस्तु हैं। इसीलिए यूरोप के लोग सेक्स भाषा में भारत को Virgin territor4 कहते हैं।

यहाँ आधुनिकता और उत्तर आधुनिकता के फर्क को समझने की आवश्यकता है। आधुनिकता के मूल में जड़ सामाजिक-धार्मिक परंपराओं को ध्वस्त करके मानवीय मूल्यों को प्रतिष्ठित करने की प्रतिबद्धता थी। फ्रांसीसी क्रांति का प्रसिद्ध नारा समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व इसी के लिए दिया गया था। उसी दौर में पश्चिम में वैज्ञानिक क्रांति हुई जिसके परिणामस्वरूप पूँजीवादी व्यवस्था आई और समूह की जगह व्यक्ति को प्रतिष्ठा मिली। अंग्रेज़ी में डेनियल डेफो का उपन्यास 'रॉबिन्सन क्रूसो' इसका उदाहरण है। लेकिन उपनिवेशवादी चिंतकों ने पूँजीवादी व्यक्तिवाद और धन पाने की होड़ को आधुनिकता से जोड़ दिया जो एक बड़ा ऐतिहासिक भ्रम बन गया। इसके बाद आज वैश्वीकरण के दौर में जो पुराना जर्जर पूँजीवाद फिर से शक्तिशाली हो रहा है उसका उद्देश्य है व्यक्ति के स्थान पर धन को बैठा देना और इसके लिए मुक्त बाज़ार आया जो मुक्त भोग के दर्शन पर टिका हुआ है। इस मुक्त भोग का केन्द्र स्त्री है क्योंकि आज बाज़ार के दौर में स्त्री एक तरफ उपभोग की वस्तु है तो दूसरी तरफ उपभोग की वस्तुओं को बेचने का माध्यम भी। इसीलिए जूते से लेकर प्रेशर कुकर और पुरूष के अंतरंग वस्त्रों के विज्ञापन तक में स्त्री शरीर का ही उपयोग होता है। यह बाज़ार और वित्तीय पूँजी के वैश्वीकरण का परिणाम है। इस कार्पोरेट पूँजी के दबाव में जो उत्तर आधुनिक दबाव यथार्थ की परख की भाषा पर पड़ा है उसने यथार्थ की समझ को ही भ्रमित कर दिया है। विनोद शाही का यह कथन उल्लेखनीय है कि इक्कीसवीं सदी अब एक रूपक या प्रतीक शब्द है। यह प्रतीक इसलिए है क्योंकि आज इतिहास से जुड़ी तमाम चीज़ों को ऐसे प्रतीकों में समझने की आदत डाली जा रही है, जो अपने वास्तविक अर्थों को या कहें यथार्थ को छिपाकर हमें भ्रम और अनिश्चय में डाले रह सके। भाषा की यह संरचना वस्तुत: उत्तर आधुनिक है जो शब्द के उच्चारण के साथ ही हमारे सामने इतने अधिक अर्थों का एक जटिल जाल फैला देता है कि उसके भीतर से हमारा निकलना मुश्किल हो जाता है। इतिहास या यथार्थ को दमित या अवरुद्ध करने की यह चाल बेहद कारगर सिद्ध हो रही है। (आलोचना की ज़मीन- पृ. 21, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, 2011)।

ऊपर विनोद शादी जिसे इतिहास को अवरुद्ध करना कहते हैं वह वास्तव में भूमंडलीकरण के माध्यम से नए साम्राज्यवाद के विस्तार की राजनीति का ही परिणाम है। इसने स्त्री मुक्ति या स्त्री के अधिकार, उसके अस्तित्व से जुड़े सारे प्रश्नों को इस तरह उलझा दिया है कि वह मानवीय बोध से ही शून्य हो जाए। टी.वी. पर आने वाले विज्ञापनों की इस अंधी दौड़ में तीसरी दुनिया के लोग किस तरह पागल हुए जा रहे हैं, इसको समझने के लिए प्रसिद्ध समाजशास्त्री श्यामाचरण दुबे का यह कथन प्रासंगिक है कि तीसरी दुनिया एक मृग मरीचिका के पीछे दौड़ रही है। विकास की उपलब्धियों में असफलता और कुंठा से आक्रोश पैदा हुआ और तत्काल समाधान देने वाले और कभी भी असफल न होने वाले लुभावने तरीके बताने वालों को अस्थायी रूप से मसीहा माना जाने लगा है। परन्तु सम्पन्नता अभी भी चकमा दे रही है और वितरण की त्रासदी गहराती जा रही है। कहने

की आवश्यकता नहीं कि समृद्ध समाजों में सार्थक मॉडल के अभाव में बिना विचारे किसी एक की नकल करने से सामाजिक अन्याय बढ़ता है (विकास का समाजशास्त्र- पृ.85, वाणी प्र. दिल्ली, 2000)। वितरण की इसी असमानता को लक्षित करते मार्क्सवादी चिंतक अर्नेस्ट मैंडल अपनी पुस्तक Late CAPITALISM में कहते हैं कि पूँजीवाद अपने आन्तरिक संकटों को बदलते हुए और टालते हुए बिग बाज़ार की अवस्था में पहुँच गया है। इसका वाहक नया मीडिया है जो विज्ञापनों की चमकीली दुनिया में भरमाता है।

भारतीय नारीवाद के प्रथम चरण में स्त्री के संघर्ष का लक्ष्य था पितृसत्ता की कैद से मुक्ति। इसके बाद समानता की माँग शुरू हुई। पर ग़ौर करने की बाद है कि इसके लिए आर्थिक रूप से स्वाबलम्बी होना ज़रूरी था और साठ-सत्तर के दशक में स्त्रियों की चेतना में काफी परिवर्तन घटित होने शुरू हुए, लड़कियों ने शिक्षा, रोज़गार और नौकरी की ओर कदम बढ़ाने शुरू किए, मगर यह प्रोजेक्ट अभी प्रारंभिक अवस्था में ही था कि सशक्तीकरण का नारा दिया जाने लगा। अस्सी के दशक में ही अमेरिकी पूँजीवाद की ओर भारत का रूझान दिखलाई देने लगा था और 1991 में जब श्री नरसिंहवराव की सरकार केन्द्र में थी तब भारत ने विश्व बाज़ार व्यवस्था में ख़ुद को औपचारिक रूप से शामिल कर लिया। यही वह दौर है जब स्त्री के सशक्तीकरण की माँग ने जोर पकड़ा। ध्यान देने योग्य है कि सशक्तीकरण का मतलब केवल आर्थिक स्वालंबन नहीं है बल्कि पूरे सामाजिक विमर्श में स्त्री की भूमिका का निर्धारण होना है। सीमोन द बुवा का कहना है कि लड़की को यदि बचपन से लड़के के बराबर अधिकार मिलें और समान रूप से बड़ा किया जाये तो बहुत सी मानसिक ग्रंथियाँ ख़त्म हो जाएँगी।

सीधे तौर पर समकालीन स्त्री-विमर्श और बाज़ार के रथ पर चढ़कर आई वैश्वीकरण की राजनीति का एक स्पष्ट संबंध भले न दिखाई देता हो, पर है यह निश्चित रूप से। कारण यह है कि सशक्तीकरण की माँग वैश्वीकरण के दौर के बाज़ार से सीधा संबंध रखती है क्योंकि यह स्त्री को व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक विमर्श से काटकर एक लैंगिक अस्मिता में केन्द्रित कर देती है जिसके परिणामस्वरूप स्त्री एक विस्तृत भू-सांस्कृतिक विमर्श से कटकर बाज़ार के उत्पाद को बेचने का माध्यम भी बन गई और ख़ुद भी उत्पाद में बदल गई। उदाहरण के लिए टी.वी. पर आने वाले विज्ञापनों को देखा जा सकता है। विज्ञापन आते हैं त्वचा को गोरी बनाने वाली क्रीम के और इनमें दिखलाया जाता है कि इन क्रीमों को लगाने वाली औरतें यूरो-अमरीकी औरतों जैसी गोरी दिखती हैं। यानी सौंदर्य का स्टैंडर्ड वही है जो यूरोप और अमरीका का है और लैटिन अमरीकी-अफ्रीकी देशों के साथ-साथ भारत जैसे एशियाई देश सभ्यता के क्रम में निचली सीढ़ी पर हैं। इसका दूसरा पाठ यह है कि इन क्रीमों का प्रयोग करने वाली औरतें बहुत सेक्सी दिखेंगी। प्रश्न उठता है कि सेक्स उत्पाद बनाने के अलावा क्या स्त्री की कोई और सामाजिक-राजनीतिक भूमिका नहीं है? सशक्तीकरण की कामना उसे गोरी बनने के लिए प्रेरित करती है, गोरी बनकर वह आत्मविश्वास और समाज में स्पेस हासिल करेगी और इस प्रकार उसका सशक्तीकरण होगा, उधर बाज़ार में इन क्रीमों की खपत बढ़ेगी। यानी इसका अर्थ है कि स्त्री एक बेहतरीन सेक्स उत्पाद बनकर ही समाज में जगह पा सकेगी, और इस प्रकार उसके माध्यम से बाज़ार का धंधा बढ़ेगा। यानी बाज़ार का सशक्तीकरण से एक निश्चित संबंध बनता है और यह बाज़ार वैश्विक बाज़ार है जिसके माध्यम से अमरीका दुनिया का उपनिवेशीकरण कर रहा है। जाहिर है कि आज सशक्तीकरण की बाधा सिर्फ पितृसत्ता नहीं बल्कि कारपोरेट पूँजी है।

एक और विज्ञापन गौर करने योग्य है। एक सुंदर, सभ्य लड़का अपनी प्रेमिका को अँगूठी देकर प्रपोज करता है, लड़की स्वीकार भी करती है पर तभी एक लम्पट दिखने वाला लड़का आता है, वह भी लड़की को अँगूठी देता है। उस अँगूठी पर कंपनी का मार्का है और वह लड़की पहले लड़के को छोड़कर उसके साथ चली जाती है। अब इसका पाठ इस प्रकार बनता है कि प्रेम पर पहले वस्तु हावी होती है, फिर वस्तु की जगह कंपनी का नाम। लड़की सशक्त तो हो गई पर उसके भीतर कोई भावना, अनुभूति नहीं मालूम पड़ती है क्योंकि बाज़ार के ब्रांड के सामने भावनाएँ मर गई हैं। इस प्रकार एक लैंगिक अस्मिता के रूप में स्त्री सशक्त तो हुई पर वह बाज़ार की वस्तु बनकर रह गई।

वैश्वीकरण, नया बाज़ार और नया मीडिया यानी इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के गठजोड़ ने हर क्षेत्र में स्त्री को यौन उप्ताद बना दिया है। टी.वी. पर जितने नृत्य और संगीत के कार्यक्रम होते हैं उनमें फोकस स्त्री देह के कामुक प्रदर्शन पर ही होता है और इसमें छोटी बच्ची से लेकर वृद्धाओं तक को शामिल कर लिया गया है। सेक्स उत्पादों का बाज़ार हज़ारों करोड़ का है। एड्स का भय दिखाकर सिर्फ कंडोम का व्यापार हज़ारों करोड़ का होता है। विज्ञापन में कहा जाता है कि जो कंडोम ख़रीदते हैं वे समझदार पति होते हैं, यह नहीं कहा जाता है कि उन्मुक्त भोग ग़लत है। कंडोम ने तमाम सामाजिक मर्यादाओं, नैतिक बोध और स्त्री-पुरुष के बीच के भावनात्मक प्रेम की अवधारण को ही ध्वस्त कर दिया है। चिकित्सा विज्ञान के नए आविष्कार ने स्त्री को गर्भ में ही नष्ट कर देने की सुविधा दे दी है, भले ही कानूनी रूप से अवैध है। इस प्रकार यह कहना ग़लत नहीं होगा कि वैश्वीकरण के दौर में स्त्री एक लैंगिक अस्मिता के रूप में भले ही मुक्त हुई हो, एक सामाजिक समूह के रूप में उसका पराभव ही हुआ है।

***

सहायक ग्रंथ :

1. स्त्रीवादी साहित्य विमर्श-जगदीश्वर चतुर्वेदी, अनामिका पब्लिशर्स, दिल्ली

2. बाज़ार के बीच, बाज़ार के ख़िलाफ - प्रभा खेतान, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

3. स्त्री उपेक्षिता- अनु. प्रभा खेतान (द सेकेण्ड सेक्स का हिंदी अनुवाद) हिंद पॉकेट बुक्स दिल्ली

4. स्त्री के लिए जगह- सं. राजकिशोर, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

5. भूमंडलीकरण की चुनौतियाँ- सच्चिदानंद सिन्हा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

6. In theory, Classes, Nations and Literature- Aijaj Ahmad, Oxford University Press

7. पत्रिकाएँ-

Economic and Political Weekly, Mainstream

आलोचना, पहल, तद्भव

अमेरिका में रचित 'प्रवासी हिन्दी साहित्य' का विकास

डॉ. नवनीत कौर

प्रवासी भारतीयों द्वारा रचित साहित्य को 'प्रवासी साहित्य' कहा जाता है। प्रवासी साहित्य हिन्दी, उर्दू, पंजाबी आदि अनेक भाषाओं में रचा जा रहा है। 'प्रवासी हिन्दी साहित्य' का अपना एक संसार है। कमल किशोर गोयनका के अनुसार- ''प्रवासी साहित्य, हिन्दी का साहित्य है जिसका रंग-रूप, उसकी चेतना और संवेदना भारत के हिन्दी पाठकों के लिए नई वस्तु है।'' प्रवासी साहित्य के संबंध में अमेरिका की हिन्दी लेखिका इला प्रसाद लिखती हैं कि-''प्रवासी विशेषण एक विशेष प्रकार की स्थानीयता की पहचान है, जो भौगोलिक है। प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन के मौके पर भारत से बाहर के रचनाकारों को पहली बार इस संबोधन से संबोधित किया गया था। अलग विश्लेषण करने के पीछे भी मानसिकता आरंभ में यह रही होगी कि क्योंकि यह साहित्य एक भिन्न परिवेश से आ रहा है। इसकी शब्दावली, इसकी कथा वस्तु, शिल्प, लेखन शैली आदि भिन्न हो सकते हैं, इसलिए, इसके लिए सीधे-सीधे वे मापदंड नहीं चलेंगे जो भारत में लिखे जा रहे हिन्दी साहित्य पर लागू होते हैं; लेकिन यह हिन्दी साहित्य है और हिन्दी की मुख्यधारा का हिस्सा है।''

ब्रिटेन के बाद, हिन्दी साहित्य लेखन अमेरिका में काफी मात्रा में हो रहा है। यहाँ हिन्दी साहित्य लेखन की शुरूआत 1960 के बाद हुई। अपने एक लेख में अमेरिका की ही प्रवासी हिन्दी लेखिका इला प्रसाद लिखती हैं- ''साठ के दशक से अमेरिकी हिन्दी साहित्य का इतिहास शुरू होता है। उस काल में सृजनरत रचनाकार सोमा वीरा, उषा प्रियंवदा एवं सुनीता जैन की रचनाएँ उस काल का सशक्त परिदृश्य प्रस्तुत करती हैं।'' इसी तथ्य की पुष्टि अमेरिका की एक अन्य प्रवासी हिन्दी लेखिका सुधा ओम ढींगरा इन शब्दों में करती हैं- ''अमेरिका का हिन्दी कथा-साहित्य साठ के दशक में प्रकाश में आया।'' अमेरिका में कब से हिन्दी साहित्य रचा जा रहा है व कितना लिखा जा चुका है इस संबंध में सही व पूर्ण जानकारी कहीं प्राप्त नही होती। इसका कारण बताते हुए कमल किशोर गोयनका लिखते हैं कि, ''मॉरीशस की तरह अमेरिका के प्रवासी हिन्दी साहित्य का कोई इतिहास नहीं लिखा

संपर्क: द्वारा लाभ सिंह, अरूप नगर, गोमती रोड, शाहाबाद, कुरुक्षेत्र, हरियाणा
ईमेल: navi.kaur45@gmail.com

गया, इस कारण पूरी जानकारी नहीं मिल पाती।''

अमेरिका में, 1941 में, गुलाब खंडेलवाल का काव्य-संग्रह 'कविता' प्रकाश में आया। इसके बाद 1965 में वेद प्रकाश 'वटुक' का काव्य-संकलन 'त्रिविधा', 1976 में 'बन्धन अपना देश पराया' 1977 'आपात शतक, कैदी भाई बन्दी देश, 1978 में इन्हीं का एक और काव्य ग्रंथ 'नीलकंठ बन न सका' प्रकाशित हुए। इसके साथ ही 1980 में 'एक बूँद और', 1981 में 'कल्पना के पंख पाकर', 'रात का अकेला सफर', 1982 'नए अभिलेख का सूरज', 1986 में 'बाँहों में लिपटी दूरियाँ' आदि काव्य-संग्रह सिलसिलेवार प्रकाशित हुए। अमेरिका की लेखिका सुदर्शन प्रियदर्शिनी का काव्य - संकलन 'शिखण्डी युग' 1987 में प्रकाशित हुआ। वेद प्रकाश 'वटुक' की एक अन्य काव्य-पुस्तक 'सहसबाहु' 1989 में छपी। अमेरिका में प्रकाशित गद्य पर बात करे तो सन् 1992 में सुषम बेदी का उपन्यास 'हवन' सामने आता है। इससे पहले कोई उपन्यास या कहानी-संग्रह प्रकाशित हुआ हो, ऐसी जानकारी नहीं मिलती। 1995 में रामेश्वर अशान्त का काव्य-संग्रह 'दूर किनारा गहरा पानी' प्रकाश में आया। 1996 में डॉ. विजय कुमार मेहता का काव्य-संकलन 'मधुमास के फूल' व 1997 में इन्हीं का 'पुष्पांजलि' कविता-संग्रह प्रकाशित हुए। इसी वर्ष सुषम बेदी का दूसरा उपन्यास 'लौटना' प्रकाशित हुआ। इनका यह उपन्यास एक औरत के दर्द, तड़पन, कसमसाहट, तकलीफों की कहानी बयान करता है। यह अपने अस्तित्व को खोजती मीरा की कहानी है जो अपनी पहचान खो चुकी है व कहानी-संग्रह 'चिड़िया और चील' प्रकाश में आया इसमें कुल पन्द्रह कहानियाँ हैं। अंजना संधीर का कविता-संग्रह 'तुम मेरे पापा जैसे नहीं हो', वेद प्रकाश सिंह की पुस्तक 'प्राचीन हिन्दू राष्ट्र' आदि भी प्रकाशित हुए। सन् 1998 में प्रो. रामदास चौधरी की पुस्तक 'भारतीय अस्मिता के अग्रदूत', सुषम बेदी का तीसरा उपन्यास 'कतरा-दर-कतरा' छपे। वहीं 1999 में अंजना सुधीर का गजल-संग्रह 'धूप छाँव और आँगन', डॉ. रजनी कान्त लहरी का कहानी-संग्रह 'प्रवासी की माँ' व सुषम बेदी कृत उपन्यास 'इतर' सामने आए। हिन्दी सन् 2000 में सुषम बेदी का ही एक और उपन्यास 'गाथा अमरबेल की'; 2001 में सुदर्शन प्रियदर्शिनी का उपन्यास 'जलाक', सुधा ओम ढींगरा का काव्य संग्रह 'मेरा दावा है'; 2002 में वेद प्रकाश 'वुटक' के दो काव्य-संकलन, 'अनुगूँज', 'बाहुबली'; शशिपाधा का काव्य -संग्रह 'पहली किरण', सुषम बेदी का उपन्यास 'नवाभूम की रस कथा; सुधा ओम ढींगरा का काव्य संग्रह 'तलाश पहचान की' आए। सन् 2003 में 'वटुक' के ही दो और काव्य संग्रह 'इतिहास की चीख' व 'उतर राम कथा' व अंजना संधीर का काव्य संकलन 'अमेरिका हड्डियों में जम जाता है' सामने आए। 2007 में इला प्रसाद का काव्य-संग्रह 'धूप का टुकड़ा', अँजना संधीर का कविता-संग्रह 'संगम', संपादित कहानी-संकलन 'प्रवासी आवाज़', शशिपाधा का 'मानस मंथन' काव्य -संग्रह व सुधा ओम ढींगरा का अनुदित उपन्यास 'परिक्रमा' प्रकाशित हुए। वहीं 2009 में सुषम बेदी का उपन्यास 'मैंने नाता तोड़ा', सुदर्शन प्रियदर्शिनी का उपन्यास 'रेत का घर'; 2010 में सुधा ओम ढींगरा का कहानी-संग्रह 'कौन-सी ज़मीन अपनी' भारतीय व पाश्चात्य परिवेश पर आधारित कहानी-संग्रह, काव्य-संग्रह 'धूप से रूठी चाँदनी' व 2012 में अनिल प्रभा कुमार का कहानी-संग्रह 'बहता पानी' छपे। 2013 में सुधा ओम ढींगरा का कहानी-संग्रह 'कमरा नं. 103' व साक्षात्कार संग्रह 'वैश्विक रचनाकार : कुछ जिज्ञासाएँ' प्रकाशित हुईं। 2014 में सुधा ओम ढींगरा का काव्य संग्रह 'सरकती परछाइयाँ', इला प्रसाद का कहानी-संग्रह 'तुम इतना क्यों रोई रूपाली' ;यह कहानी-संग्रह हमारे चारों तरफ फैली हुई विसंगतियों व विद्रूपताओं को चिन्हित करता है तथा 2015 में सुधा ओम ढींगरा का 'दस प्रतिनिधि कहानियाँ' कहानी संग्रह, संपादित संग्रह सार्थक व्यंग्य के यात्री: प्रेम जनमेजय और संपादित कहानी-संग्रह 'इतर' प्रकाशित हुए। इस कहानी-संग्रह में भिन्न-भिन्न देशों की लेखिकाओं की इक्कीस कहानियों को शामिल किया गया है। अमेरिका की सुदर्शन प्रियदर्शिनी की कहानी 'देशांतर', कैनेडा की शैलजा सक्सेना की 'उसका जाना', अमेरिका की सुषम बेदी की कहानी 'अवसान', ब्रिटेन की कादम्बरी मेहरा की कहानी 'रंगों के उस पार' आदि में प्रवासी जीवन, उसकी कठिनाइयाँ, संघर्ष, प्रवासी व्यक्ति की मानसिकता का चित्रण मिलता है।

कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि अमेरिका में लिखी पचास-साठ के आस-पास हिन्दी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। अमेरिका की प्रवासी लेखिका इला प्रसाद अमेरिकी प्रवासी हिन्दी साहित्य के रूप पर दृष्टि डालते हुए बताती हैं कि ''इसमें मात्र अमेरिकी-भारतीय जीवन शैली की कथा ही नहीं है, दो संस्कृतियों की टकराहट की स्पष्ट अनुगूँज है। विवाहेतर संबंध, यौन हिंसा, शिक्षा पद्धति, सामाजिक ढाँचा, अमेरिकी श्वेत एवं अश्वेत समाज की समस्याएँ-संक्षेप में अमेरिका के जीवन के तमाम पहलू अब यहाँ की ज़मीन पर लिखी जा रही रचनाओं का हिस्सा हैं।''

***

सन्दर्भ: कमल किशोर गोयनका, प्रवासी मिजाज़ कुछ जुदा(लेख), ओम थानवी (संपा.), जनसत्ता, नोएडा (उ.प्र.)29 जनवरी 2012, पृ. 7, इला प्रसाद, दूर देश के लेखक (लेख), जनसत्ता, वही, 12 जुलाई 2012, पृ. 8, इला प्रसाद, 'अमेरिका का परिदृय तथा अमेरिका में हिन्दी का भविश्य(लेख),विश्व हिन्दी पत्रिका, वही, पृ. 4, सुषमा आर्य, अजय नावरिया (संपा.), प्रवासी हिन्दी कहानी एक अंतर्यात्रा, दिल्ली, शिल्पायन, 2013,पृ. 93, कमल किोर गोयनका, हिन्दी का प्रवासी साहित्य, ; Emerging Irends in Recent Literature, Kumkum Bajaj (Ed), Punjabi University, Patiala, 2008, इला प्रसाद, अमेरिका का साहित्यिक परिदृय तथा अमेरिका में हिंदी का भविश्य (लेख), गंगा सिंह सुखलाल (संपा.), मॉरीशस, विश्व हिन्दी पत्रिका, 2011, पृ. 132.

(किसी भी शोधकर्ता के लिए पूरे अमेरिका की जानकारी रखना संभव नहीं। विभोम-स्वर ने सर्वे करके यह जाना है कि अमेरिका में अब तक 450 के करीब पुस्तकें छप चुकी हैं।-संपादक)

कविताएँ

अर्चना गौतम 'मीरा' की कविताएँ

संपर्क: जे-160,पी.सी.कॉलोनी,
कंकड़बाग,पटना-20
मोबाइल:8051348669
ईमेल:archana.gautam64@gmail.com

चलती-फिरती अहिल्या

देह की देहरी में
अहसास होते ही
कि यह स्त्री देह है
देह की देहरी में
कैद हो गई मैं
तौलती नज़रों ने
बींध डाला
ज्यों अस्मिता को।
मापते फ़िकरों ने
टूक - टूक कर दिया
.....अस्तित्व
मैं तब से....
अपने हर टुकड़े को
'जिग-सा' सुलझाती सी
जोड़ने की कोशिश में लगी हूँ...
नहीं जोड़ पाई अभी तक
कुछ टुकड़े
कहीं गुम गए लगते हैं...
डरती हूँ कहीं...
कुचले न जाएँ
मेरे ही पैरों तले
और,
डर-डर कर चलती हूँ
अपनी ही देह की देहरी में
सिमटी-सहमी
गोया चिपक गई हों
सैकड़ों
कुत्सित...
भेदती...बींधती पुतलियाँ
मुझ से।
अपनी इस देहरी को
फलाँग जाना चाहती हूँ
ज़्यादा कुछ नहीं
पाना चाहती हूँ
अपना स्व
अपना वजूद।
मेरी सोच में बिछ गई है
ज्यों इक शतरंज
और मैं केवल
कुछ ही खानों पर
खड़ी रह सकती हूँ
शर्त है जीने की
चलती हूँ मैं
बच-बच कर
चिपकी हुई पुतलियों को
नोंच फेंकने की
कोशिशें करती -
जैसे दो बाँसों के बीच
तनी डोर पर चलते
ऐक्रोबैट्स
देह की देहरी के भीतर।
जीतने की
आकांक्षा लिए
अंगों के कटघरे में
कैद हूँ जैसे
मुक्त होने की
छटपटाहट से भरी
आत्मा का
पाषाण ढोती
मैं चलती हूँ
स्त्री देह से परे
मनुष्य होने की
कामना लिए
एक चलती-फिरती अहिल्या।

***

जो मैं हूँ

मत करो अपनी
आलोचना की कैंचियों
उस्तरों से...
इसके सृजन का...
इसके अस्तित्व का...
शव-परीक्षण!
यह लेता है
अभी साँसें
प्रतिपल गढ़ रहा है...
बढ़ रहा है
हाँ नहीं है खरहा
कछुआ ही सही...
मत आँको इसे...
सुन्दर...असुंदर...
लिंग-भेद...जाति...गोत्र...वर्ण से...
आँकना है...?
आँको इसे शिल्प से...
स्वीकारो इसे...
बिना दस्तानों के
यह भी उष्म है...
स्पंदित है...
चारित है...
न लगाओ कट्स...
स्वीकृति व अस्वीकृति
के बीच
कहीं रहने दो
जैसे का तैसा
यह मैं हूँ...
मैं हूँ यही...
जो होना चाहिए मुझे
और आफ़ताब को
आफ़ताब रहने का
हक़ है तो
ज़र्रे को ज़र्रा भी।

***

कूल डूड

स्त्री को दोयम नहीं समझता
नहीं पक्षधर पुरातनपंथ का
न पोंगापंथी में
भरोसा रखता हूँ,
कतार में चुपचाप
रहता हूँ प्रतीक्षित
'कूल डूड' हूँ
शांत-सौम्य
मैं योग्यता और मेधाविता में
अव्वल. संघर्षरत हूँ,
पीछे खड़ा हूँ
धैर्य खोए बिना
अपनी प्रचंड तेजस्विता की
देख रहा हूँ
लौ फीकी पड़ते
उन्हें आगे खड़ा करके.
जिन्हें किसी
सवर्ण पीढ़ी ने

युगों बीते-
चली आ रही
प्रवंचनाओं तले
रौंदा होगा
उन पुरखों के डीएनए से
भले ही नहीं
मेरे डीएनए की मैचिंग
ढो रहा हूँ उन सौगातों
का बोझ
दम घुटने तक ढोता चला जाऊँगा
मैं 'कूल डूड' - सवर्ण पुरुष
निराधार विद्वेष की
तथाकथित क्रांति को
झेलता
...मैं सवर्ण पुरुष !
मेरे पूर्वपितामह
ने जलाए थे
सामंतवाद के दस्तावेज़
बेशक !
मौन हूँ...
नहीं तोड़ सकता
तहज़ीब के बटन।
***

स्वयंभू

स्वयं जनक हैं हम
निरंतर वाद-विवाद,
प्रतिवाद से उपजे विषाद के।
हम गढ़ते हैं,
रचते हैं स्वयं।
अपनी आधारभूत
आवश्यकताओं के गिर्द
इच्छाओं,आकांक्षाओं
का ताना-बाना,
फिर फँस जाते हैं
हम स्वयं ही।
प्रसाद आशीर्वाद से
इस जीवन को
हम स्वयं ही
डुबोने लगते हैं
अवसाद में।
भूलकर यह -
हम न थे स्वयं के पहले
न होंगे इसके बाद।
हम हार जाते हैं
सर्वजयी होने की प्रवंचना में
स्वयं ही
भूलकर यह कि हम स्वयंभू नहीं।
***

कैमोफ़्लाज

ए.सी. मॉल की
सुपर कूल
दूकान में
वह ज़रा सहम से
प्रविष्ट हुई...
नन्ही को गोद में थामे
साड़ी ज़रा क्रश थी
लटें तनिक बिखरी...
अपने ठीक आगे निकलती
युवती पर दृष्टि पड़ते ही
उसे कॉम्प्लेक्स हो आया...
सुनहरे, सँवरे बाल,
स्टाइलिश ड्रेस-
स्टिलेटोज़ - मेकअप...
युवती काउंटर पर पहुँच चुकी थी-
कामफ्लाग दिखाइए. !
उसने साथ खड़ी
स्टाइलिश युवती को
ज़रा चौंककर
ऊपर से नीचे तक
ग़ौर से ताका-
एक्सक्यूज़ मी... भाई साहब...
शायद ये
कैमोफ़्लाज कहना चाह रही हैं...
सेल्समैन ने तत्परता से
नए कैमोफ़्लाज स्टाइल को
काउंटर पर फैला दिया था
अब झेंपने की बारी
उस युवती की थी
पर बजाय इसके,
युवती ने बालों को
अदा से झटका
लापरवाह - सरसरी निगाह
उसपर डाली
और दो - तीन जीन्स उठाकर
ट्रायल रूम की तरफ चल दी
संभवत:
उसने कर लिया
अपने मनोभावों को भी
कैमोफ़्लाज.
***

सुधा गोयल की कविताएँ

संपर्क:290-ए, कृष्णा नगर, डॉ.दत्ता लेन,
बुलन्दशहर -203001 उ.प्र.
मोबाइल:09917869962,
07409005858
ईमेल: sudhagoyal0404@gmail.com

पाती

ये पाती अनुबंध न कोई
भावों का अनुदान न कोई
जाने कितने स्वप्न सलोने
कितने सौगंधों के ढेर
इनका पार न कोई
वही तुम्हारी प्यारी बतियाँ
डस लेती हैं सारी रतियाँ
मन की भाषा ही पढ़ती हैं
तन से है संबंध न कोई।
पुरवा के झोंके सी ख़ुशबू
मन प्राणों में महके ख़ुशबू
तन में महक समाई ऐसे
महक उठा हो उपवन कोई।
भावों का छलका घट सारा
भुजबंधो का मिला सहारा
फिर कोई सूरज उग आया
भीगे वर्षा जल में जैसे
मन की धरती धूप नहाई।
फिर गरजे हैं बादल काले
रिमझिम रिमझिम बरसे सारे
पता नहीं क्यों अब तक तुमसे
टूटा है तटबंध न कोई।
***

सजाने दो मन प्राण में

एक नदी भाव की
झरती रही आँख में
पल दो पल
ठहरने दो छाँव में।

रुको तो ज़रा
आचमन मैं करूँ
अक्षत हुआ जल
माँग में तो भरूँ
मन में नहीं,
पुलक
पलने दो पाँव में।
गाँव अपना मुझे
नज़र आता यही
छाँव पीपल तले
राही प्यासा यही
आ गई हूँ अब
मधु के गाँव में।
चाँद तारे
ज़रा देख लूँ
भर नज़र
पहचानी सी है
अब ये डगर
माटी हुई
चंदन
सजाने दो मन प्राण में.....

***

बेनू सतीश कान्त की कविताएँ

संपर्क: #416-ए, सोही स्ट्रीट, गवर्नमैंट कॉलेज रोड, सिविल लाइन्ज़, लुधियाना, पंजाब-141001
मोबाइल:098150-14244
ईमेल: sangamve@gmail.com

बचपन

बचपन अक्सर याद आता है
जब यूँ ही कट्टी हो जाती
और फिर यूँ ही
तुरंत दोस्ती का होना
रूठना मनाना छोटी बातें
मस्ती में दिन बीत जाना
माँ से डाँट खाना
पापा की गोद में
माँ की शिकायत करना
अच्छा लगता था
कॉपी किताबों टीचरों
के संग दिन बिताना
दोस्तो को चिढ़ाना
अच्छा लगता था
कभी-कभी जब लेट होना
बहाना बनाना बचने का
वैसे मैं डरती कहाँ
डाँट भी खा लेती
गुदगुदाता मन
अगली शरारत करने को
अच्छा लगता था
साईकिल चलाना
चोटे खाना जीतना हारना
पेड़ों पर चढ़ना और
कच्चे आम, अम्बियाँ और अमरूद
तोड़ना अच्छा लगता था
छोटी-छोटी शरारतें
बड़ी-बड़ी ख़ुशियाँ
दे जातीं
बचपन अक्सर याद आता है.....

***

सफ़र

तेरी हक़ीक़त से
मेरे ख़्वाबों तक का सफ़र
जो अब सर्द हो गया
कभी न जुड़ पाने के लिए
जो मिले थे
ख़ुशबू के साए में
पल में टूट गए
कहाँ रख पाए
बरसों का सफ़र
बिखर गया....
कितना आसान होगा
तुम्हारे लिए
रिश्ते को ख़त्म करना
और कहना
ख़ुद को सँभालो
और समेट लो
अब तेरी पहचान
तेरी वजूद के साथ
जो न थी मेरी पहचान
मेरे वजूद के साथ....
साथ तो था ही नहीं
तो मोह कहाँ
वक़्त के साथ
सब बदल जाता
दर्द का रिश्ता
भी कितना अजीब होता है
जो दूर तक चलता है
मिटता नहीं
सिमटता भी नहीं
बस कसकता है
कचोटता रहता है
ख़त्म करता है हमें
आहिस्ता -आहिस्ता
पर चलता रहता है
बेअदब बेअसर
टूटता बिखरता
ख़ामोशी से
कितना अजीब होता है
ये दर्द का रिश्ता.....

***

बस यूँ ही

अक्सर कुछ कुलबुलाने
लगता है मेरे अंदर
ख़ुद के वजूद को पाने के लिए
इस कारवाँ के स्वरूप में
साथ तो हूँ, पर
मैं कहाँ, मैं होती
मेरा तो वजूद तुम से है
हालातों से जकड़ी
संस्कारों के हवाले
मायका, ससुराल सँभाले
ख़ुद में भी कहाँ पूरी होती हूँ
तुम कहते,तू पहेली
यहाँ तुम्हें कौन, कितना समझता
तू पगली, तू बावरी
तुम कहाँ समझ पाते मुझे
अपने अहम् में कहाँ रख पाते मुझे
कहते कभी हक़ है,
तभी तो शक है
इस मोह में ख़ुद उलझते
तुम्हारा सच्चा, मेरा सब अच्छा
बस हँस कर यूँ ही जी लेती
पाबंदियों के दायरों में
ख़ुद के वजूद को ढूँढ़ती
ख़ुद को तुम में पाती

***

श्रीपर्णा तरफदार की कविताएँ

संपर्क: 20/25 ए, गोपाल चन्द्र बोस
सरणी, पोस्ट : कोन्नगर, जिला : हुगली
पिन : 712235 पश्चिम बंगाल
मोबाइल : 91-8334973017

जब मैं छोटी थी

जब मैं छोटी थी
माँ चुन लेती थी
आँगन में बिखरी डलिया-भर चाँदनी
और तह कर रख देती थी
अपने पुराने लोहे के संदूक में
पिता नहीं जान पाते
चाँदनी की बात
माँ हर दिन बेसब्री से इंतज़ार करती
चाँदनी रात का।
जब मैं छोटी थी
माँ मुझे चाँद कहती थी
मैं चुन लेती थी चाँदनी
कि जब मैं सयानी हो जाऊँ
तो टाँक सके
मेरे दुपट्टे में,
जूड़े में,
सपनों में
थोड़ी-सी चाँदनी।
***

कैनवास

किसी थके हुए
कलाकार की तरह
ईश्वर ने टिका दिया है
अपना सिर
कैनवास पर
उसमें उभर आई है
ऊब, थकान, तन्द्रा
उसकी तूली में
रह गये हैं
बहुत ही कम रंग
पराजय की मुद्रा में बैठा
सोच रहा है
अपनी बेनूर होती जाती
सृष्टि पर।
***

दिखता है मुझे सब कुछ

दिखता है मुझे सब कुछ
सूरज और उसकी रोशनी
चाँद और उसकी चाँदनी
पेड़, पौधे, पक्षी, तितली,
धरती, आकाश, नदी.....
दिखता है मुझे सब कुछ
लोग, उनके आदमख़ोर चेहरे,
उनकी हँसी, उनका दर्द.....
दिखता है मुझे सब कुछ
मेरा घर, मेरे परिजन, मेरे अपने.....
पर देख नहीं पाती ख़ुद को
खड़ी होती हूँ जब
आईने के सामने।
***

सुधीर कुमार सोनी की कविताएँ

संपर्क: अंकिता लिटिल क्राफ्ट,सत्ती बाज़ार
रायपुर (छत्तीसगढ़)
मोबाइल: 09826174067
ईमेल: ankitalittlecraft@gmail.com

कल्पना

बाँस से बनी
गोल पर्री में
माँ
बड़ी पापड़ बनाकर
छत पर सुखाने रखती है
मुझे
बड़ी तारों सा दिखाई देती है
पापड़ चाँद /सूरज सा दिखते हैं
लगता है
जैसे किसी दिन
हाथ उठाकर
माँ ने ही टाँगे होंगे आसमान में
चाँद/सूरज/तारे
***

प्रतीक्षालय

जब चाहा
प्रेम का नाटक किया
भोगा मुझे
तुम
विलम्ब से जाने वाली गाड़ी के
मुसाफिर होगे
लेकिन
मैं
प्रतीक्षालय नहीं हूँ
***

अंतिम विकल्प

गोबर से बने
उफलों में
भागकर आना चाहती है
आग
अनाज पककर
चले गए गोदामों में।
बिचौलिये
खड़े हैं अपने हिस्से उगाहने के लिए।
जिसके पास सिक्का है
वह
आग को भगाकर
उफले तक ले आएगा,
जिसके पास नहीं है
वह
अनाज
बिचौलिये
और उफलों के बीच
भूख बनकर बैठा रहेगा
विकल्प यह है
कि वह
सरकार की दया का पात्र बने
या सगे-सम्बंधियों/पड़ोसियों का
या फिर
मौत का दया का पात्र बने
अंतिम विकल्प
तो तय ही है।
***

कविताएँ

ओम नागर की कविताएँ

संपर्क: 3-ए-26, महावीर नगर तृतीय,
कोटा - 324005(राज.)
मोबाइल:9460677638
ईमेल: omnagaretv@gmail.com

पिता की वर्णमाला

पिता के लिए
काला अक्षर भैंस बराबर।
पिता नहीं गए कभी स्कूल
जो सीख पाते दुनिया की वर्णमाला
पिता ने कभी नहीं किया
काली स्लेट पर
जोड़-बाकी, गुणा-भाग
पिता आज भी नहीं उलझना चाहते
किसी भी गणितीय आँकड़े में।
किसी भी वर्णमाला का कोई अक्षर कभी
घर बैठे परेशान करने नहीं आया
पिता को।
पिता
बचपन से बोते आ रहे हैं
हल चलाते हुए
स्याह धरती की कोख में शब्द बीज
जीवन में कई बार देखी है पिता ने
खेत में उगती हुई पंक्तिबद्ध वर्णमाला।
पिता की बारखड़ी
आषाढ़ के आगमन से होती है शुरू
चैत्र के चुकतारे के बाद
चंद बोरियों या बंडे में भरी पड़ी रहती है
शेष बची हुई वर्णमाला
साल भर इसी वर्णमाला के शब्दबीज
भरते आ रहे है हमारा पेट।
पिता ने कभी नहीं बोई गणित
वरना हर साल यूँ ही
आखा-तीज के आस-पास
साहूकार की बही पर अँगूठा चस्पा कर
अनमने से कभी घर नहीं लौटते पिता।
आज भी पिता के लिए
काला अक्षर भैंस बराबर ही है
मेरी सारी कविताओं के शब्दयुग्म
नहीं बाँध सकतें पिता की सादगी।
पिता आज भी बो रहे है शब्दबीज
पिता आज भी काट रहे है वर्णमाला
बारखड़ी आज भी खड़ी है
हाथ बाँधे
पिता के समक्ष।
***

समय के साथ

कुछ चीज़ें नहीं रहती समय के साथ
बदल लेती है अपनी सूरत और स्वभाव।
जैसे किसी भी किसान के हाथों में
नहीं नज़र आती अब अलसुबह से शाम तक
बंजर खेत की जुताई के दौरान
कील लगी बाँस की लकड़ी/परानिया
और ना ही कमज़ोर बैल के पुट्ठों पर
बचा है अब इतना माँस
जो अनदेखी कर दे दर्द की पराकाष्ठा
बढ़ाता चला जाए अपनी रफ्तार....
वैसे भी कितने कुछ रह गए हैं अब बैल
धरती को आहिस्ता-आहिस्ता जोतने के लिए
गडारों की धूल से उकताए
खंडित बैलगाड़ी के पहिए
कबाड़ की शक्ल में पड़े है
गाँव के बाहर पगडंडी के समीप
जो कभी-कभार याद दिला देते हो शायद
कुरूक्षेत्र में लड़े किसी विकट योद्धा की।
और तो और थान के थान दिखने वाले खेत
समय के साथ तब्दील हो गए हैं
छोटें-छोटें रूमालों की शक्ल में
कुछ बीघा-बिसवों में
पटवारी के बस्ते में बंद खेतों की नकले
बढ़ा रही है किसी न किसी बैंक का ग्राफ
सही है कुछ चीज़ें नहीं रहती समय के साथ
बदल लेती है अपनी उपयोगिता व स्थान।
जैसे बीते बैसाख के अंधड़ ने
बूंढ़े बरगद की वो डाली भी ला पटकी
ज़मीन पर
जिस डाली पर गुज़री सदी के प्रारंभ में
सत्ता-मद में चूर एक राजा ने
मुक्ति के आकांक्षी एक बागी को
लटकवा दिया था सबके समक्ष
फाँसी के फ़ंदे पर।
अब तो वो बरगद भी नहीं रहा
गाँव के बीचों-बीच
हालाँकि वो राजा, वो हुकुमत भी नहीं रही अब
जिसके अट्टाहस में दबी रह गई
कइयों की सिसकियाँ, रुदन, किलकारियाँ
आज उस जगह खड़ा हो रहा है पंचायत भवन
और बरगद की परछाईं तक लगी है
महानरेगा की मस्टरोल में नाम तलाशतें
युवाओं की लंबी कतार।
***

गाँव, इन दिनों

गाँव इन दिनों
दस बीघा लहुसन को ज़िंदा रखने के लिए
हज़ार फीट गहरे खुदवा रहा है ट्यूवैल
निचोड़ लेना चाहता है
धरती के पैंदे में बचा रह गया
शेष अमृत
क्योंकि मनुष्य के बचे रहने के लिए
ज़रूरी हो गया है
फसलों का बचे रहना।
फसल जिसे बमुश्किल
पहुँचाया जा रहा है
रसायनिक खाद के बूते
घुटनों तक
धरती भी भूलती जा रही है शनैः-शनैः
असल तासीर
और हमने भी बिसरा दिया है
गोबर-कूड़ा-करकट का समुच्चय।
गाँव, इन दिनों
किसी न किसी बैंक की क्रेडिट पर है
बैंक में खातों के साथ
चस्पा कर दी गई है खेतों की नकलें
बहुत आसान हो गया है अब
गिरवी होना।
शायद, इसलिए गाँव इन दिनों
ओढ़े बैठा है मरघट सी खामोशी
और ज़िन्दगी से थक चुके
किसान की गर्म राख
हवा के झौंके के साथ
उड़ी जा रही है
राजधानी की ओर.....।
***

अमेरिका की युवा कवयित्री डॉ. अनुराधा सिंह की कविताएँ

धरती माँ

आज मैं बैठी सोचती हूँ यही,
कल भी होगी क्या धरती माँ यूँ ही।
बचपन में मैंने जो देखे नज़ारे,
पेड़ों की डालों पे पंछी प्यारे-प्यारे।
कहाँ हैं वो डालें कहाँ हैं वो पंछी,
ढूँढ़ती हैं ये आँखें उन्हें हर कहीं।
कट रहे हैं जंगल हो रही धरती बंजर,
इन पेड़ों पे यूँ तुम चलाओ न खंजर।
न बनो इतने निर्दयी, न इतने निष्ठुर,
कि पछताओ बाद में देखकर ये जमीं।
कैसे जीवित रहेंगे ये पशु और पंछी,
जो होंगे न वन और न होगी नदी।
क्या होगा हमारा और क्या तुम्हारा,
आज मैं बैठी सोचती हूँ यही.....
***

दीप

चलो दीप से दीप जलाएँ,
सब मन हर्षित हर्षाएँ,
चलो दीप से दीप जलाएँ।
ज्ञान की बहे कल कल धारा,
स्वच्छ व निर्मल मन हो हमारा,
दिल से दिल की हर दूरी को,
आओ मिलजुल के मिटाएँ।
चलो दीप से दीप जलाएँ।
क्या तेरा है क्या है मेरा,
छूट जाएगा ये सारा,
हाथ से हाथ मिला के,
सब में प्रेम सन्देश फैलाएँ।
चलो दीप से दीप जलाएँ।
जहाँ न हो झगड़ा या नफरत,
चमके बस ख़ुशियों का तारा,
कदम से कदम मिला के,
एक नई दुनिया को बसाएँ।
चलो दीप से दीप जलाएँ।
हर एक घर में दीप जले,
मिट जाए सारा अँधियारा,
ताल से ताल मिला के,
सारे जग को स्वच्छ बनाएँ।
***

चीन की युवा कवयित्री अनीता शर्मा 'सखी' की कविताएँ

संपर्क : 1188Yanggao North Road, Building 1 Yang Ming Garden, Apartment No.1211, Pudong Shanghai, China
मोबाइल: 86-15821770829
ईमेल:anitasmexico@hotmail.com

बादल की पुकार

इक दिन कहता नीर गगन से
धरती पर मुझे जाने दो।
भेदो अंतर बूँद-बूँद और
धरती में खो जाने दो ॥
गगन ने पूछा क्या कहते हो,
क्यों धरती पे जाना है ?
अपना अस्तित्व खोकर सारा
बस धरती को पाना है ?
भाता नहीं क्या ऊँचा रहके
अपने नाम से कहलाना ?
नीर नहीं तुम बादल हो,
क्या स्वयं को नहीं पहचाना ?
बादल बोला तुम क्या जानों
क्या होता है खोकर पाना।
होता है अति सुखदायी
कुछ पाने को स्वयं मिट जाना ॥
फिर धरती पर जल का होना
सारे जग के लिए ज़रूरी।
रह न पाऊँ मैं उसके बिन
यह मेरी भी है मजबूरी ॥
उसके क्रोध की गर्मी से मैं
उड़कर बादल बन जाता हूँ।
कृपा तुम्हारी फिर से बरस के
गोद में उसकी गिर जाता हूँ ॥
कितनी ही बार मैं धरती पर
जीता हूँ और मरता हूँ।
नहीं-नहीं फिर भी जाने दो
मैं प्यार उसी से करता हूँ ॥
***

झूठ कहाँ बोला

कैसे प्यार करूँ प्यारे
मैंने प्यार कहाँ देखा है ?
मैंने तो देखे हैं नंगे बच्चे
भूख से बिलखते हुए
मजबूरी के मारे गरीब
शरीरों से खून भी निकलते हुए
पैसे की खातिर देखी
जवानियाँ जलते हुए
मैंने प्यार नहीं यारो
बस देखी है नफरत पलते हुए
प्यार क्या होता है
मुझे नहीं है याद
याद आते हैं तो बस
बरसों से चलते दंगे फसाद
सैंकड़ों कत्ल करके भी
घूमते हैं कातिल आज़ाद
गरीबों को नष्ट करती हुई
अमीरी है आबाद
किसके पास ले जाऊँ फिर
मैं प्यार की फरियाद ?
कहाँ कभी देखा है
किसी को प्रेम से रहते
प्रेम ओर धर्म के नाम पर देखी हैं
लाठियाँ चलते
नेतागिरी के बल पर देखी
गुंडागर्दी पलते
इंसानियत के सीने पर देखा
आक्रमकता को मूँग दलते
मैंने प्यार बहुत ढूँढ़ा
पर मिला ही नहीं
झूठ कहाँ बोला कि
मुझे प्यार करना आता नहीं !
***

ग़ज़लें

अनिरुद्ध सिन्हा

प्रकाशित कृतियाँ नया साल, दहेज (कविता-संग्रह), और वे चुप हो गए (कहानी-संग्रह), तिनके भी डराते हैं, तपिश, तमाशा, तड़प, तो ग़लत क्या है (ग़ज़ल-संग्रह), हिन्दी-ग़ज़ल सौंदर्य और यथाथ, हिन्दी-ग़ज़ल का यथार्थवादी दर्शन, उद्भ्रांत की ग़ज़लों का सौंदर्यात्मक विश्लेषण, हिन्दी ग़ज़ल परंपरा और विकास, हिन्दी ग़ज़ल का नया पक्ष (आलोचना)

सम्पादन- साहित्यिक पत्रिका 'समय सुरभि' और 'जनपथ' के ग़ज़ल विशेषांक का सम्पादन। ''किसी-किसी पे ग़ज़ल मेहरबान होती है(अशोक मिज़ाज की ग़ज़लें)तथा बिहार के प्रतिनिधि ग़ज़लकार का सम्पादन ।

देश के तमाम स्तरीय पत्र/पत्रिकाओं में निरंतर ग़ज़लों और आलेखों का प्रकाशन

सम्मान

बिहार उर्दू अकादेमी, राजभाषा, विद्यावाचस्पति, नई धारा का रचना सम्मान, आचार्य लक्ष्मीकान्त मिश्र स्मृति सम्मान के अतिरिक्त दर्जनों साहित्यिक संस्थाओं द्वारा सम्मानित

सदस्य-बिहार फिल्म विकास एवं वित्त निगम

संप्रति -स्वतंत्र लेखन

संपर्क : गुलज़ार पोखर,मुंगेर, (बिहार) 811201

ईमेल : anirudhsinhamunger@gmail.com

मोबाइल : 09430450098

दिखाई दे न जो उसका हिसाब क्या रखता
अँधेरी रात में सूरज का ख़्वाब क्या रखता
हरेक बार की फूलों से जिसने गुस्ताखी
मैं उसके हाथ में दिल का गुलाब क्या रखता
वो मेरा दोस्त था हमदम था जाँनिसार भी था
मैं उसके सामने कोई हिजाब क्या रखता
किसी चिराग की लौ में न ख़ुद को पहचाना
सियाह रात में रुख़ पर नक़ाब क्या रखता
हरेक सिम्त की मजबूरियों के घेरे में
हवा के रुख़ पे ग़मों की किताब क्या रखता

* * *

कोई किसी की तरफ है कोई किसी की तरफ
वो एक हम हैं जो रहते हैं ज़िंदगी की तरफ
ज़रूर उससे कोई दिल का मामला होगा
हमारी सोच भटकती है क्यों उसी की तरफ
ग़मों ने इतनी मुहब्बत से हमको पाला है
क़दम उठे न हमारे कभी ख़ुशी की तरफ
वफ़ा का साज़ उठाए हुए न जाने क्यों
मैं चल रहा हूँ अँधेरी तेरी गली की तरफ
भटक न जाए वो सहरा में दर बदर होकर
बढ़ाए हाथ समुंदर रहा नदी की तरफ

* * *

निकल न पाया कभी उसके दिल से डर मेरा
इसीलिए तो जलाया है उसने घर मेरा
तमाम रात जो तुम बेख़ुदी में रहते हो
तुम्हारे दिल पे है शायद अभी असर मेरा
मैं उस गली में अकेला था इसलिए शायद
हवाएँ करती रहीं रात भर सफ़र मेरा
न जाने कौन सी उम्मीद के सहारे पर
ग़मों के बीच भी हँसता रहा जिगर मेरा
नई सुबह के नए इंतज़ार से पहले
खुला हुआ था तेरी याद में ये दर मेरा

* * *

पाले हुए जो ज़ख़्म ज़ुबाँ पर उतर गए
रिश्ते तमाम कट गए जज़्बात मर गए
घर की तलाश और मुहब्बत की चाह में
निकले हुए वे लोग न जाने किधर गए
ये और बात है कि हमें कुछ नहीं मिला
जब ज़िंदगी की खोज में हम चाँद पर गए
साये की तरह रहते थे जो साथ -साथ वो
रस्ते में अब मिले भी तो बचकर गुज़र गए
ख़ुशबू तुम्हारे जिस्म की ये काम कर गई
काँटों पे चल रहे थे अचानक ठहर गए

* * *

जो आँसू पी के हँसना जानता है
मुहब्बत को वही पहचानता है
पड़े हैं पाँव में जिसके भी छाले
सफ़र की वो हक़ीक़त जानता है
भरम कल टूट जाएगा तुम्हारा
फ़रिश्ता कौन किसको मानता है
वो किसकी याद लेकर बस्तियों में
गली की ख़ाक हर दिन छानता है
शहर में फिर रहा हूँ अजनबी-सा
कोई मुझको कहाँ पहचानता है

* * *

ग़ज़लें

भावना कुमारी

जो करके बंद आँखों को यहाँ चुपचाप बैठे हैं
सियासत की सभी गहराइयों को नाप बैठे हैं
यही अपराध है उनका कि दोनों प्रेम कर बैठे
सज़ा जिनके लिए लेकर यहाँ के 'खाप' बैठे हैं
जो केवल स्वार्थ से लिपटे हुए हैं पाँव से सर तक
वही तो देश की धरती पे बन अभिशाप बैठे हैं
वहाँ उम्मीद क्या होगी सुरक्षा की, कहो तुम ही
जहाँ पे कुंडली मारे हज़ारों साँप बैठे हैं
न जाने कितने जन्मों का जिगर में बोझ को लेकर
लिए हाथों में माला को वो करने जाप बैठे हैं
सियासत के सिंहासन पर सभी हैं एक-ही जैसे
जहाँ थे वे कभी बैठे, वहाँ पे आप बैठे हैं

* * *

पर्वत पिघल पड़ा तो पानी को आन क्यूँ है ?
गुमसुम नदी के भीतर ऐसा उफान क्यूँ है ?
अमृत के बदले जिसको केवल गरल मिला हो,
तुम पूछते हो उसकी तीखी जुबान क्यूँ है ?
मेरा ही वोट लेकर बैठा है बन के नेता
उस आदमी की ख़ातिर ऊँची मचान क्यूँ हैं ?
सच जीतता है अक्सर, सब ऐसा मानते हैं
फिर कठघरे के भीतर झूठा बयान क्यूँ है ?
बच्चे ये पूछते हैं मंदिर की सीढ़ियों पर
जो प्रार्थना है मेरी, उसकी अज़ान क्यूँ है ?

* * *

आज के समय में व्यंग्य लिखना जोखिम भरा काम है और मुकेश कुमार ने ये दुस्साहस किया है-उदयप्रकाश

कोई भी सर्व सत्तावादी जिस चीज़ से सबसे ज़्यादा डरता है वह है व्यंग्य। वह व्यंग्य को बर्दाश्त नहीं कर पाता यहाँ तक कि कार्टून को बर्दाश्त नहीं कर पाता। ऐसे में व्यंग्य लिखना भारी जोखिम का काम है और वह मुकेश कुमार ने किया है। ये उनका दुस्साहस है कि उन्होंने फ़ेक एनकाउंटर लिखा।

ये विचार जाने-माने कथाकार एवं कवि उदयप्रकाश ने डॉ. मुकेश कुमार की किताब फ़ेक एनकाउंटर के लोकार्पण के अवसर पर कही। लोकार्पण दिल्ली स्थित प्रेस क्लब ऑफ इंडिया के सभागार में हुआ। कार्यक्रम में साहित्य एवं पत्रकारिता के अलावा अन्य क्षेत्रों के सौ से अधिक लोगों ने हिस्सा लिया।

कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे उदयप्रकाश ने कहा, मैंने इस किताब को पढ़ा है और मैं ये कह सकता हूँ कि ये एक ऐसी किताब है जिसे शुरू करने के बाद रखना मुश्किल हो जाता है। मुकेश कुमार ने कभी भी सामाजिक सरोकारों को छोड़ा नहीं और वह प्रतिबद्धता फ़ेक एनकाउंटर में भी देखी जा सकती है।

उदयप्रकाश ने किताब की ख़ूबियों पर रोशनी डालते हुए कहा कि सभी फ़ेक एनकाउंटर बहुत चित्रात्मक हैं, विज़ुअल हैं और इसका नाट्य रूपांतर करके कोई टेलीविज़न शो किया जाए तो वह चैनलों पर चलने वाले कई व्यंग्यात्मक कार्यक्रमों से बेहतर होगा, वह अद्भुत होगा और उसे बनाया जाना चाहिए।

इससे पहले कार्यक्रम के मुख्य अतिथि ओम थानवी ने मौजूदा समय की चुनौतियों, बढ़ती असहिष्णुता सत्ताधारियों के चरित्र का ज़िक्र करते हुए कहा कि मुकेश जी के सौम्य व्यक्तित्व की झलक इस किताब की भाषा और उनके कहने के अंदाज़ में भी है। शोर-शराबे के इस दौर में मुकेश ऐसा कर रहे हैं ये अच्छी बात है। उन्होंने कहा कि फ़ेक एनकांउटर में काल्पनिक इंटरव्यू के ज़रिए उन्होंने मौजूदा दौर का खाक़ा खींचा है और कहना होगा कि उनकी रेंज बहुत बड़ी है। उन्होंने ओबामा से लेकर मोदी तक सबके साथ एनकाउंटर किया है और साथ ही साथ पत्रकारों की स्थिति को भी उजागर किया है। थानवी ने कहा कि ये बहुत ख़तरनाक़ दौर है और इस किताब के बहाने उस दौर की भी चर्चा की जानी चाहिए, उसे भी जाँचा-परखा जाना चाहिए।

कार्यक्रम में मुख्य वक्ता की हैसियत से हिस्सा ले रहे वरिष्ठ पत्रकार एवं लेखक प्रियदर्शन ने कहा कि वे फ़ेक एनकाउंटर लगातार पढ़ते रहे हैं और उसे एक किताब के रूप में पढ़ना उनके लिए एक नया अनुभव था। उन्होंने कहा कि किताब में संकलित फर्ज़ी एनकाउंटर झूठ को बेनकाब करते हैं। मुकेश जी ने व्यंग्य के शिल्प को बहुत करीने से साधा है और वह पारंपरिक शिल्प नहीं है। हम लोग व्यंग्य की जिस परंपरा की बात करते हैं ये उनसे हटकर हैं। वे पत्रकारिता के भीतर इंटरव्यू के मार्फ़त उन स्थितियों को ऐसे रख देते हैं जो अपने ढंग से विडंबनामूलक हैं और हम उन्हें व्यंग्य की तरह पढ़ने लगते हैं। मुझे अंदेशा था कि कहीं पूरी की पूरी किताब उसी वैचारिक लाइन पर न हो जिसके लिए लेखकों को बदनाम कर दिया गया है। मैंने पाया कि ये शिथिलता बिल्कुल भी नहीं है और इसमें सारे पक्ष आ गए हैं। ये शिकायत कोई नहीं कर सकता कि ये किताब किसी एक विचारधारा की ओर झुकी हुई है।

प्रियदर्शन ने किताब की विस्तृत चर्चा करते हुए कहा कि मुकेशजी शिल्प के स्तर पर भी प्रयोग कर रहे हैं। उन्होंने कार्टून और कैरीकेचर की विधा का भी इसमें इस्तेमाल किया है। वे अपने पर भी चुटकी लेने से परहेज़ नहीं करते। उन्होंने कहा कि किताब पर तात्कालिकता बहुत हावी है और इसलिए मैं पाता हूँ कि दस-पंद्रह साल बाद कोई पढ़ेगा तो उसे आज के चरित्रों के बारे में कितना पता होगा। मुकेश जी को तात्कालिकता से आगे जाने की ज़रूरत है। इस सबके बावजूद इसे लगातार पढ़ने की इच्छा होती है और इसे कहीं से भी पढ़ा जा सकता है।

किताब के लेखक डॉ. मुकेश कुमार ने कहा कि हम एक फ़ेक समय में रह रहे हैं। इस समय में सब कुछ फ़ेक है। मीडिया तो फ़ेक है ही, फ़ेक राष्ट्रवाद है, फ़ेक दलित, पिछड़ा और अल्पसंख्यक प्रेम है। उन्होंने कहा कि नेता राजनीति फ़ेक है और इस वजह से लोकतंत्र भी फ़ेक लगने लगा है। इस फ़ेक को काटने के लिए उन्होंने इन फर्जी एनकाउंटर का सहारा लिया और उन्हें खुशी है कि इन्हें देश भर में ख़ूब पढ़ा और सराहा गया।

सुपरिचित कवयित्री एवं शिवना प्रकाशन की निदेशक पारुल सिंह ने किताब का परिचय देते हुए कहा कि फ़ेक एनकाउंटर अनूठा व्यंग्य संग्रह है और व्यंग्य पत्रकारिता की पहली पुस्तक है। ये व्यंग्य संग्रह पहले बनाए गए दायरों को तोड़कर आगे निकल जाता है। मुकेश कुमार ने बहुत सारे नए प्रयोग किए हैं और इसलिए भी साहित्य एवं पत्रकारिता जगत् में इसकी चर्चा होनी चाहिए। उन्होंने मुकेश कुमार का इसके लिए आभार व्यक्त किया कि उन्होंने ये व्यंग्य संग्रह प्रकाशन के लिए शिवना प्रकाशन को दिया।

लोकार्पण समारोह की एक बड़ी विशेषता जानी मानी टीवी ऐंकर आरफ़ा ख़ानम शेरवानी का संचालन रहा। उन्होंने किताब के कुछ अंशों का पाठ भी किया।

***

संतोष चौबे के उपन्यास जलतरंग पर आधारित नाटक का हुआ मंचन

सुविख्यात कवि कथाकार संतोष चौबे के बहुचर्चित उपन्यास पर आधारित, पटकथा एवं नाट्य लेखक अशोक मिश्र द्वारा नाट्य रूपान्तरण जल तरंग में भोपाल के दर्शकों को कुछ हटकर नए प्रयोग देखने को मिले। नाटक की मूल कथा संगीत प्रेमी और जल तरंग वादक देवाशीष पर केन्द्रित होती है। जिसमें संगीत के शोर में परिवर्तित होने और अंत में शोर पर संगीत की विजय को दर्शाया गया। कहानी देखने-सुनने में साधारण सी लगती है किन्तु कहानी के नायक के साथ घटित घटनाओं को लेखक एवं निर्देशक ने पात्रों के माध्यम से जिस ढंग से प्रस्तुत किया वह नाटक को रोचक बनाता है । ये घटनाएँ आज हमारे जीवन में आम हो गई हैं, इनको अनदेखा करते हुए हम दिन प्रतिदिन शोर-गुल के वातावरण में ध्वनि प्रदूषण की गिरफ़्त में आते जा रहे हैं। कहानी का नायक इसी संदर्भ में दर्शकों से संवाद एवं प्रश्न करता हुआ भी दिखाई देता है। नाटक में देवाशीष की संगीत यात्रा को सिनेमा के माध्यम से दिखाया गया। नायक-नायिका की भूमिका तीन अलग-अलग कलाकारों ने अभिनीत की। संगीत यात्रा के साथ देवाशीष स्मृति की प्रेम कथा नाटक के प्रमुख बिन्दु थे।

निर्देशक के अनुसार किसी कला माध्यम में नए प्रयोग ना हो तो वह धूमिल पड़ने लगती है। जहाँ एक ओर निर्देशक ने नए प्रयोगों के माध्यम से प्रस्तुति को रोचक बनाने का प्रयास किया वहीं दूसरी ओर कथाकार संतोष चौबे ने कहानी के माध्यम से दर्शकों के समक्ष संगीत के इतिहास पर भी प्रकाश डाला।

45 कलाकारों द्वारा अभिनीत इस नाटक की अवधि 2 घंटा 10 मिनिट थी। जिसमें 10 मिनिट मध्यांतर भी रखा गया था। समूह नृत्य, संगीत, रोचक घटनाएँ एवं कुछ प्रमुख कलाकारों का अभिनय दर्शकों को पूरे समय बाँधे रखता है। मुकुल त्रिपाठी, गणपत स्वरूप पाठक, ज्योति दुबे, मुकेश पाचौड़े, संतोष कौशिक, खुशबू चोबितकर और भारत सिंह के संजीदा अभिनय ने प्रस्तुति को सफल बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

प्रकाश परिकल्पना कमल जैन की थी, संगीत स्मिता नागदेव का, हार्मोनियम एवं तबले पर अनिल संसारे और लक्ष्मी नारायण ओसले ने संगत दी।

***

– यतीन्द्र अत्रे

बैंक ऑफ़ बड़ौदा का 'महाराजा सयाजीराव भाषा सम्मान' श्री शैलेष लोढ़ा को

बैंक ऑफ़ बड़ौदा के कॉर्पोरेट कार्यालय, मुंबई में आयोजित वार्षिक राजभाषा समारोह में वर्ष 2017 का महाराजा सयाजीराव भाषा सम्मान प्रख्यात अभिनेता एवं कवि श्री शैलेष लोढ़ा को प्रदान किया गया। इस सम्मान के अंतर्गत 1 लाख 51 हज़ार रुपये की राशि एवं सम्मान पत्र प्रदान किया जाता है। कार्यक्रम की अध्यक्षता बैंक के प्रबंध निदेशक श्री पी.एस. जयकुमार ने की। इस अवसर पर विशिष्ट अतिथि के रूप में हिन्दी संगम प्रतिष्ठान, न्यूयॉर्क के अध्यक्ष श्री अशोक ओझा एवं बैंक के कार्यपालक निदेशक श्री मयंक के मेहता, श्री अशोक कुमार गर्ग एवं श्रीमती पापिया सेनगुप्ता भी उपस्थित थीं।

कार्यक्रम के प्रारंभ में कार्यपालक निदेशक श्री अशोक कुमार गर्ग ने सभी उपस्थित अतिथियों का स्वागत किया। इस अवसर पर बैंक द्वारा राजभाषा की अविराम यात्रा वृत्तचित्र एवं तिमाही हिन्दी पत्रिका 'अक्षय्यम्' के नवीनतम अंक का भी विमोचन किया गया। समारोह को संबोधित करते हुए बैंक के प्रबंध निदेशक एवं मुख्य कार्यपालक अधिकारी श्री पी एस जयकुमार ने बैंक में राजभाषा कार्यान्वयन संबंधी उपलब्धियों का जिक्र किया। श्री शैलेष लोढ़ा ने अपने प्रभावी उद्बोधन से सभी दर्शकों का मन मोह लिया। उन्होंने कहा कि भाषा हम सभी को जोड़ने का काम करती है एवं सभी भाषाओं का अपना अलग सौंदर्य है। इस समारोह में हिन्दी दिवस के अवसर पर आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं के विजेताओं को सम्मानित किया गया। कार्यक्रम का संचालन उप महाप्रबंधक (राजभाषा) डॉ. जवाहर कर्नावट एवं मुख्य प्रबंधक (राजभाषा) श्री पुनीत कुमार मिश्र ने किया। अंत में महाप्रबंधक श्री राधाकांत माथुर ने आभार प्रदर्शन किया।

***

–बबीता उपाध्याय, वरिष्ठ प्रबंधक (राजभाषा), बैंक ऑफ़ बड़ौदा

सुनील गज्जाणी को सलिला साहित्य रत्न सम्मान

बीकानेर के गद्य-पद्य विधा के रचनाकार सुनील गज्जाणी को बाल साहित्य के लिए सलिला संस्थान, सलूम्बर उदयपुर द्वारा सलिला साहित्य रत्न सम्मान आठवें राष्ट्रीय बाल साहित्यकार सम्मलेन में प्रदान किया ।

बाल साहित्य एवं लघुकथा लेखन में अपना मकाम बनाते जा रहे सुनील गज्जाणी को देश के भिन्न-भिन्न राज्यों से पधारे बाल साहित्यकारों के समक्ष गौरवमयी बाल साहित्य सम्मान डॉक्टर देव कोठारी, डॉक्टर रमा कान्त शर्मा, डॉक्टर जय प्रकाश पंड्या ज्योतिपुंज, डॉक्टर रवि शर्मा, डॉक्टर विमला भंडारी के सानिध्य में दिया गया।

***

साहित्य का काम मनुष्य को ऊँचा उठाना है गिराना नहीं - डॉ. हरीश नवल

गुरुग्राम हरियाणा में व्यंग्य पर तीन सितम्बर को महत्त्वपूर्ण संगोष्ठी के आयोजन की रपट

गुरुग्राम: यहाँ तीन सितम्बर को 'शब्द शक्ति साहित्यिक संस्था', गुरुग्राम के तत्वावधान में व्यंग्यशाला और 'अट्टहास' मासिक पत्रिका के तीन व्यंग्यालोचना विशेषांकों के लोकार्पण का आयोजन महत्त्वपूर्ण रहा। समारोह के मुख्य अतिथि प्रतिष्ठित व्यंग्यकार डॉ. हरीश नवल रहे। वरिष्ठ व्यंग्यकार डॉ. सुरेश कान्त, व्यंग्य आलोचक और इतिहासकार डॉ. सुभाष चन्दर, व्यंग्य आलोचक डॉ. रमेश तिवारी, अनूप श्रीवास्तव और वरिष्ठ कथाकार-संपादक बलराम, वरिष्ठ व्यंग्यकार फारूक आफरीदी ने मंच साझा किया।

कार्यक्रम के प्रारंभ में स्थानीय कवियों और गद्य रचनाकारों अनिल श्रीवास्तव, सुश्री सुरेखा एवं अन्य ने अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की जिन पर मंचस्थ सभी अतिथियों नें व्यंग्य के सन्दर्भ में आलोचनात्मक दृष्टि से चर्चा की। इस अवसर पर अट्टहास के संरक्षक कप्तान सिंह भी मौजूद थे। प्रारंभ में कार्यक्रम के संयोजक युवा व्यंग्यकार-आलोचक डॉ. एमएम चन्द्रा ने कहा कि युवा व्यंग्यकार आज व्यंग्य की ज़मीन पर काफी महत्त्वपूर्ण प्रयास कर रहे हैं। पिछले दिनों ऐसे एक सौ सैतालीस युवा व्यंग्यकारों को चिह्नित किया गया और उनमें से 76 की रचनाओं को सम्मिलित कर एक संकलन निकाला गया। ऐसे युवाओं को तराश कर और मार्ग दर्शन देकर भविष्य में उनसे बेहतर व्यंग्य की संभावनाएँ तलाशी जा सकती हैं। व्यंग्य के प्रतिभा संपन्न रचनाकारों से उन्हें बहुत कुछ सीखने को मिलेगा।

डॉ. चन्द्रा ने व्यंग्य लेखन के आज के परिदृश्य की चर्चा करते हुए कहा कि कला सामाजिकता से जन्म लेती है। जहाँ तक व्यंग्य की बात है तो इतिहास में इसकी तीन प्रवृतियाँ हैं। पहली भाषाई चालाकियों की, सामाजिक उपयोगिया की और सामाजिक परिवर्तन के आधार पर व्यवस्था में बदलाव लाना। पहली तरह की शैली का मतलब वर्मन विसंगतियों पर प्रहार करना और व्यवस्था को बदलना और दूसरा वर्तमान सत्ता में रहते हुए व्यवस्था बनाए रखना तथा तीसरी शैली सत्ता के खिलाफ बोलते रहना किन्तु उसके पुरस्कार लेते रहना है।

मुख्य अतिथि प्रतिष्ठित व्यंग्यकार डॉ. हरीश नवल ने इस अवसर पर कहा कि व्यंग्य में बारीकी को समझने की सतत चेष्टा की आवश्यकता है। आलोचक की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण होती है। हम पूर्वाग्रहों से नहीं आग्रहों के साथ बात करें। उन्होंने कहा कबीर के पास भाषा और शैली नहीं थी लेकिन भाव था। इसलिए भाव का अभाव न हो। व्यंग्यकार की दृष्टि बहुत सूक्ष्म होनी चाहिए।वह सतही न हो बल्कि बात की तह तक जाए। उसमें सूक्ष्म पर्यवेक्षक दृष्टि और धैर्य हो। व्यंग्य में जिसके पास चिंतन नहीं होगा उसका आगे चलकर कोई नामलेवा नहीं होगा। लेखन में हमने कितना लिखा इसका कोई महत्त्व नहीं बल्कि यह देखा जाएगा कि आपने कितना अच्छा लिखा। अपने लेखन को एक विषय तक भी सीमित नहीं रखना चाहिए। अगर आप फ्यूजन नहीं करेंगे तो हमेशा कन्फ्यूजन रहेगा। आपको चीज़ों को समझना होगा। आज सूचनाओं को ज्ञान समझ लिया गया है। माँ और बेटी का अपमान हो हो रहा है और हमारे नियंता चुप बैठे हैं। व्यंग्य क्लासिक है, इसे हर कोई नहीं समझ सकता। आलोचना के बाद व्यंग्य ही ऐसी विधा है जिसमें सबसे ज्यादा बौद्धिक पराकाष्ठा की ज़रूरत होती है। व्यंग्य का सम्बन्ध विडम्बना और विद्रूपता से है। इसमें हँसाने नहीं बल्कि रुलाने की क्षमता होनी चाहिए। वह अंत में मीठा सुकून दे।

डॉ. नवल ने कहा कि साहित्य का काम मनुष्य को ऊँचा उठाना है गिराना नहीं। व्यंग्य चित्र में जीनियस होता है बस इस जीनियस को पहचान लो। व्यंग्य लिखने से पहले अपनी प्रतिभा को पहचानने की ज़रूरत है। एक लेखक को प्रज्ञाशील होना चाहिए। अच्छा साहित्यकार अच्छा मनुष्य बनाता है। व्यंग्य में व्युत्पति का महत्त्व है, उसमें सांकेतिकता हो। अगर अपने सब कुछ प्रत्यक्ष कह दिया तो वह व्यंग्य नहीं है। उसकी महत्ता व्यंजना में है। अगर आप किसी व्यंग्य रचना को रोचक और ग्राह्य नहीं बना सकते तो आप वह लिखिए जिस विधा में आप बेहतर लिख सकते हैं। व्यंग्य लिखने से पहले आप पुराने लेखकों और अपने साथियों को पढ़िए। डॉ. नवल ने अपने लेखन की चर्चा करते हुए कहा कि उन्होंने पिछले पैतालीस सालों में अपने शिष्यों से, परिवार से सीखा और जाना जो आज भी अक्षुण्ण है। अपने भीतर आचरण की सभ्यता होनी चाहिए, चरित्र होना चाहिए। व्यंग्यकार के भीतर उदारता, विनम्रता हो, उसमें विद्वेष ना हो और किसी को रंदा ना लगाए। रंदा लगाना छोड़ दो। हम नियामक नहीं हैं। हम नियमों का पालन करें। मुश्किल यह है कि हम होना चाहते हैं किन्तु दिखना नहीं चाहते। हम मन से सुन्दर बनें। इसके लिए सत्यम, शिवम् और सुन्दरम की कसौटी पर उतरना पड़ता है। हम समाज को लाभान्वित करने के लिए लिखें किसी को पीड़ित प्रताड़ित करने के लिए नहीं। हम अभाषित नहीं सुभाषित हों। व्यंग्यकार को गंदे नाले के पास खड़ा होना पड़ता है वह रूमानी कवि की तरह नहीं हो सकता। व्यंग्यकार विद्रूपताओं को ढूँढ़ता है और अपनी शैली और भाषा के जरिए वह उसे व्यक्त करता है। उसमें अहम् का नहीं 'हम' का भाव हो। धर्म एक ही होता है जो मानवता पर आधारित है।

कला सिखलाई नहीं जा सकती किन्तु सीखी जा सकती है:

प्रसिद्ध व्यंग्यकार डॉ. सुरेश कान्त ने

कहा कि व्यंग्य साहित्य है इसलिए कला है और कला सिखलाई नहीं जाती। हमारे यहाँ गुरु-शिष्य परंपरा भी रही है। इसके बावजूद मैं कहना चाहूँगा कि कला सिखलाई नहीं जा सकती किन्तु सीखी जा सकती है। उन्होंने प्रश्न किया कि व्यंग्य की आवश्यकता क्यों है? उन्होंने कहा कि मनुष्य मूल रूप में देवता होता है किन्तु संसार में असुर भी हैं। असुर प्रवृत्तियाँ व्यंग्य लिखने को विवश करती हैं। इंसान के फीलिंग्स तो है किन्तु जिसके पास संवेदना है, भाषा है, कलम है, व्यंजना को साधने का गुण है वह व्यंग्य लिख सकता है।।हमने जो कुछ पाया वह गुरुजनों से पाया तो कुछ जीवन अनुभवों से पाया। व्यंग्य एक विधा है। जब हम किसी घटना या विषय से विचलित होते हैं, हमारे भीतर एक प्रकार का आक्रोश पैदा होता है तो हम लिखते हैं। इस आक्रोश से लेख, कविता और कहानी आदि जन्म लेते हैं। भारतीय वांग्मय में साहित्य और साहित्येत्तर दो प्रकार की गतिविधियाँ होती हैं। व्यंग्य के कई टूल्स होते हैं। इनें अतिशयोक्ति, अन्योक्ति, उपहास, हास्य का प्रयोग किया जाता है। इनमें मिथक का प्रयोग बहुधा आसान है। वह पाठक को बाँध लेता है। उन्होंने श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास 'राग दरबारी' को उदृत करते हुए एक प्रसंग बताया कि हम मेले में जाते हैं और देखते हैं कि वे कैसे गन्दगी को भी पकवान में बदल देते हैं। इसलिए मैं हमेशा कहता हूँ अपने वरिष्ठों को पढ़ें, उनसे सीखेंगे। जलते हुए दीपक की लौ को देखें, धैर्य रखें। आज की पीढ़ी में धैर्य नहीं है, उन्हें जल्दी है। आज व्यंग्यकार बनना आसान लगता है। व्यंग्यकार की लोकप्रियता व्यंग्य लेखन के लिए आकर्षित करती है। व्यंगकार आम आदमी की पीड़ा को वाणी दे रहा है और तुरंत देता है। लक्ष्य को साधता है। आज व्यंग्यकार को आदमी सबसे ज़्यादा पसंद करता है। मेरा कहना है कि व्यंग्यकार की जैसी लेखनी है उसका आचरण भी वैसा होना चाहिए। व्यंग्यकार आज नायक समझा जा रहा है तो उसे अपने आचरण से साबित भी करें। अखबार में लिखना अपने को सक्रिय बनाए रखना भर है और वह किसी बड़े काम के लिए अपने को सक्रिय रखता है। व्यंग्यकार अगर ऐसा अचर्ना करेगा तो एक दिन बुझा हुआ दीपक कब जल उठेगा आपको पता ही नहीं चलेगा।

संवेदना की धार भेदने के लिए जिस कील की जरुरत है उसे व्यंग्य कहते हैं:

वरिष्ठ व्यंग्यकार और इतिहासकार डॉ. सुभाष चंदर ने कहा कि आज समाज में शोषण, तनाव, कुंठा, बेहूदगी और असामाजिकता की दीवार बन गई है। उसमें छेद करने की कोशिश की जा रही है। यह दीवार इतनी मोटी हो गई है कि संवेदना की धार को दूर से लौटा देती है। इसको भेदने के लिए जिस कील की जरुरत है उसे व्यंग्य कहते हैं।

व्यंग्यकार अपनी रचनाओं के जरिए विसंगतियों के खिलाफ माहौल बनाने का काम करते हैं और गहरे तक जाते हैं। व्यंग्य लिखने के पीछे एक विशेष सोच होती है। यह वह सोच ही होती है जो किसी को हरिशंकर परसाई बना देती है। जिस किसी के पास भाषा, शिल्प और चीजों को पकडऩे की क्षमता होती है वह व्यंग्य लिख सकता है। युवा व्यंग्यकारों को मेरा यही कहना है कि वे हमारे वरिष्ठ व्यंग्य लेखकों को पढ़े, उन्हें समझें और चीज़ों को पकड़ने का हुनर सीखें। कह भी गया है-सौ पढ़िए, दस गुनिए और एक लिखिए। व्यंग्यकार के पास ऐसा शिल्प होना चाहिए जो उसकी बात को संप्रेषित कर सके। व्यंग्य लिखना कोई सिखा नहीं सकता। व्यंग्यकार को समझ में जो घट रहा है उस पर पैनी नज़र रखने की आवश्यकता है। डॉ. सुभाष चंदर ने कहा कि व्यंग्य के नवलेखन में आज सपाटबयानी चरम पर है। व्यंग्य किसी घटना का आख्यान नहीं है और ना ही किसी विसंगति पर प्रतिक्रिया भर है। राचन में व्यंग्य लाना है तो शैलीय उपकरणों को समृद्ध करना होगा। रचना ऐसी हो जिसमें देश, काल, परिवेश हों और उसे रिक्शेवाले से लेकर प्रबुद्ध प्रोफेसर तक सभी समझ जाएँ।

फटी बिवाई को अभिव्यक्त करना व्यंग्य है:

व्यंग्यकार और आलोचक डॉ. रमेश तिवारी ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि लिखता वही है जिसमें लिखने की आग होती है और यह आग बेचैन करती है। समाज कैसा है, इसका आईना लहक लेखक ही दिखाता है। लेखक यह नहीं कहता कि जो व्यक्त कर रहा है उस मार्ग पर चलो। हर इन्सान में कुछ मानवीय रुचियाँ होती हैं। रचनाकार में मूलत: संवेदना और सहृदयता होती है, जो उससे कुछ लिखवाती है। सवाल यह उठता है कि कोई इन्सान आखिर क्यों लिखे? इसके पीछे एक प्रकार की बेचैनी होती है। जैसे एक स्त्री प्रसव पीड़ा से गुज़रती है और उसके बाद प्रसन्नता का अनुभव करती है बिलकुल वैसा ही लेखन से गुज़रने जैसा है। 'जा की पीर फटी ना बिवाई' में बिवाई को अभिव्यक्त करना व्यंग्य है। व्यंग्य में आप चिकोटी काटें, कटाक्ष करें, बेचैन करें किन्तु वह बोझिल नहीं होना चाहिए। अनिल श्रीवास्तव ने विभिन्न मुहावरों का प्रयोग करते हुए अपनी रचना में मानवीय दुर्बलताओं का आईना दिखाया है। इसी तरह एक कवि ने अन्य पद्य रचना में 'मैं बेईमान हूँ' कहते हुए समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार की प्रवृति पर व्यंग्य किया है। व्यंग्य लिखते हुए ये सवाल भी कौंधते हैं कि लिखते क्यों हैं, लिखना क्या है और किसके लिए लिखना है? व्यंग्य में सवाल कैसे बूझे जाते हैं, उसका ट्रीटमेंट कैसे करते हैं, रचना के तेवर कैसे हैं आदि का विशेष महत्त्व होता है।रचना में योजना से तेवर तैयार होगा। प्रवृति को देखना होगा और देखना होगा को वह विसंगति को कैसे पकड़ता है। व्यंग्य अमिधा में नहीं हो सकता इसलिए जाहिर है व्यंजना का ही सहारा लेना होगा। व्यंग्य में यथास्थिति को बार-बार चुनौती देनी होगी।

'अट्टहास' के सलाहकार संपादक अनूप श्रीवास्तव ने सभी अतिथियों का अभिनंदन करते हुए बताया कि 'अट्टहास' ने हास्य-व्यंग्य के प्रति गंभीर चिंतन को महत्त्व दिया है और व्यंग्य आलोचना पर तीन विशेषांक निकाले हैं। व्यंग्य पाठशाला संगोष्ठी भी एक प्रकल्प जैसा कार्य है और सभी क्षेत्रों में इसके आयोजन निरंतर होते रहे हैं। पत्रिका के एक आगामी विशेषांक डॉ. सुभाष चंदर के अतिथि संपादन में प्रकाशित किया जाएगा। सीसीए स्कूल, गुरुग्राम की प्राचार्य निर्मल यादव ने सभी का आभार व्यक्त किया।

***

प्रस्तुति एम. एम. चन्द्रा

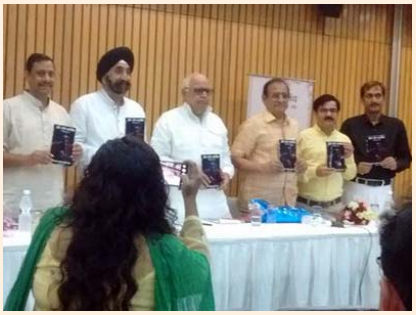

काव्य गोष्ठी एवं साहित्य-परिचर्चा का आयोजन

अभिमंच साहित्य सभा (क्लब) के तत्वाधान में इण्डिया इंटरनेशनल सेंटर, दिल्ली में काव्य गोष्ठी एवं साहित्य-परिचर्चा का आयोजन किया गया। कार्यक्रम का संचालन डॉ.पाठक ने किया।

नित्यानंद तिवारी ने अतिथियों का परिचय कराते हुए अभिमंच साहित्य सभा के गठन के उद्देश्यों पर प्रकाश डाला। उन्होंने बताया कि इस मंच द्वारा नए लेखकों को काव्य पाठ और प्रकाशन के लिए मंच देने की बात पर ज़ोर दिया। काव्य गोष्ठी के विषय में कहा कि काव्य के लिए वर्कशॉप शुरू करने का मुख्य उद्देश्य यही था कि लिखने वाले आपस में मिल कर चर्चा कर सकें। उन्होंने कहा कि जब लिखने और सुनने वाले मिलते हैं तो कई बार लेखक जो कुछ भी लिख रहा होता है जो वह उसके लिए श्रोता और प्रकाशक दोनों ही नहीं खोज पाता, यह मंच उसे दोनों चीज़ें उपलब्ध करने के लिए प्रयासरत रहेगा। उन्होंने भविष्य में क्रमवार गोष्ठियाँ किए जाने की योजना से भी अवगत कराया।

2 सितम्बर 2017, दिल्ली के इन्डियन इंटरनेशनल सेंटर में आयोजित एक भव्य समारोह में उत्तर प्रदेश विधानसभा के सदस्य श्री हृदयकेश दीक्षित ने कार्यक्रम की अध्यक्षता की। उन्हें संस्था द्वारा सम्मानित भी किया गया यह सम्मान ''अभिमंच'' द्वारा उनकी लम्बी एवं उत्कृष्ट साहित्य सेवा के लिए प्रदान किया गया। इस अवसर पर 100 से अधिक भारत के अलग अलग हिस्सों से आए साहित्यकार, कलाकार एवं विशिष्ट नागरिक उपस्थित थे जिनमें डॉ. वी.एन.मिश्र, डॉ. गुरविंदर बांगा, डॉ. धनंजय जोशी, साहित्यकार संदीप तोमर इत्यादि नामचीन हस्तियाँ मौजूद थी।

कार्यक्रम में वी.एल. मीडिया सोल्यूशन द्वारा प्रकाशित पुस्तक जो कि परमवीर चक्र विजेता कारगिल शहीद कैप्टन मनोज पाण्डेय के जीवन पर आधारित है, का विमोचन किया गया। अंग्रेज़ी से अनुदित इस पुस्तक के मूल लेखक श्री पवन और अनुवादक विष्णु नारायण भी कार्यक्रम में उपस्थित थे।

काव्य वर्षा करते हुए डॉ. जोशी ने ''घर घर की कहानी'' कविता के माध्यम से सारे जग की कहानी से रूबरू कराया। वहीं ग़ज़लकार वसुधा ने ''जब उन छलकती निगाहों से मुझको प्यार मिला, सुकून दिल को मिला रूप को करार मिला.. ग़ज़ल सुनाकर सबको मंत्रमुग्ध कर दिया। कवि प्रतीक ने ''कविता'' शीर्षक से जनवादी कविता प्रस्तुत करते हुए समाज की विसंगतियों पर प्रहार किया।

डॉ. गुरविंदर बांगा ने बताया कि किसी शुभ अवसर पर कपड़ों या अन्य गिफ्ट की बजाय किताबों का गिफ्ट में मिलना कितना सुखद होता है, उन्होंने कहा कि लेखक कवि ही समाज को आगे ले जा सकता है, समाज में सुधार कर सकता है। अपनी कविता के चिरपरिचित अंदाज़ में उन्होंने पूरे देश और समाज की विसंगतियों को प्रकट किया। वहीं विनय सक्सेना ने कुलदीप मक्कड़ जी के काव्य संकलन ''एक टुकड़ा आसमान'' के कलापक्ष पर प्रकाश डाला, साथ ही मधुशाला की परोडी पर कविता सुनकार श्रोताओं को मधुमय बनाया।

डॉ. मिश्रा ने अपने वक्तव्य की शुरूआत ''मुराद'' शीर्षक कविता से किया। उन्होंने कविता को विज्ञान, वाणिज्य, यांत्रिकी से बहुत ऊपर की वस्तु बताते हुए दीक्षित जी की पुस्तक'' बदलते परिवेश की भारतीय पद्धति'' पर अपने विचार प्रस्तुत किए। उन्होंने काव्य के सौन्दर्यशास्त्र की चर्चा करते हुए हृदय के आन्तरिक संगीत को सुने जाने पर बल दिया।

दीक्षित जी ने अपने अध्यक्षीय संभाषण में अपने पूर्वजों से जुड़ने की वकालत की, भारतीय विरासत की विस्तृत चर्चा करते हुए लोगो को साहित्य से, कविता से ज़्यादा से ज़्यादा जुड़ने की बात कही। उन्होंने कहा कि जो देश साहित्य, कविता से जुड़ते हैं वे युद्ध के बारे में सोचते ही नहीं, उन्होंने इसे भावों की प्रधानता से जोड़ते हुए भाव जगत् की प्रधानता की बात कही। कार्यक्रम के अंत में सहभागियों को मोमेंटो देकर सम्मानित किया गया।

हर बार की तरह इस बार भी नित्यानंद तिवारी जी के सानिध्य में गोष्ठी बहुत सफल रही। विस्तृत विचार-विमर्श एवं साहित्यकारों की सह-भागिता ने इसको अद्वितीय बना दिया। 'ईद- उल-अजहा' होने की वजह से हिन्दी, पंजाबी और उर्दू के कई रचनाकार एवं दिल्ली व अन्य राज्यों के बहुत से साहित्य प्रेमी इस बार गोष्ठी में भाग नहीं ले सके। आशा करते हैं कि शीघ्र ही काव्य गोष्ठी का आयोजन दक्षिणी दिल्ली या किसी निकट स्थान पर शीघ्र होगा।

***

प्रस्तुति:संदीप तोमर

डॉ. प्रेम जनमेजय सम्मानित

मध्यप्रदेश सरकार के संस्कृति विभाग का राष्ट्रीय शरद जोशी सम्मान -2015 देश के प्रख्यात व्यंग्यकार व व्यंग्ययात्रा पत्रिका के संस्थापक संपादक डॉ. प्रेम जनमेजय को हिन्दी दिवस यानी 14 सितम्बर को मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल में एक भव्य समारोह में मुख्य मंत्री शिवराज सिंह चौहान ने प्रदान किया। प्रेम जनमेजय को दो लाख रुपए की सम्मान राशि, सम्मान पत्र, श्रीफल और शाल द्वारा सम्मानित किया गया। उन्होंने प्रसन्ता व्यक्त की कि इस राशि से व्यंग्य यात्रा के कुछ अंकों एवं व्यंग्य विमर्श के आयोजनों को कुछ और प्राणवायु मिलेगी।

'भ्रष्टाचार के सैनिक' पर चर्चा

वरिष्ठ कथाकार चित्रा मुद्गल के परामर्श में सक्रिय साहित्यिक संस्था 'चेतनामयी' ने अपनी मासिक संगोष्ठी में इस बार नरेंद्र कोहली की अध्यक्षता में 'वाणी प्रकाशन' द्वारा प्रकाशित, प्रेम जनमेजय के व्यंग्य संकलन 'भ्रष्टाचार के सैनिक' पर चर्चा का आयोजन किया।

तीन घंटे चली इस गोष्ठी का संचालन चित्रा जी ने किया। कार्यक्रम आरम्भ करते हुए उन्होंने कहा कि प्रेम जनमेजय का ओढ़ना-बिछाना,सब व्यंग्य है। उसने अपने लेखन, व्यंग्य यात्रा, आयोजित गोष्ठियों - शिविरों के माध्यम से हिन्दी व्यंग्य को सार्थक रूप से सक्रिय किया हुआ है। प्रेम के व्यंग्य खुन्नस नहीं निकालते अपितु प्रवृत्तिमूलक व्यंग्य रचना के द्वारा एक व्यापक केनवास पर बात कहते हैं। वे सहज हैं। उनके व्यंग्य अपनी सीमाओं का अतिक्रमण करते हैं।

विवेक मिश्र ने विस्तार से व्यंग्य के सामयिक परिदृश्य पर चर्चा करते हुए रेखांकित किया कि प्रेम जनमेजय के व्यंग्य सत्ता - विपक्ष, काले-गोरे के व्यंग्य मात्र नहीं हैं। वे व्यंग्य के ग्रे एरिया में उतरते हैं जो एक कठिन कर्म है। उनकी चोट चाकू छुरे वाली नहीं गुम चोट है। विवेक मिश्र ने व्यंग्य से जुड़े कुछ महत्त्वपूर्ण मुद्दे उठाए। चित्रा मुद्गल ने दिनेश कुमार को निमंत्रित करते हुए कहा कि दिनेश किसी भी पोटली की गाँठ को बर्दाश्त नहीं कर सकते। दिनेश जब बोले तो उन्होंने अपने स्वभावानुरूप पोटली को खोलकर सबके सामने रख दिया।

दिनेश कुमार ने कहा कि प्रेम जनमेजय इस अर्थ में शायद पहले व्यक्ति हैं जिसने हैं अपना सब कुछ व्यंग्य को समर्पित कर दिया है। उनके व्यंग्य इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं की उनके व्यंग्य में व्यक्ति गौण है और प्रवृति मुख्य। उनके व्यंग्य आज के संवादहीन समय, निर्मम चालाक बाज़ार को समझने के लिए बहुत बढ़ियारचनात्मक अभिव्यक्ति हैं। हरीश नवल ने कहा कि प्रेम की व्यंग्य रचनाएँ मुझे ब्रेख्त की याद दिलाती हैं। ब्रेख़्त को पढ़कर लोग कहते कि ऐसा तो हम भी सोच रहे थे, कहना चाह रहे थे। प्रेम हमसे आगे की सोचते हैं। उनकी लेखनी और जीवन कर्म व्यंग्यमय है।

अध्यक्षीय भाषण में डा नरेंद्र कोहली ने कहा कि मेरे और प्रेम के संबंध वर्षों पुराने हैं और उसकी रचनाओं को मैंने आरम्भ से पढ़ा है। मुझे अच्छा लगता है कि उसने अपना विकास किया है। उसने स्वयं को व्यंग्य में सीमित कर लिया है, मेरी दृष्टि से स्वयं को सीमित करना अधिक ठीक नहीं, पर अच्छा लगता है कि वह एक क्षेत्र में बहुत कुछ कर रहा है। प्रेम की यह व्यंग्य रचनाएँ हमारे आज के समय की रचनाएँ हैं। उसने स्वयं को राजनीति पर टिप्पणिओं तक सीमित नहीं किया है परआज के समाज की विसंगतिओं पर प्रखर प्रहार किए हैं। उसके पास व्यंग्य की आवश्यक भाषा है।

इसके पश्चात् संस्था के सदस्यों --- सुश्री गीता, रश्मि लूथरा, मधु,मृदुला जैन, रेखा, साधना, रेणू जैन आदि ने विस्तार से अपनी प्रतिक्रिया एवं जिज्ञासाएँ रखीं। लगभग सब ने कहा कि इन व्यंग्य रचनाओं को पढ़कर और व्यंग्य पढ़ने को मन प्रेरित हुआ है।

***

'जयनंदन : व्यक्तित्व एवं कृतित्व' का विमोचन

साहित्य के क्षेत्र में 'गोपाल निर्दोष' के नाम से जाने जानेवाले साहित्यकार डॉ. गोपाल प्रसाद की आलोचनात्मक पुस्तक 'जयनंदन : व्यक्तित्व एवं कृतित्व' का विमोचन 10 सितंबर को होटल राजदरबार के सभागार में संपन्न हुआ। इस विमोचन समारोह में स्वयं कथाकार जयनंदन, जयनंदन की कहानियों पर फ़िल्म बनानेवाले फ़िल्मकार एवं अभिनेता शिवकुमार प्रसाद, शोध प्रज्ञ सुबोध कुमार, शायर अफ़सर नवाब एवं समाजसेवी ज़की हैदर मंच पर आसीन थे।

विमोचन समारोह के आरंभ में पुस्तक के प्रथम अध्याय का पाठ साहित्यकार सावन कुमार ने किया जबकि इस पर चर्चा करते हुए साहित्यकार शंभु विश्वकर्मा, अशोक समदर्शी, डॉ. सुधीरचंद्र सिंह, नितेश कपूर, अवधेश कुमार, रामरूप प्रसाद, प्रो. विजय कुमार आदि ने अपनी बातें रखीं। मंच संचालन लेखक डॉ. गोपाल प्रसाद ने स्वयं किया। इस विमोचन समारोह में रवि कुमार 'कवि', राहुल वर्मा, रेणु गुप्ता, अरुण वर्मा, रूमी काजी, संतोष वर्मा, डॉ. विजय कुमार, डॉ. शिवशंकर प्रसाद, के के सक्सेना, जितेंद्र कुमार, सुबोध कुमार, चंद्रमणि कुमार, कैलाश प्रसाद, पुष्कर जी, समीर राज, सुभांश गुप्ता, मयंक वर्मा, अरशद ग़ालिब, सौरभ कुमार, रोशन कुमार आदि साहित्यकार, शिक्षक, समाजसेवी आदि दर्जनाधिक गणमान्यजन उपस्थित थे।

***

विश्व मैत्री मंच का छठवाँ अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन मॉस्को में संपन्न

16 अगस्त 2017 मॉस्को के मैक्सिमा सभागार में विश्व मैत्री मंच द्वारा आयोजित भारत और मॉस्को के रचनाकारों का साहित्यिक सम्मेलन विभिन्न सत्रों में संपन्न हुआ।

कार्यक्रम के आरंभ में संस्था की अध्यक्ष संतोष श्रीवास्तव ने अपने स्वागत भाषण में सभी का स्वागत करते हुए संस्था के उद्देश्यों पर प्रकाश डाला। विशिष्ट अतिथि के रूप में पधारे दिशा फ़ाउण्डेशन मॉस्को के अध्यक्ष डॉ. रामेश्वर सिंह, डॉ. सुशील आज़ाद एवं डॉ. विनायक के कर कमलों द्वारा सम्मेलन का उद्घाटन हुआ। इस सत्र की मुख्य अतिथि डॉ. माधुरी छेड़ा, अध्यक्ष आचार्य भगवत दुबे एवं विशिष्ट अतिथियों द्वारा डॉ. विद्या चिटको, डॉ. रोचना भारती, डॉ. प्रमिला वर्मा, संतोष श्रीवास्तव एवं कमलेश बख्शी की पुस्तकों का विमोचन हुआ।

प्रमिला शर्मा, प्रभा शर्मा तथा अनुपमा यादव के कुशल अभिनय की एकांकी नाट्य प्रस्तुति तथा विनायक जी के द्वारा गाई अहमद फराज़ की ग़ज़ल ने समा बाँध दिया।

आगरा से आई डॉ. प्रीति अग्रवाल की एकल चित्रकला प्रदर्शनी का उद्घाटन विशिष्ट अतिथियों के कर कमलों द्वारा संपन्न हुआ। सम्मेलन में हिन्दी साहित्य और पर्यटन विषय पर विषय प्रवर्तक डॉ. विद्या चिटको, डॉ. रोचना भारती, रघुवीर सिंह दहिया और डॉ. राजकुमार सुमित्र ने अपने विचार प्रस्तुत किए।

सभी प्रतिभागियों को कमलेश बख्शी और डॉ. प्रमिला वर्मा के कर कमलों द्वारा स्मृति चिह्न अंगवस्त्र एवं मोतियों की माला प्रदान की गई।

संचालक द्वय संतोष श्रीवास्तव, डॉ. भावना शुक्ल ने समारोह को अपने कुशल संचालन से जीवंतता प्रदान करते हुए सभी के प्रति अपना आभार व्यक्त किया।

इस अवसर पर भारत से मॉस्को पधारे डॉ. प्रदीप अग्रवाल, शारदा गायकवाड़, जगदीश छेड़ा, वसंत शाह, अर्पणा शर्मा, माला गुप्ता, इंदु तिवारी, डॉ. शर्मिला बक्शी, डॉ. बीना खूबचंदानी, डॉ. विजय लक्ष्मी शर्मा, कलावती शर्मा की विशेष उपस्थिति रही। यह सम्मेलन भारत मॉस्को वैश्विक साहित्य की दिशा में एक नई पहल के रूप में दर्ज किया गया।

प्रस्तुति: संतोष श्रीवास्तव

***

श्री विज्ञान व्रत सम्मानित

2 सितम्बर 2017 की शाम को नई दिल्ली के हिन्दी भवन में अयन प्रकाशन द्वारा आयोजित एक भव्य समारोह में ख्याति प्राप्त ग़ज़लकार श्री विज्ञान व्रत को प्रथम मनु 'स्मृति' सम्मान से सम्मानित किया गया।

अयन सम्मान की ओर से श्री विज्ञान व्रत को सम्मान स्वरूप शाल, नारियल और ग्यारह हज़ार रुपये भेंट स्वरूप प्रदान किये गए।

कार्यक्रम की अध्यक्षता प्रसिद्ध साहित्यकार श्री बाल स्वरूप राही ने की। विशिष्ट अतिथि थे ख़्याति प्राप्त साहित्यकार / पत्रकार श्री बी एल गौड़। प्रसिद्ध व्यंग्यकार श्री हरीश नवल मुख्य वक्ता थे। श्री लक्ष्मी शंकर वाजपेयी और श्री हिमांशु काम्बोज भी मंचस्थ रहे।

इस अवसर पर बोलते हुए श्री भूपाल सूद बहुत भावुक हो गए! हिन्दी भवन का सभागार पत्रकारों और साहित्यकारों से खचाखच भरा हुआ था। प्रसिद्ध पत्रकार और 'अभिनव इमरोज़' के संपादक श्री देवेन्द्र कुमार बहल, आधुनिक साहित्य के यशस्वी संपादक श्री आशीष काँधवे के अतिरिक्त कासगंज से पधारे जाने-माने साहित्य-प्रेमी और लेखक राव मुकुल मानसिंह तथा सहारनपुर से आए श्री आर पि सारस्वत और साहिबाबाद से ब्रज किशोर वर्मा 'शैदी' और फरीदाबाद से प्रसिद्ध कवि हरेराम समीप कार्यक्रम में उपस्थित थे।

कानपुर से आई कवयित्री सुश्री कल्पना मनोरमा, दिल्ली से सुश्री कुसुम सिंह, सुश्री दिव्या सिंह, सुश्री रंजना अग्रवाल और चित्रकार श्री भगत सिंह ने अपनी उपस्थिति से कार्यक्रम को गरिमा प्रदान की। श्रीमती चन्द्रप्रभा सूद और चिरंजीव पियूष सूद का कार्यक्रम में सार्थक योगदान रहा।

श्री अनिल वर्मा 'मीत' ने कार्यक्रम का सफल संचालन किया।

प्रस्तुति: अनिल वर्मा 'मीत'

***

कैलाश मंडलेकर को सम्मानित किया जाएगा

अंजनी चौहान, विजय राय,ब्रजेश कानूनगो की निर्णायक समिति ने सर्वसम्मति से व्यंग्यकार कैलाश मंडलेकर को उनके श्रेष्ठ व्यंग्य लेखन के लिए वर्ष 2017 का 'ज्ञान चतुर्वेदी सम्मान' प्रदान करने का निर्णय लिया है। यह सम्मान 'दूसरी परंपरा' पत्रिका द्वारा इसी वर्ष से शुरू किया गया है।

कैलाश मंडलेकर का जन्म 9 सितंबर 1956 को हरदा, मध्यप्रदेश में हुआ। अब तक व्यंग्य की तीन किताबें प्रकाशित। मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी पुरस्कार सहित अनेक संस्थाओं से सम्मानित। सम्मान के संयोजक सुशील सिद्धार्थ के अनुसार सम्मानित लेखक को उत्तरीय, प्रतीक चिन्ह, सम्मान पत्र और 150000 की सम्मान राशि भेंट की जाएगी।

***

सूर्यबाला सम्मानित

भोपाल में हिन्दी -दिवस पर प्रतिष्ठित कहानीकार, उपन्यासकार और व्यंग्यकार सूर्यबाला को मिला 'राष्ट्रीय शरद जोशी सम्मान' ।

कवि अशोक अंजुम सम्मानित

गत दिवस 1089 से निरंतर सक्रिय निर्झर साहित्यिक संस्था, कासगंज ने साहित्य के क्षेत्र में श्री अशोक अंजुम की विशिष्ट उपलब्धियों के लिए ''अजेय स्मृति पुरस्कार -17'' तथा ''साहित्य भास्कर'' की उपाधि से सम्मानित किया ! संस्था के पदाधिकारियों तथा कार्यक्रम के अतिथियों ने स्मृति चिह्न, सम्मान अलंकरण, शाल और सम्मान राशि श्री अशोक अंजुम को भेंट की ! निर्झर साहित्यिक संस्था, अब तक डॉ. कुंवर बेचैन, डॉ. शिवओम अम्बर, श्री किशन सरोज आदि वरिष्ठ चर्चित कवियों को उक्त सम्मान प्रदान कर चुकी है। इस अवसर पर श्री अंजुम ने अपनी व्यंग्य कविताओं, गीत, ग़ज़ल और दोहों से काफी देर तक समाँ बाँधे रखा ! ज्ञातव्य है कि देश भर के काव्य मंचों पर नियमित काव्य-पाठ के लिए बुलाए जा रहे श्री अंजुम की मौलिक और सम्पादित 55 किताबें प्रकाशित हो चुकी हैं। औरंगाबाद (महाराष्ट्र) और जालंधर (पंजाब) से आपके साहित्य पर शोध कार्य हो रहे हैं ! टीवी के अनेक चैनल्स पर आप काव्य पाठ करते रहे हैं ! आप साहित्यिक त्रैमासिक पत्रिका ''अभिनव प्रयास'' का एक अर्से से संपादन /प्रकाशन कर रहे हैं।

कार्यक्रम के सूत्रधार व संस्था के सचिव श्री अखिलेश सक्सेना ने श्री अंजुम के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डाला। डॉ. अखिलेश चंद्र गौड़ ने सम्मान पत्र का वाचन किया।और सरस सञ्चालन डॉ. रामप्रकाश 'पथिक' ने किया। इस अवसर पर डॉ. रामबहादुर सिंह 'निर्दोषी', श्री बलबीर सिंह 'पौरुष', श्री बलराम सरस, श्री अजय अटल, श्री अखिलेश सक्सेना, श्री अवशेष कुमार आदि ने भी काव्य-पाठ किया।

लालित्य ललित की काव्य पुस्तकें लोकार्पित

लालित्य ललित के दो कविता संग्रह ''चुप्पी में से उद्घोष और ''आदत सी तुम्हारी'' का लोकार्पण वयोवृद्ध साहित्यकार, साहित्य अकादेमी से सम्मानित डॉ. रामदरश मिश्र ने अपने 94 वें जन्मदिन पर किया। इस अवसर पर व्यंग्ययात्रा के संपादक डॉ. प्रेम जनमेजय, प्रख्यात नाटककार प्रताप सहगल, ओम निश्चल,गुरचरण सिंह, पवन माथुर, रणविजय राव, वेद मित्र शुक्ल, नरेश शांडिल्य, अलका सिन्हा, अनिल वर्मा मीत, जसवीर त्यागी, आदित्य देव शर्मा, सुषमा भंडारी के साथ अनेक गण्यमान्य लेखक मौजूद थे। कार्यक्रम का संचालन अनिल वर्मा मीत ने किया। दोनों कविता संग्रह का प्रकाशन डॉ. गिरिराज शरण अग्रवाल ने हिन्दी साहित्य निकेतन, बिजनौर ने किया। इस मौके पर व्यंग्ययात्रा के संपादक डॉ. प्रेम जनमेजय और लालित्य ललित ने रामदरश मिश्र जी का सम्मान शाल ओढ़ा कर किया। इस अवसर पर नरेश शांडिल्य का जन्मदिन भी मनाया गया। प्रेम जनमेजय जी ने इस अवसर पर अपनी व्यंग्य कृति भी भेंट की।

ओमप्रकाश प्रजापति सम्मानित

राजस्थान के साहित्य मंडल, श्रीनाथद्वारा 14-15-16 सितम्बर 2017 को हिन्दी लाओ-देश बचाओ समारोह- 2017 आयोजित किया गया। टू मीडिया पत्रिका के माध्यम से साहित्य,कला और संस्कृति से जुड़े व्यक्ति विशेष के व्यक्तित्व -कृतित्व पर विशेषांक प्रकाशित करने पर तथा संपादन के क्षेत्र में विशिष्ठ योगदान देने पर टू मीडिया के संपादक ओमप्रकाश प्रजापति को ''संपादक शिरोमणि की मानद उपाधि'' से विभूषित किया गया, इसके साथ राजस्थान की पगड़ी, तिलक लगाकर, शॉल, श्रीफल, कंठस्थ,पटका,श्रीनाथद्वारा जी मंदिर का प्रसाद, श्रीनाथद्वारा जी का स्मृति चिह्न भेट किया। इस तृतीय दिवसीय कार्यक्रम में पुस्तक लोकार्पण, टू मीडिया सितम्बर-2017 अंक का विमोचन, विशिष्ट सम्मान, नगर परिक्रमा,पुरजन सम्मान, हिन्दी सेवा सम्मान, हिन्दी नाटिका, हिन्दी उपनिषद, कवि सम्मेलन, हिन्दी हूँकृति, स्मृति पुरस्कार, संपादक सम्मान, संस्था अवलोकन, अभिनंदन पत्रार्पण, हरसिंगार लोकार्पण आदि कार्यक्रम आयोजित किए गए, देश के कोने-कोने से 17 राज्यों से आए सैकड़ों साहित्य, कला, संस्कृति से जुड़े हुए लोगों को साहित्य मण्डल द्वारा सम्मानित किया गया। इस अवसर पर साहित्य मण्डल के प्रधानमंत्री श्याम प्रकाश देवपुरा जी एवं विट्ठल पारिक जी का हृदय से बहुत बहुत आभार।

***

नकारात्मकता से घिरे इस समय में...

गए वो दिन जब सकारात्मकता की बात होती थी, यह नकारात्मकता का समय है। इन दिनों हर तरफ़, हर कोई बस इसी कोशिश में लगा है कि कैसे हमारे इस समय को और ज़्यादा नकारात्मक बनाया जा सकता है। यह जो नकारात्मकता है, यह अत्यंत आक्रामक भी है। इतनी आक्रामक कि हमारे घरों में, हमारी इजाज़त के बग़ैर घुस रही है और रोके जाने पर पूरी अभद्रता के साथ हमें दुत्कार रही है। वास्तव में इसका लक्ष्य हमारे घरों में घुसना नहीं है, इसका लक्ष्य तो हमारे दिमाग़ों में घुसना है। पौराणिक कथाओं में सुना था कि पहले तीर का संधान कहीं और से होता था और वो कहीं और जाकर प्रहार करता था। वही अब भी हो रहा है, महानगरों के वातानुकूलित स्टूडियो में बैठे हुए कुछ टीवी एंकर (पत्रकार तो कतई नहीं) सारा दिन इसी प्रकार के तीर संधान कर रहे हैं, मिसाइलें प्रक्षेपित कर रहे हैं। बिना यह जाने समझे कि इसका कितना नुकसान देश को, समाज को, नई पीढ़ी को हो रहा है। जिस ज़हरीली भाषा में ये एंकर बातें करते हैं अपने चैनल में बैठकर, उसे सुनकर घृणा होती है इन लोगों से। इनके चेहरों से इस क़दर युद्धोन्माद झलकता है कि इनमें और आतंकवादियों में कोई फ़र्क़ दिखाई नहीं देता है। ये नफ़रत की खेती कर रहे हैं, आने वाली नस्लों को तबाह और बरबाद करने के लिए ये ज़हर बो रहे हैं। स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चे, जिनके दिमाग़ अभी इतने विकसित नहीं हैं कि वो अच्छा-बुरा समझ सकें, वे इस ज़हर का शिकार हो रहे हैं, वे दूसरे संप्रदाय के लोगों से नफ़रत करने लगे हैं, उन्हें शक़ की नज़रों से देखने लगे हैं। यह कितना ख़तरनाक है हमारे आने वाले समय के लिए, ये हम सबको जानना और समझना होगा। ये एंकर अब साँप-नेवले की लड़ाई दिखाने वाले मदारियों में तब्दील होते जा रहे हैं। रोज़ अपने चैनल पर अलग-अलग धर्मों, विचारधाराओं तथा वर्गों के प्रतिनिधियों को बिठाते हैं तथा उन्हें उकसा-उकसा कर आपस में लड़वाते हैं। वो बैठने वाले भी इतने मूर्ख होते हैं कि इनके इशारे पर आपस में गुत्थम-गुत्था भी हो जाते हैं। नहीं होते, तो मदारी स्वयं कूद पड़ता है और अंततः लड़वा कर ही चैन लेता है। परिणाम ? जिन वर्गों के लोग लड़ते हैं, उन वर्गों के युवा और बाल वर्ग में एक-दूसरे के प्रति नफ़रत की भावना और बलवती हो जाती है। यह सब कुछ हो रहा है इसलिए क्योंकि यह सब कुछ कवर फायर की तरह किया जा रहा है। असल में कुछ नाकामियों को छिपाने के लिए इन एंकर्स को ठेका मिला है इस प्रकार के कवर फायर करने का। यह वास्तव में दिमाग़ों को दूसरी तरफ़ मोड़ने का कार्य है। दूसरी तरफ़ इसलिए क्योंकि यदि ऐसा नहीं किया गया, तो प्रश्न पैदा होने शुरू हो जाएँगे। प्रश्न, जो असहज करेंगे उनको, जिनके हाथों में इन कठपुतली एंकर्स की डोरें हैं। यह जो नकारात्मकता से भरा हुआ समय है यह पैदा ही इसलिए किया जा रहा है कि उस असहजता से बचा जा सके। यह प्रश्नवाचक चिह्नों को विस्मयादिबोधक चिह्नों में बदलने का समय है। प्रश्नवाचक चिह्न टेढ़ा होता है, उलझता है, उलझाता है, जबकि विस्मयादिबोधक चिह्न सीधा सपाट होता है। नकारात्मकता सारे प्रश्नवाचक चिह्नों को पीट-पीट कर सपाट कर रही है, सरल रेखा में बदल रही है। आप एक बार ज़रा सोचिए उस भयावह समय के बारे में जब सारे प्रश्न समाप्त हो जाएँगे। जब प्रश्न पूछना भी एक प्रकार का अपराध घोषित कर दिया जाएगा। (अभी लगभग तो ऐसा हो चुका है।) बिना प्रश्नों के हम सब एक महाशून्य में फेंक दिए जाएँगे। फेंक दिए जाएँगे अनंत काल के लिए। तब शायद हमें समझ में आएगा कि यह सब कुछ जिस नकारात्मकता के कंधे पर चढ़ कर किया गया है, उस नकारात्मकता की डोली में कहार बन कर अपने-अपने कंधे हमने भी लगाए थे। क्योंकि यदि आप वह सब देख रहे हैं तो इसका सीधा मतलब यही है कि आप उसे पसंद करते हैं।

सादर आपका ही,

पंकज सुबीर

पंकज सुबीर
पी. सी. लैब, शॉप नंबर 3-4-5-6,
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के
सामने, सीहोर, मप्र, 466001
मोबाइल : 9977855399
ईमेल : subeerin@gmail.com

शिवना प्रकाशन : नए सेट की पुस्तकें

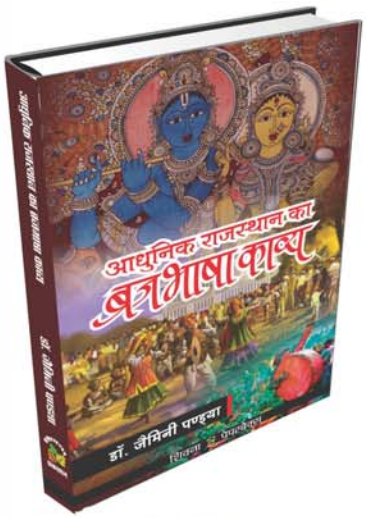

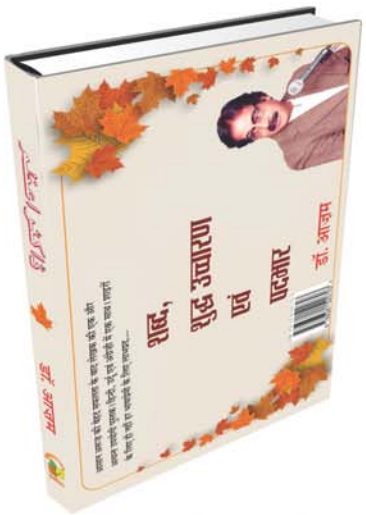

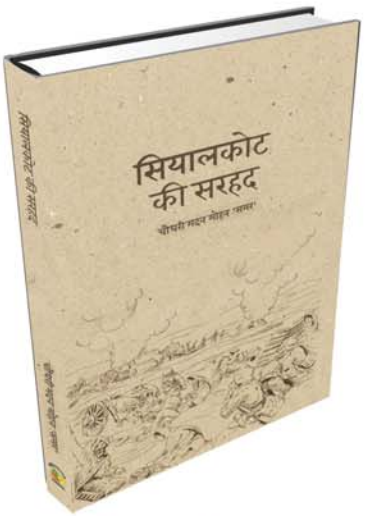

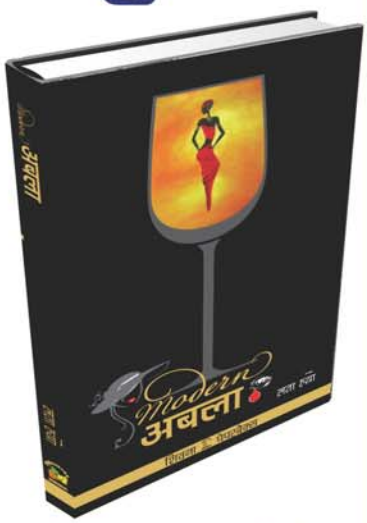

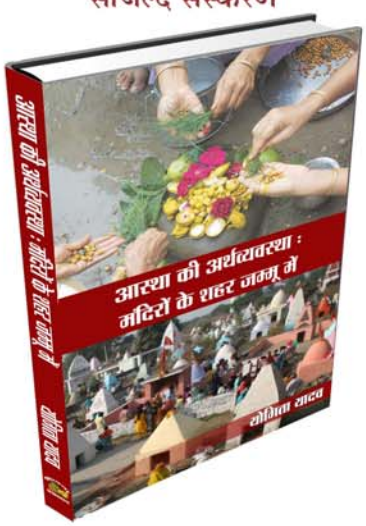

समीक्षक डॉ. जैमिनी पण्ड्या द्वारा राजस्थान के ब्रजभाषा काव्य पर महत्त्वपूर्ण पुस्तक-
आधुनिक राजस्थान का ब्रजभाषा काव्य
मूल्य : 450 रुपये
पेपरबैक संस्करण

डॉ. आज़म की ग़ज़ल के व्याकरण पर एक ज़रूरी किताब-
शब्द, शुद्ध उच्चारण एवं पदभार
मूल्य : 350 रुपये
सजिल्द संस्करण

भारत पाकिस्तान के युद्ध पर केंद्रित सुप्रसिद्ध कवि चौधरी मदन मोहन समर का चर्चित खण्ड काव्य-
सियालकोट की सरहद
मूल्य : 220 रुपये
सजिल्द संस्करण

सुप्रसिद्ध शायरा, कवयित्री तथा अभिनेत्री लता हया की आधुनिक कविताओं का संग्रह-
मॉडर्न अबला
मूल्य : 220 रुपये
पेपरबैक संस्करण

युवा लेखक राजेश सोनवार का प्रेम तथा जीवन के द्वंद्व की पृष्ठभूमि पर लिखा गया उपन्यास-
दो जुलाई दो हज़ार पाँच
मूल्य : 200 रुपये
पेपरबैक संस्करण

हिन्दी की प्रसिद्ध कथाकार एवं पत्रकार योगिता यादव द्वारा जम्मू के धार्मिक रीति-रिवाज़ों पर पुस्तक-
आस्था की अर्थव्यवस्था
मूल्य : 200 रुपये
सजिल्द संस्करण

कैनेडा निवासी डॉ. हंसा दीप द्वारा मानवीय संबंधों के ताने-बाने पर लिखा गया एक रोचक उपन्यास-
बंद मुट्ठी
मूल्य : 275 रुपये
पेपरबैक संस्करण

सुप्रसिद्ध शायरा, कवयित्री तथा समीक्षक पारुल सिंह की आधुनिक कविताओं का संग्रह-
चाहने की आदत है
मूल्य : 200 रुपये
सजिल्द संस्करण

शिवना प्रकाशन
शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन की पुस्तकें सभी प्रमुख ऑनलाइन शॉपिंग स्टोर्स पर

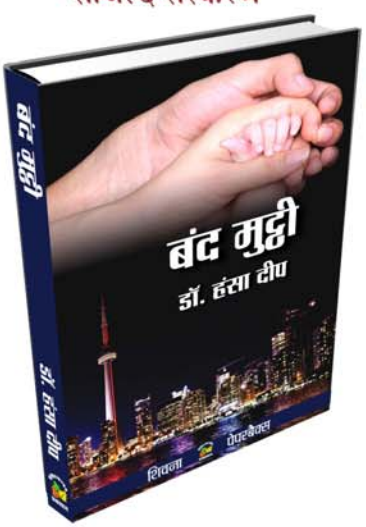

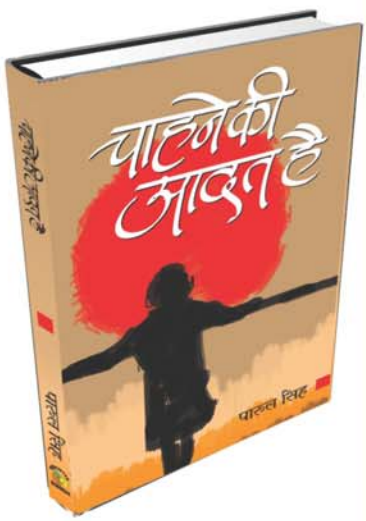

amazon
http://www.amazon.in
flipkart.com
http://www.flipkart.com
Paytm
https://www.paytm.com
ebay
http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

Vibhom Swar ● Quarterly ● October-December 2017 ● RNI No. MPHIN/2016/70609 ● ISSN2455-9814

शिवना प्रकाशन : पुस्तकों के नए संस्करण

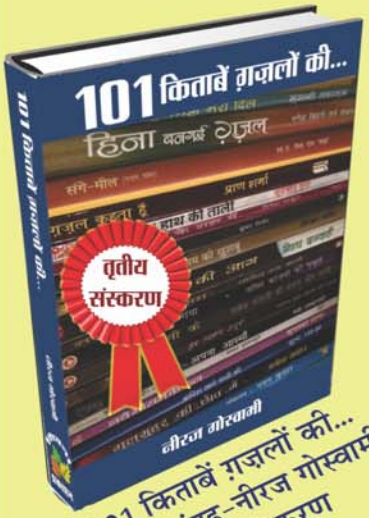

101 किताबें ग़ज़लों की...
समीक्षा संग्रह-नीरज गोस्वामी
तीसरा संस्करण

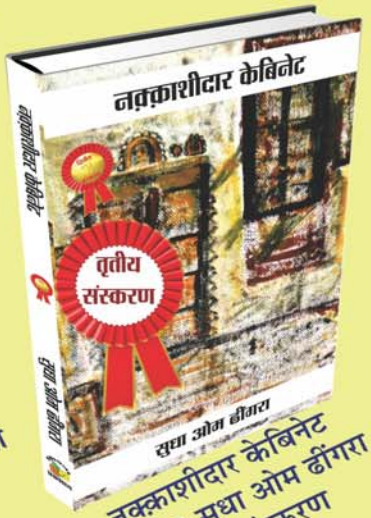

नक़्क़ाशीदार केबिनेट
उपन्यास-सुधा ओम ढींगरा
तीसरा संस्करण

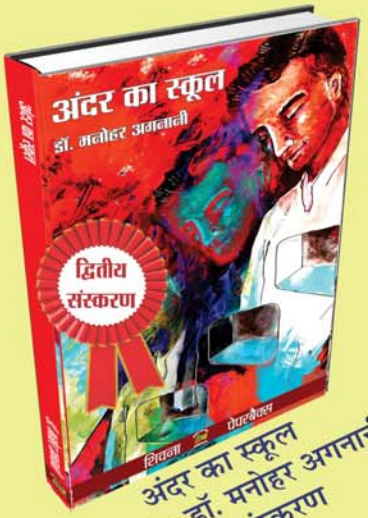

अंदर का स्कूल
संस्मरण -डॉ. मनोहर अगनानी
दूसरा संस्करण

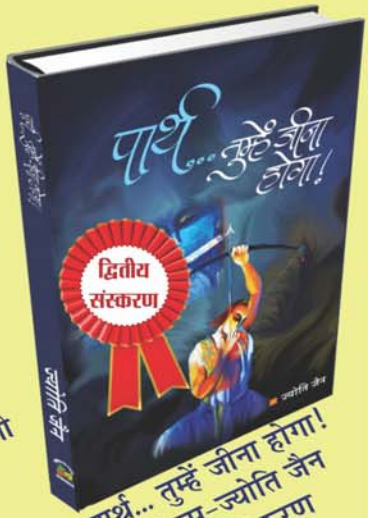

पार्थ... तुम्हें जीना होगा!
उपन्यास-ज्योति जैन
दूसरा संस्करण

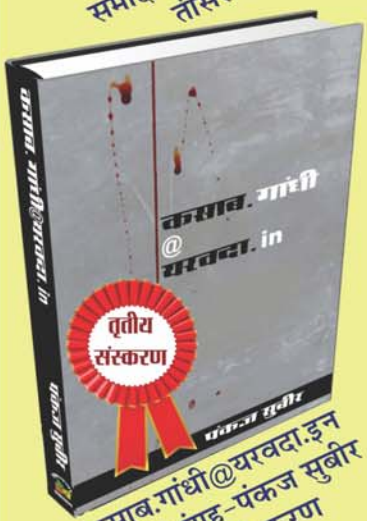

कसाब.गांधी@यरवदा.इन
कहानी संग्रह-पंकज सुबीर
तीसरा संस्करण

दस प्रतिनिधि कहानियाँ
कहानी संग्रह-सुधा ओम ढींगरा
तीसरा संस्करण

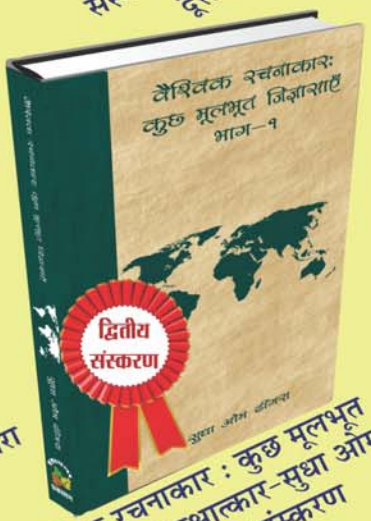

वैश्विक रचनाकार : कुछ मूलभूत
जिज्ञासाएँ, साक्षात्कार-सुधा ओम
ढींगरा, दूसरा संस्करण

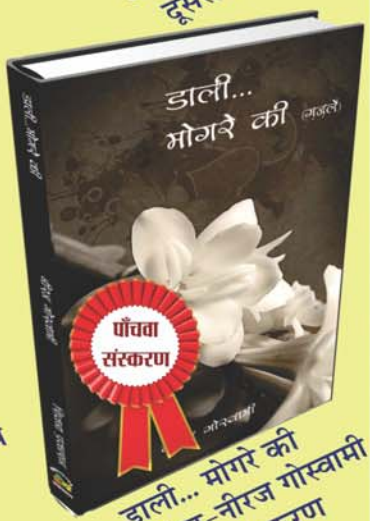

डाली... मोगरे की
ग़ज़ल संग्रह-नीरज गोस्वामी
पाँचवा संस्करण

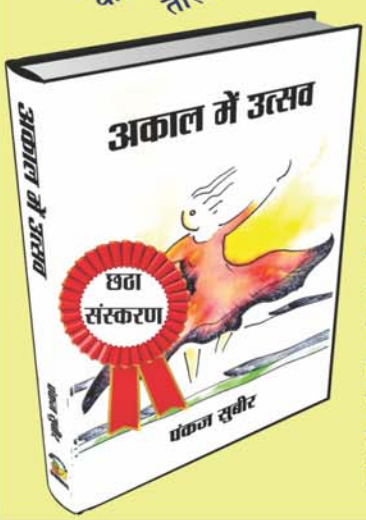

अकाल में उत्सव
उपन्यास-पंकज सुबीर
छठवाँ संस्करण

बीते वर्ष के सबसे चर्चित उपन्यास अकाल में उत्सव के डेढ़ वर्ष में चार हार्ड बाउंड तथा दो पेपरबैक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। किसानों की आत्महत्या पर एक दस्तावेज़ की तरह इस उपन्यास को निरूपित किया गया है। इस उपन्यास का नाट्य रूपांतरण तथा मंचन हो चुका है तथा फ़िल्म के लिए पटकथा लिखी जा रही है।

आसान अरूज़
ग़ज़ल व्याकरण-डॉ. आज़म
दूसरा संस्करण

नव ग़ज़लकारों के लिए सबसे ज़रूरी पुस्तक आसान अरूज़ का दूसरा तथा परिवर्धित संस्करण प्रकाशित हो गया है। बहरों, इल्मे-अरूज़, ऐब, क़ाफ़िया, रदीफ़ के बारे में उदाहरण देते हुए विस्तार के साथ चर्चा की गई है। कुछ नए अध्याय भी इस दूसरे संस्करण में जोड़े गए हैं। हर शायर के लिए ज़रूरी पुस्तक है यह।

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स,ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।